साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२४ अंक-९ ❖ पृष्ठ ८४ | चैत्र-वैशाख, संवत्-२०७५-७६ | अप्रैल २०१९

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२

फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

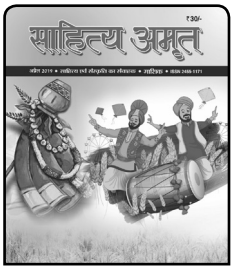

इस अंक में

संपादकीय

नानी पालखीवाला और उनका अवदान ४

प्रतिस्मृति

सरस्वती तट से निकली सांस्कृतिक जय-यात्रा/ *देवेंद्र स्वरूप* ८

कहानी

मूँछों की लड़ाई/ *सुभाष चंदर* १२

मौत-दर-मौत/ *राकेश भ्रमर* २४

जड़ों की ओर/ *चितरंजन भारती* ३४

द्रोपा भाभी/ *लवलेश दत्त* ५२

आलेख

वैश्विक नाट्य, नृत्य और लीला में राम/ *रीतारानी पालीवाल* १६

सूरदास और सूरकुटी/ सतीशचंद्र चतुर्वेदी २८

छायावाद : भावबोध की कविता/ *हेमंत कुकरेती* ३९

संगीत और योग/ *रेनू गुप्ता* ५०

लघुकथा

ट्रांसफर/ *स्वाति ग्रोवर* ७७

कविता

आधा-अधूरा/ *सुनील कुमार शर्मा* ११

चलता चल/ *माता प्रसाद शुक्ल* १५

लड़कियाँ/ *हेमा चंदानी 'अंजुलि'* १९

जब भी आता है कोई परिवर्तन/ *चंद्रसेन विराट* २३

उनींदी आँखें/ *बी.डी. बजाज* ५१

पीपल का पेड़/ *राजेंद्र पटोरिया* ५५

अटारी पर अभिनंदन/ *श्रीधर द्विवेदी* ५८

निराशा में आशा की किरण/ *अंजु अग्रवाल* ५९

साँसत में है जान/ *लक्ष्मीनारायण बुनकर* ६३

स्मरण

भावनाओं के संवेदनशील चितेरी प्रो. नामवर सिंह/ *हेमंत शर्मा* २०

आज के दधीचि देवेंद्र स्वरूपजी/ *राजकुमार भाटिया* ३०

पुस्तक-अंश

जनता की गवाहियाँ/ *मे.ज. सूरज भाटिया* ३२

क्या हैं नवरात्र/ *शशिकांत 'सदैव'* ७१

राम झरोखे बैठ के

घर-घर दंगल/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४२

ललित-निबंध

रेवा तोरे रेत कनों में रमता मन/ *नर्मदा प्रसाद सिसोदिया* ४५

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

महल और झोंपड़ी/ *चिंता दीक्षितुलु* ४८

व्यंग्य

बड़ा लेखक बनने के सरल उपाय/ *अश्विनी कुमार दुबे* ५६

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

नकली गहने/ *गी.द. मोपासाँ* ६०

यात्रा-वृत्तांत

दिल्ली-तीर्थ-दर्शनम्/ *प्रेमपाल शर्मा* ६४

लोक-साहित्य

भारतीय परंपराओं में वृक्ष पूजा/ *शंकरलाल माहेश्वरी* ७४

बाल-संसार

ज्ञान-विज्ञान व मनोरंजन का साथी रेडियो/ *पवन चौहान* ७६

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७८

वर्ग-पहेली ७९

साहित्यिक गतिविधियाँ ८०

नानी पालखीवाला और उनका अवदान

नानी पालखीवाला का जन्मशती वर्ष चल रहा है। बहुत कम लोग होंगे, जिनको पालखीवाला के विषय में जानकारी होगी। कुछ विधिवेत्ता और संविधान के विद्यार्थी ही उनके संबंध में कुछ जानते होंगे और वह भी इस कारण कि कई अत्यंत महत्त्वपूर्ण शीर्ष संवैधानिक निर्णयों से उनका नाम जुड़ गया है। पूर्व प्र.म. अटलबिहारी वाजपेयी ने उनके निधन पर इन शब्दों में अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि दी थी, ''वे एक महान् भारतीय थे तथा विचारों और आदर्श में विशाल व्यक्तित्व।'' सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, जो स्वयं भारतीय संविधान के इतिहास में अमर हो गए हैं और जिनके जीने के अधिकार विषयक फैसले के समय असहमति के निर्णय के कारण मुख्य न्यायाधीश नहीं बनाया गया और उन्होंने सुप्रीम कोर्ट से इस्तीफा दे दिया था। ऐसे स्व. जस्टिस खन्ना ने उनके संबंध में कहा, ''वकालत के जिस स्तर पर वे पहुँचे, उसकी सुप्रीम कोर्ट में संभवत: ही कभी बराबरी हुई हो। उससे अच्छा स्तर कभी नहीं पहुँचा।'' जीने के अधिकार (right to Life) के जस्टिस खन्ना के निर्णय को मान्यता देते हुए गत वर्ष शीर्ष न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने पुराने फैसले को पूरी तरह निरस्त करते हुए अनेक तर्कों के साथ जस्टिस खन्ना के निर्णय को सही ठहराया। नानी अर्देशिर पालखीवाला का जन्म एक साधारण पारसी परिवार में १६ जनवरी, १९२० को हुआ और निधन ११ दिसंबर, २००२ में। नानी पालखीवाला केवल मात्र विश्वविख्यात विधिवेत्ता ही नहीं थे, वे एक असाधारण और बहुपक्षीय व्यक्तित्व के धनी थे। पालखीवाला अत्यंत मेधावी छात्र के रूप में प्रतिष्ठित हुए, अतएव उस समय उनके शुभचिंतकों ने उनको आई.सी.एस. की परीक्षा में बैठने की राय दी। पालखीवाला ने अपने निश्चय के अनुसार अपने लिए कानून का रास्ता चुना और शीघ्र ही देश के प्रमुख विधिवेत्ताओं की श्रेणी में गिने जाने लगे। अपनी वकालत के साथ बंबई के लॉ कॉलेज में कुछ समय के लिए उन्होंने कानून का अल्पकालिक अध्यापन किया। आज के बहुत से सुप्रसिद्ध कानूनवेत्ता, जैसे फाली नारीमन, सोली सोराबजी, अशोक देसाई आदि लॉ कॉलेज में उनके विद्यार्थी रहे। उनका वार्षिक बजट पर किसी प्रकार के नोट्स के बगैर विश्लेषणात्मक व्याख्यान तो एक कहानी, एक लीजेंड बन गया। किंतु नानी पालखीवाला का व्यक्तित्व और कार्यक्षेत्र न्यायालयों की परिधियों तक सीमित नहीं रहा।

नानी पालखीवाला एक संवेदनशील और समाजोन्मुखी व्यक्ति थे। उन्होंने वकालत में बहुत धनोपार्जन किया। उनके जीवन में लक्ष्मी और सरस्वती का सौहार्द दिखता है, साथ ही पार्वती की परदुखकातरता और कल्याणकारी प्रवृत्ति। पालखीवाला सदैव सोचते रहते थे कि गरीबों का जीवन स्तर कैसे उन्नति करे, किस भाँति उनमें आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता को विकसित किया जाए, कैसे वे अपने पैरों पर स्वयं खड़े हो सकें और अच्छे नागरिक बन सकें। पालखीवाला मानव गरिमा और मानव श्रेष्ठता के प्रबल समर्थक थे। वे विचार अभिव्यक्ति और वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा मानव अधिकारों की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते थे। बहुपाठी, अत्यंत पुस्तक-प्रेमी उनका स्नेह युवावर्ग पर था, क्योंकि वही भविष्य निर्माता होता है। अधिकाधिक शिक्षा का प्रसार हो, यह वह चाहते थे, ताकि देश में प्रबुद्ध नागरिकता का उदय हो, उसे प्रोत्साहन मिले और संपूर्ण समाज में उत्तरदायित्व की भावना पैदा हो। पालखीवाला का जीवन आध्यात्मिकता से ओतप्रोत था। उनमें न किसी प्रकार की संकीर्णता थी और न रूढ़िवादिता। उनका विश्वास था, पारस्परिक मेल-मिलाप और भाईचारे में सर्वधर्म समभाव एवं सहअस्तित्व के वे अपने जीवन में संवाहक थे। अपने जीवन में नानी पालखीवाला ने अनेक भूमिकाओं का निर्वाह किया। वे अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विधिवेत्ता, एडवोकेट, उद्योग समूहों के मार्गदर्शक तथा संचालक, प्रभावी एवं आकर्षक वक्ता तथा अमेरिका में भारत के राजदूत के रूप में जाने जाते हैं। हर भूमिका में उन्होंने अपनी श्रेष्ठता, आदर्शवाद, संवेदनशीलता तथा मानवता का परिचय दिया। सक्रिय राजनीति से अपने को अलग रखा। अटल बिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण आडवाणी के अनुरोध पर उन्होंने मोरारजी के प्रधानमंत्री काल में भारत का अमेरिका में राजदूत बनना कुछ समय के लिए स्वीकार किया और देश का गौरव बढ़ाया। सिद्धांतवादी ऐसे थे कि इंदिरा गांधी के चुनावी मुकदमे में उनका शीर्ष न्यायालय तक बचाव किया, किंतु उनके द्वारा आपातकाल की घोषणा के बाद बहुत अनुरोध पर भी पैरवी करने से इनकार कर दिया। अटार्नी जनरल, शीर्ष न्यायालय के न्यायाधीश, विधि मंत्री आदि पदों पर जाने में दृढ़ता से अनिच्छा व्यक्त की और इनकार कर दिया।

पालखीवाला शुचिता, सिद्धांतवादिता, न्यायप्रियता तथा विनम्रता और सभ्य व्यवहार की प्रतिमूर्ति थे। आज हर क्षेत्र में मूल्यों, मान्यताओं का पतन होता दिखाई देता है। आज जब नैतिकता की बात नारेबाजी में बदल गई है, प्रश्न उठता है कि एक प्रेरक, एक रोल मॉडल या आदर्श रूप में नई पीढ़ी के लिए किसे इंगित किया जाए, तब ध्यान जाता है नानी पालखीवाला के जीवन और अवदान की ओर। आज के इस भ्रमित और आपाधापी के समय में नानी पालखीवाला का व्यक्तित्व, कार्यशैली, कृतित्व और वैचारिक संपदा एक प्रभावी नैतिक मार्गसूचक, दिशा-निर्देशक की भूमिका संपादित करती है।

कुछ प्रतिष्ठित बुद्धिवादियों, न्यायवेत्ताओं, निवृतमान जजों आदि के सहयोग से पूर्व सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस वेंकटचलैया की अध्यक्षता में एक नानी पालखीवाला की शती भालिभाँति और सार्थक रूप में आयोजित करने के लिए समिति बनी है। दो अच्छे कार्यक्रम हो चुके हैं, एक क्विज (Quiz) का आयोजन, जिसमें देश के ४०-४५ लॉ कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों ने भाग लिया। विषय मुख्यतया संविधान से संबंधित था। विजयी टीम को एक लाख का पुरस्कार प्राप्त हुआ। लोकसभा

टी.वी. ने उसका प्रसारण भी किया। एक कार्यक्रम इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, दिल्ली में हुआ। जिसमें शीर्ष न्यायालय के निवर्तमान न्यायाधीश जस्टिस लाकूर ने अपने विचार व्यक्त किए। अध्यक्षता की पूर्व अटार्नी जनरल देसाई ने। सर्वोच्च न्यायालय के सीनियर एडवोकेट और एक्टिविस्ट प्रशांत भूषण ने भी अपने विचार व्यक्त किए। श्रोताओं की अच्छी भागीदारी थी। जनता में पालखीवाला के विषय में देश में अधिक-से-अधिक जानकारी हो सके एक सुंदर सार्थक पुस्तक 'बेमिसाल पालखीवाला—एक प्रेरणास्रोत' मेजर जनरल नीलेंद्र कुमार ने लिखी है। वे आर्मी के पूर्व एडवोकेट जनरल हैं। उन्होंने पहले भी पालखीवाला के संबंध में विद्वानों के आलेखों का संपादन किया है। प्रयास होगा कि छोटी सी पुस्तक का अनुवाद देश की कुछ अन्य भाषाओं में भी किया जाए। २९ मार्च के अगले कार्यक्रम के मुख्य अतिथि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश जस्टिस चंद्रचूड़ का भाषण होगा। डॉ. सिंघवी (सांसद राज्य) सभा और वरिष्ठ अधिवक्ता भी अपने विचार प्रकट करेंगे। माननीय राष्ट्रपति को पालखीवाला के संबंध में और उनके द्वारा रचित साहित्य को भेंट किया जाएगा। अन्य स्थानों पर भी पालखीवाला मेमोरियल भाषण होंगे। सबको संपादित कर एक ग्रंथ का प्रकाशन होगा। समापन समारोह माननीय उपराष्ट्रपति के निवास पर करने का अनुरोध किया गया है, एक स्मरणांजलि का विमोचन भी उसी समय होगा। पालखीवाला के निधन पर डाक टिकट जारी हुआ था, आशा है एक और डाक टिकट शती समारोह के उपलक्ष्य में भी जारी हो जाएगा। सीमित साधनों के होते हुए भी समिति पालखीवाला शती समारोह अच्छे स्तर पर आयोजित करने के लिए कटिबद्ध है। काश, केंद्र सरकार और राज्य सरकारों का समुचित सहयोग भी मिलता!

प्रधानमंत्री मोदी की 'मन की बात'

फ्रैंकलिन रूजवेल्ट जब अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गए, उस समय अमेरिका में तथा बहुत से अन्य देशों में भी निराशा व हताशा का वातावरण फैला हुआ था। यह प्रारंभ था उस आर्थिक अवस्था का, जिसको बाद में The Great Depression का नाम अर्थशास्त्रियों ने दिया। कीमतें गिर रही थीं, खेतीबाड़ी में केवल नुकसान था, उद्योग-धंधे बंद हो रहे थे, अतएव बेरोजगारी बढ़ रही थी, बैंक और व्यापारिक संस्थाएँ फेल हो रही थीं, लोगों के पास पैसा व खाने-पीने की दैनिक आवश्यकताओं का अभाव था। २००८ में लेहमेन ब्रदर्स के इनवेस्टर बैंक भी फेल हो जाने के बाद उसी प्रकार का वातावरण बन रहा था, पर बहुत से कदम उठाए गए, जिसके कारण उसको Recession अथवा कहा गया कि अब वैश्विक आर्थिक व्यवस्था की अवनति की गति थम गई। १९२८-२९ के ग्रेट डिप्रेशन के समय तरह-तरह के विरोधात्मक आंदोलन प्रारंभ हुए, जैसा २००८ में भी हुआ, पर अमेरिकी सरकार के उठाए गए कदमों से पिछली तरह का गिराव नहीं हुआ। १९२८-२९ में भारत भी उस बड़े गिराव की चपेट में आया था। खेतीबाड़ी और कमजोर आर्थिक तबके के परिवारों को बहुत कष्ट उठाने पड़े। यह बहुत लंबी कहानी है और इस पर बहुत कुछ लिख भी गया है। कीन्सियन इकोनॉमिक्स का एक नया अध्याय ही अर्थशास्त्र के पठन-पाठन में शुरू हुआ। प्रसिद्ध अमेरिकन अर्थशास्त्री जे.के. गैलवेथ की इस विषय पर प्रसिद्ध पुस्तक है। वे जे.एफ.के. केनेडी के राष्ट्रपतित्व काल में भारत में अमेरिकी राजदूत रहे। उन्होंने उसके अनुभव भी लिखे हैं। इस पूरे इतिहास में जाना न संभव है और न आवश्यक।

फैले हुए नकारात्मक और हतोत्साह के वातावरण में नए चुए गए अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने नैराश्य के वातावरण के निराकरण के लिए अनेक प्रयत्न किए। उन्होंने एक नारा दिया—The greatest fear is the fear itself. जनता में निराशा की मानसिकता और भविष्य के प्रति जो तरह-तरह की आशंकाएँ उठ रही थीं, उनके प्रति आश्वस्त करने की कोशिश की। रेडियो के माध्यम से उन्होंने जनता में भविष्य के बारे में विश्वास निर्मित करने की कोशिश की। जनता को बताया कि राहत के लिए सरकार क्या कर रही है और धीरे-धीरे परिदृश्य बदलेगा। उसको उन्होंने Fireside chats कहा था, मानो घर बैठे हुए अँगीठी में हाथ सेंकते हुए वे परिवार से बातचीत कर रहे हैं।

नरेंद्र मोदी ने २०१४ में प्रधानमंत्री का दायित्व सँभालने के बाद उसी प्रकार रेडिया पर प्रसारित 'मन की बात' द्वारा जनता जनार्दन से सीधा संवाद स्थापित करने का प्रयास किया। उनका भी उद्देश्य सर्ववसाधारण में नकारात्मक सोच को छोड़कर सकारात्मक मानसिकता का निर्माण हो और जनता जनार्दन में भविष्य के प्रति आस्था और विश्वास जाग्रत् हो। कैसे इस प्रकार का विचार अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा से वार्त्तालाप के बाद आया, इसकी चर्चा पुस्तक में है। २०१९ के आम चुनाव चूँकि मई तक संपन्न हो जाएँगे, उन्होंने अपने मार्च २०१९ की 'मन की बात' में कहा कि अगली बातचीत अब मई के चुनाव के बाद ही होगी। 'मन की बात' कार्यक्रम का आरंभ विजयादशमी, अक्तूबर २०१४ से प्रारंभ हुआ। आज रेडियो टेक्नोलॉजी पहले के मुकाबले बहुत अधिक विकसित हो गई है। वे स्वयं टेक्नोलॉजी के अधिक-से-अधिक प्रयोग के प्रबल पक्षधर हैं। 'मन की बात: एक सामाजिक क्रांति रेडियो पर' ५० एपीसोड संकलित हैं। इसके पहले संस्करण का विमोचन २६ मई, २०१७ को राष्ट्रपति भवन में हुआ। तत्कालीन राष्ट्रपति श्री प्रणव मुकर्जी को प्रथम पुस्तक भेंट की गई। यह दूसरा संस्करण यूथ केयर डिजिटल फाउंडेशन के सहयोग से प्रसिद्ध प्रकाशक रूपा, दिल्ली ने अभी हाल में प्रकाशित किया है। पुस्तक के दो भाग हैं। प्रारंभ में जापान के प्रधानमंत्री शिंजो आबे का संदेश है, जिसमें वे कहते हैं, ''अंतरराष्ट्रीय जगत् के बहुत से नेताओं से मिलने के बाद मैंने पाया कि प्रधानमंत्री मोदी किसी से पीछे नहीं हैं, अपनी सोच में अपने देश के विकास के लिए एक स्ट्रेटेजिक एवं दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में।'' प्रथम भाग में किस प्रकार 'मन की बात' की कल्पना ने जन्म लिया और उसके पीछे किन विशेष मुद्दों का संबल है, इसकी विवेचना है। हर 'मन की बात' की प्रतिक्रिया किस प्रकार की है, इसकी प्रधानमंत्री मोदी के ऑफिस में काफी जाँच-पड़ताल होती है, और उसके आधार पर प्र.म. निश्चित करते हैं कि किन-किन मुद्दों को उठाएँ, किन नीतियों और विचारों व मूलभूत समस्याओं पर अपने विचार प्रकट करें। युवकों को प्रेरणा प्रदान करना एक विशेष मंतव्य है। मन की बात में राजनीति को अलग रखने की चेष्टा है। मन की बात शृंखला का क्या प्रभाव हुआ है, इस पर भी टिप्पणी की गई है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने संकलन ५० 'मन की बात' में सामयिक समस्याओं और देश की मूलभूत समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किए हैं। इन ५० एपिसोड की विविधता आश्चर्यजनक है। कोई भी समाज की समस्या या प्रशासन का पक्ष हो, अपने मन की बात में किसी को भी उन्होंने छोड़ा नहीं है। शिक्षा, विज्ञान, स्वास्थ्य, कृषि की समस्याएँ, त्योहारों का महत्त्व, खेलकूद, वातावरण, खादी स्वच्छता, तिलक का गणेश उत्सव, महापुरुषों का स्मरण, शहीद दिवस, सामाजिक एकता, देश की शक्ति आदि-आदि पर नरेंद्र मोदी ने

दिल खोलकर अपने विचार जनता के सम्मुख रखे हैं। नवंबर २०१८ की मन की बात में वे बताते हैं कि क्यों उन्होंने जनसंपर्क के लिए रेडियो का माध्यम चुना, संविधान का सत्तरवाँ वर्ष, गुरु नानक देवजी का ५५०वाँ जन्मदिवस आयोजन आदि में उनके विचार हैं। सुनने से अधिक इनको एक साथ पढ़ने से पता चलता है कि उनके सोचने और उसको प्रकट करने में उनका दिल और दिमाग किस प्रकार क्रियाशील है। जगह-जगह मोदीजी की विचारसरणी से कुछ उदाहरण भी दिए गए हैं। संकलन प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व और उनकी एक नए भारत की कैसी अवधारणा है इसका एक जीवंत चित्र रेखांकित करता है। हमारा प्रयास तो सुधी पाठक के संज्ञान में 'मन की बात' के इस संकलन को लाना है। भारत के Contemporary अथवा समसामायिक इतिहास के अध्येताओं के लिए यह पुस्तक अत्यावश्यक है। आने वाले वर्षों में भी शोध के लिए इसका उतना ही महत्त्व है। यह संकलन अंग्रेजी में है। हमें आशा है, अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसका अनुवाद शीघ्र उपलब्ध हो सकेगा। ऐसे ग्रंथ की उपादेयता को चुनावी माहौल से जोड़ना दूरदृष्टि के अभाव का ही परिचायक होगा। देश की समस्याओं पर समग्रता के साथ चर्चा करना कोई आसान बात नहीं है। प्रकाशक और उनके सहयोगी इस प्रयास के लिए साधुवाद के पात्र हैं। इसको सार्वजनिक पुस्तकालयों और कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में पहुँचाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

क्रांतिकारी शहीदों की अवमानना

डॉ. टी.आर. सरीन, जो भारतीय इतिहास शोध परिषद् (ICHR) के निदेशक रह चुकेहैं और उन्होंने भारतीय क्रांतिकारियों की विभिन्न देशों में क्रांतिकारी गतिविधियों पर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। डॉ. सरीन की पिछले दिनों प्रकाशित एक पुस्तक 'Studies on Indian Patriotic Exiles and the Nation Movement' के एक अध्याय में कुछ जानकारी प्राप्त हुई कि पिछली शताब्दी के छठे दशक तक, आजादी प्राप्त होने के बाद भी क्रांतिकारियों के प्रति कैसा उदासीनता और अवमानना का रुख रहा। शायद सरकार जिन शहीदों और स्वतंत्रता संग्राम के भागीदारों को १५ अगस्त, २६ जनवरी को प्रतिवर्ष आदरपूर्वक स्मरण करने का दम भरती है, उसके लिए स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में उन क्रांतिकारियों के लिए, जिन्होंने अपना जीवन स्वराज संग्राम में कुर्बान कर दिया अथवा अंडमान में देश निकाले की यातनाएँ सहीं, कोई स्थान था ही नहीं। यही कारण रहा है कि स्वराज संग्राम संबंधी पुस्तकों में, जो सरकार की ओर से प्रकाशित हुईं, उनकी भूमिका की बहुत कम चर्चा हुई। एक प्रकार से उसको नकारा गया अथवा बहुत गौण माना गया। अपने निजी अनुभव के आधार पर डॉ. सरीन लिखते हैं, जिसे हम उन्हीं के शब्दों में उद्धृत करना चाहेंगे—In the early sixties, during initial of any research when I submitted extracts from records performing to Indian revolutionaries in London and especially concerning events leading to the assassination of Sir Curzon Wylie ADC of the India office by Madan Lal Dhingra in 1909, I was dissuaded by the Director of Archives on she basis of instmetars received from the ministry the ministry from 'Writing about terrorist activities' primarily because I am a government servant and "the policy of the Govt. of India is to discouerage unnecessary publicity of terrorist activities.' It is a result of teis my research in the subject was delayed by a few years. But the justification given in my support by ozc Director defending my interest in the subject is as relevant to today for historical research as it was during the sixties. He wrote to the concerned authorities that "a research scholar who undertakes to work on a revolutionary incident does not do so with the intention of prompting revolutionary objectives or publicising revolutionary methods. He does so with the legitimate objective of presenting an accurate history of that incident. Mr. sarinis aim is plainly for present an objective account of an historical even which is still insufficiently known and not to publicise terrorist activities. The task , I think, it will be readily admitted was worth under taking particularly, in used of the possible miscancertion on the subject. I think it is not the present Govt's policy to discourage such research activities as may aim at a correct reconstruction of such phases in our history on which because of the lack of documentary materials we still have hazy or incorrect notions".

उपरोक्त का संक्षेप में तात्पर्य यह है कि डायरेक्टर ने डॉ. सरीन को कहा कि सरकार की नीति व्यर्थ में आतंकवादियों की गतिविधियों को अधिक प्रचार करने की नहीं है, खासकर जब वे सरकारी नौकर हैं। हम नहीं जानते कि वह कौन निदेशक था, जिसने एक सुविचारित उत्तर मंत्रालय को दिया। पर भला हो उसका कि उसने तर्कपूर्ण शोध का पक्ष सरकार के सामने रखने का साहस दिखाया। मंत्रालय या तो उस समय का शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय अथवा गृह मंत्रालय रहा होगा। जो भी हो, यह क्रांतिकारियों के प्रति एक अवमानना की सोच अथवा प्रवृत्ति का ही परिचायक है। डॉ. सरीन को शोधकार्य पूरा करने में कुछ वर्षों का विलंब हो गया। निदेशक ने मंत्रालय को लिखा कि शोधकर्ता की मंशा न क्रांतिकारी उद्देश्यों और न उनके द्वारा अपनाए साधनों के प्रचार करने की होती है। उसका मंतव्य तो केवल यही होता है कि किसी महत्त्वपूर्ण घटना, जिसके विषय में जानकारी की कमी है अथवा गलत भावनाएँ हैं, उसके बारे में दस्तावेजों और तथ्यों को खोजकर एक सही तथ्यात्मक तसवीर प्रस्तुत करे। ध्यान देने की बात है कि स्वतंत्र भारत में सरफरोशी की तमन्ना रखनेवाले क्रांतिकारियों की गतिविधियों को आतंकी कहा जाए, यह कितना बड़ा अन्याय है। इस विषय में संसद् और उसे बाहर बहुत विरोध हुआ तथा उस समय से क्रांतिकारियों को टेरेरिस्ट कहना बंद हुआ। केवल पुराने विदेशी शासन के समय में सरकारी रिपोर्टों या दस्तावेजों में ही यह शब्द मिलता है। लेकिन पता चलता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति का सब श्रेय सरकार अहिंसक आंदोलनों के अनुयायियों को देना चाहती थी। क्या श्रीअरविंद को आतंकवादी कहेंगे? धींगरा प्रकरण में वीर सावरकर की उल्लेखनीय भूमिका थी और उनसे तो कांग्रेस के कुछ कर्णधारों को विशेष चिढ़ थी। भाई परमानंद, लाला हरदयाल, सोहन सिंह माखना आदि गदर आंदोलन के संस्थापकों में से थे। उनका मंतव्य और प्रयास केवल ब्रिटेन की गुलामी से भातर को मुक्त कराना था। जैसा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी

ने शहीदों का श्राद्ध करने का दायित्व सँभाला। स्वयं खोज की, दूसरों को उनके विषय में लिखने को प्रोत्साहित किया। राम प्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आजाद की माताओं को मामूली पेंशन का प्रबंध करवाया। अपने समय में पं. गणेशशंकर विद्यार्थी बहुत कुछ करते रहे। बनारसीदासजी ने स्कूलों और कॉलेजों को भूले-बिसरे क्रांतिकारियों के संबंध में विशेषांक अथवा संस्मरण ग्रंथ प्रकाशित करने के लिए प्रोत्साहित किया। सुधीर विद्यार्थी ने भी कुछ प्रशंसनीय कार्य इस दिशा में करने का प्रयास किया है। हमारा कर्तव्य है कि हम उनको विस्मृत न कर दें, जिनके बलिदान के फलस्वरूप स्वतंत्र भारत के नागरिक कहलाने में गर्व महसूस करते हैं।

२०१९ के आम चुनाव की रणभेरी

वैसे तो पिछले दो-तीन महीनों से भारतीय राजनीति आम चुनाव के दृष्टिकोण से ही प्रेरित है। संसद् और संसद् के बाहर जो गतिविधियाँ हुई हैं, और जो कुछ कहा-सुना गया है, उसके पीछे २०१९ के चुनाव में क्या होगा, यह प्रश्न प्रमुख हो गया था। लेकिन जैसे ही चुनाव आयोग ने तारीखों की घोषणा कर दी, ११ अप्रैल से चुनाव का प्रारंभ है और १९ मई तक समापन हो जाएगा। २३ मई को नतीजे घोषित होंगे और पता चलेगा कि कौन सरकार बनाएगा। चुनाव आयोग ने १० मार्च को लोकसभा की ५४३ सीटों पर सात चरणों में चुनाव होगा। चुनाव की घोषणा के साथ ही चुनाव आचार संहिता तुरंत लागू हो गई है। उसका प्रभाव दिखाई भी पड़ रहा है। अतएव सरकार कोई नीतिगत फैसला नहीं कर सकेगी। मुख्य चुनाव आयुक्त सुनील अरोड़ा ने स्पष्ट किया कि देश के हरेक मतदान केंद्र पर वीवीपेटी युक्त ई.वी.एम. का इस्तेमाल होगा। वैसे ई.वी.एम. द्वारा चुनाव पूर्णतया सुरक्षित है, फिर भी कुछ विरोधी दलों की शिकायतों के कारण और सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को देखते हुए यह निर्णय लिया गया है। मुख्य आयुक्त अरोड़ा ने सबसे निवेदन किया कि राष्ट्र की लोकतांत्रिक परंपराओं के अनुसार चुनाव अभियान में राजनैतिक विचारों और बातचीत में उच्च मानकों को बनाए रखना आवश्यक है। आयोग पूरी चेष्टा करेगा कि चुनाव निष्पक्ष हों। तिथियों की घोषणा के साथ ही प्रथम बार कुछ नए कदमों की घोषणा की, जैसे १९५० पर डायल कर मतदाता हर तरह की जानकारी प्राप्त कर सकता है, ई.वी.एम. में हर प्रत्याशी की तसवीर होगी, सोशल मीडिया पर विशेष निगरानी रहेगी, सभी दलों और उम्मीदवारों को सोशल मीडिया के प्रचार की मंजूरी लेनी होगी, ई.वी.एम. की जी.पी.एस. सिस्टम से ट्रैकिंग की जाएगी, पर्यावरण को हानि पहुँचानेवाली सामग्री पर रोक लगाई गई है। चुनाव आयोग ने यह भी बाद को स्पष्ट किया कि दलों और प्रत्याशियों के मैनिफेस्टो पहले आ जाने चाहिए, चुनाव प्रचार स्थगित होने के बाद नहीं।

भारतीय आम चुनाव विश्व का सबसे बड़ा चुनाव होता है। सभी देशों की आँखें इस चुनाव प्रणाली और नतीजों पर लगी हैं। मतदाताओं की संख्या अमेरिका की पूरी जनसंख्या से तिगुनी है। लोकसभा का चुनाव कराना कितना महान् और जटिल कार्य है, उसकी सामग्री एकत्र करना, इतने बड़े देश में भेजना और मतपेटियों और मतदान अधिकारियों की सुरक्षा आदि का, इसका एहसास आसान नहीं है। १७वीं लोकसभा गठन के लिए यह चुनाव है। चुनावी तैयारी की कठिनाइयों के विषय में अभी और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

देश के सामने चुनावी मुद्दे और मसले अनेक हैं। समय-समय पर उनपर चर्चा होती रही। अभी भी दलों के नेता अपने भाषणों में तरह-तरह की बातें कह रहे हैं, आश्वासन दे रहे हैं। उनके मैनिफेस्टो आने के बाद ही हम चर्चा करना चाहेंगे, किंतु सभी राजनैतिक दल फँसे हैं एक दलदल में, जिसको प्रत्याशी नहीं बनाया जाए, वह दूसरे दल का उम्मीदवार बनता है। यह है राजनीति में पार्टी के प्रति वफादारी और प्रतिबद्धता। एक और तसवीर उभर रही है कि हर दल में भाई, बेटा, बेटी को लाने की। अब डाइनेस्टी एक विशद रूप ले रही है। राजनीति एक व्यापार बनती जा रही है, जहाँ बाप के बाद बेटा, बेटी या भाई इत्यादि हकदार होगा, चाहे किसी प्रकार का अनुभव हो या नहीं। राजनीति स्वयं पेशे का रूप धारण कर चुकी है। यह कहाँ तक लोकतंत्र के लिए उचित है, यदि प्रजातंत्रात्मक परंपराओं की बात करते हैं। इसी प्रकार मुद्दों का सवाल है। वे अधिक नकारात्मक प्रक्रियाएँ हैं। राहुल गांधी, कांग्रेस अध्यक्ष तरह-तरह के झुनझुने बजाने के आदी हो गए हैं। जो झुनझुना उनकी टीम ने दिया, वही बजाएँगे। फिलहाल राफेल वाला झुनझुना उनका मनभाया हो गया है, वही हर समय बजा रहे हैं। उसी तरह सत्ता दल में भी बकवास करनेवाले कम नहीं हैं। उस सबके विवेचन में हम नहीं जाना चाहेंगे। जिन बिंदुओं का ऊपर जिक्र किया है, उसके विषय में अगले अंक में अवश्य चर्चा करेंगे।

चुनावी माहौल में कुछ पुस्तकों का हम जिक्र करना चाहेंगे। एक है रुचिर शर्मा की 'डेमोक्रेसी ऑन द रोड', जिसमें चुनावी वातावरण, जनता की प्रतिक्रिया समझने के प्रयास में वह २५ साल अलग-अलग राज्यों में जाते हैं, नेताओं के भाषण सुनते हैं, कभी उनसे बात करते हैं, कभी मतदाताओं से। इस दौर में उनके साथ काफी प्रतिष्ठित पत्रकार भी शामिल होते हैं। पुस्तक काफी दिलचस्प है। वाजपेयी से लेकर मोदी तक के अनुभव का निचोड़ है। २०१९ का चुनाव मोदी बनाम राहुल गांधी तथा अन्य हो गया। आलेखों का एक संकलन 'नए भारत की ओर', जिसके संपादक हैं हर्षवर्धन त्रिपाठी और शिवानंद द्विवेदी। दूसरी पुस्तक है डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री की 'नरेंद्र मोदी होने का अर्थ'। दोनों पुस्तकें (प्रकाशक प्रभात प्रकाशन) नरेंद्र मोदी के कार्यों और कार्य पद्धति के आकलन में उपयोगी हैं। एक और पुस्तक, जिसे मैं सुधी पाठकों के संज्ञान में लाना चाहूँगा, रूपा दिल्ली से अभी प्रकाशित हुई है। पुस्तक का नाम है 'व्हेन इंडिया वोट्स' 'द डाइनेमिक्स ऑफ सक्सेसफुल इलेक्शन कैंपेनिंग' यह दो विशेषज्ञों जैश्री जेठवानी और समीर कपूर ने लिखी है। चुनावी कैंपेनिंग के विविध पहलुओं के विषय में अत्यंत सार्थक विश्लेषण है। यह पुस्तक चुनावी कैंपेनिंग के संबंध में एक विशेष उपलब्धि है। यह जनसाधारण और राजनैतिक नेताओं, दोनों के लिए उपयोगी है।

□

हमारे जागरूक पाठकों ने देखा होगा कि हमारे कार्यालय ने हमारे साथ होली खेली है। चतुर्वेदी से त्रिपाठी बना दिया। नुकसान एक चौथाई ही हुआ। होली में लोग अनेक जीव-जंतुओं की यात्रा निकालते हैं, लोगों को तरह-तरह के नामों से महिमा-मंडित करते हैं। और इस वर्ष तो होली और अप्रैल का पहला दिन नजदीक हैं। यह भूल दोनों का मिला-जुला प्रतिसाद है, जो हमें कार्यालय से मिला है। उसके लिए अनेकानेक धन्यवाद!

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

प्रतिस्मृति

सरस्वती तट से निकली सांस्कृतिक जय-यात्रा

● देवेंद्र स्वरूप

सुप्रसिद्ध इतिहासविद् श्री देवेंद्र स्वरूप शिक्षा पूर्ण करने के बाद १९४७ से १९६० तक संघ के प्रचारक रहे। महात्मा गांधी की हत्या के पश्चात् संघ पर लगे पहले प्रतिबंध के दौरान ६ माह तक कारावास में बंदी। संघ की योजना से सन् १९५८ में हिंदी साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य' के संपादन से जुड़े। सन् १९६४ में दिल्ली विश्वविद्यालय के पी.जी. डी.ए.वी. कॉलेज में इतिहास विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए, सन् १९९१ में सेवानिवृत्त। इस दौरान अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के दिल्ली प्रदेश के अध्यक्ष रहे। सन् १९६८ से १९७२ तक अवैतनिक संपादक के रूप में 'पाञ्चजन्य' का संपादन कार्य भी किया। आपातकाल में फिर बंदी बनाए गए। सन् १९८० से १९९४ तक दीनदयाल शोध संस्थान के निदेशक व उपाध्यक्ष रहे। इस दौरान संस्थान की त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' (हिंदी व अंग्रेजी) के संपादन का कार्य किया। इतिहासकार के रूप में भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् से भी जुड़े रहे।

विष्णु पुराण का यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम, भारती यत्र सन्तति॥

अर्थात् समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो वर्ष स्थित है, उसका नाम भारत है और उसकी संतति को भारती कहते हैं। अपनी लोकप्रियता के कारण प्राचीन काल में भारत की भौगोलिक एकता के साक्षात्कार के प्रमाण के रूप में बहुधा इसी श्लोक को प्रस्तुत किया जाता है। आधुनिक विद्वत्ता ने विष्णु पुराण का रचना काल पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में रखा है। इसलिए हम गर्व के साथ कहते हैं कि हमारे पूर्वजों ने भारत जैसे विशाल भूखंड की एकता का साक्षात्कार कम-से-कम पंद्रह सौ साल पहले कर लिया था। कोई भी अन्य सभ्यता या साहित्य अपने देश के बारे में ऐसा प्रमाण प्रस्तुत नहीं करता, किंतु इसके पूर्व महाभारत और रामायण आदि ग्रंथ पूरे भारत का भौगोलिक परिचय दिग्विजय वर्णन, तीर्थयात्रा वर्णन एवं स्वयंवर वर्णन के द्वारा प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक विद्वत्ता ने इन ग्रंथों के रचनाकाल को विवादास्पद बना दिया है। महाभारत के बारे में यह धारणा बन गई है कि उसका महाभारत युद्ध से लेकर सातवाहन काल तक लगातार संशोधन, परिवर्तन होता रहा। अत: उसका कौन सा अंश किस काल की रचना है, यह कहना कठिन है। उसमें सरस्वती के प्रवाहमान होने का वर्णन भी है और उसके लुप्त होने के बाद का वर्णन भी।

किंतु कौटिल्य अर्थशास्त्र के रचनाकाल के बारे में तो अब आम सहमति बन चुकी है कि वह नंद वंश का उच्छेदन कर चंद्रगुप्त मौर्य को मगध साम्राज्य के सिंहासन पर बैठाने वाले आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य उपनाम कौटिल्य की ही रचना है। इसलिए आधुनिक विद्वत्ता के द्वारा निर्धारित भारतीय इतिहास के तिथिक्रम में उसका रचना काल चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व अर्थात् विष्णुपुराण से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पीछे चला जाता है। इस कौटिल्य अर्थशास्त्र के नवम् अधिकरण के १३५-१३६ प्रकरण में चक्रवर्ती क्षेत्र की व्याख्या निम्न सूत्र में की गई है—

देश: पृथिवी! तस्यां हिमवत्समुद्रांतर मुदीचीनम्।
योजन सहस्र परिमाणं तिर्यक चक्रवर्तीक्षेत्रम्॥

अर्थात् हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्रपर्यंत, पूर्व से पश्चिम दिशा में एक हजार योजन तक फैला हुआ भू-भाग चक्रवर्ती क्षेत्र है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र का यह सूत्र अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। वह उत्तर और दक्षिण की सीमाओं के साथ-साथ पूर्व-पश्चिम के विस्तार को भी स्पष्ट करता है। चक्रवर्ती क्षेत्र कहने का अर्थ है भारत की राजनीतिक एकता का लक्ष्य और यह लक्ष्य केवल भारत की प्राकृतिक सीमाओं तक सीमित है। अन्य देशों पर आक्रमण करने अथवा उन पर अपना साम्राज्य स्थापित करना अभिप्रेत नहीं है, किंतु इस सूत्र का महत्त्व इस बात में है कि यहाँ देश अर्थात् भूभाग को पृथिवी नाम दिया गया है। आजकल सामान्यतया पृथिवी शब्द से हम पूरे भूमंडल को संबोधित करते हैं। अत: प्रश्न खड़ा होता है कि कौटिल्य ने हिमालय से समुद्र तक के देश को पृथिवी क्यों कहा? इस प्रश्न ने हमें बहुत चक्कर में डाला और उसका उत्तर खोजने के प्रयास में हमें अनेक बहुमूल्य संदर्भ मिले, किंतु अभी उसे यहीं छोड़ देते हैं। अपने मन का दूसरा प्रश्न आपके सामने रखते हैं। कौटिल्य के सामने भारत की राजनीतिक एकता का लक्ष्य क्यों खड़ा हुआ? क्या उसकी प्रकृति प्रदत्त भौगोलिक एकता के कारण? किंतु उस भूगोल के भीतर विद्यमान भाषायी, उपासनात्मक, सामाजिक एवं आर्थिक, राजनीतिक विविधता से युक्त अनेक जनपदों में विभाजित देश पर किसी एक जनपद के राजा को दिग्विजय के द्वारा चक्रवर्ती के सिंहासन पर बैठाना क्या साम्राज्यवादी विजय का ही दूसरा नाम नहीं है? कौटिल्य अर्थशास्त्र के अध्ययन से प्रगट होता है कि इस बहुमुखी विविधता के बीच सांस्कृतिक एकता के सूत्र तब तक

विकसित हो चुके थे और वह सांस्कृतिक एकता ही स्वयं को राजनीतिक एकता के रूप में अभिव्यक्त करने को बेचैन थी। उस युग में आवागमन और यातायात की कठिनाइयों को देखते हुए भारत जैसे विशाल भूखंड को एक राजनीतिक केंद्र से शासित और नियंत्रित करना लगभग असंभव था, अत: चक्रवर्ती व्यवस्था ही उसका सर्वोत्तम उपाय हो सकती थी।

यही भारत की इतिहास यात्रा की विशेषता है, इसी कारण यूरोपीय इतिहास में से उपजी अवधारणाएँ भारतीय इतिहास पर लागू नहीं हो पातीं। १८वीं और १९वीं शताब्दी में जनमे छोटे-छोटे यूरोपीय राष्ट्रों की सीमाओं का निर्धारण राजनीतिक विस्तारवाद ने किया। उन्होंने पहले राजनीतिक एकता प्राप्त की, उसके आधार पर अपने राज्य की भौगोलिक सीमाओं की व्याख्या की और उन सीमाओं के भीतर रहनेवाले समाज पर भाषा, उपासना, नस्ल आदि सांस्कृतिक एकरूपता थोपने का प्रयास किया। इसी को उन्होंने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया कहा, जबकि भारत में इससे उलटा हुआ। यहाँ भौगोलिक एकता का साक्षात्कार पहले हुआ। उसमें विद्यमान विविधता को शिरोधार्य करते हुए विविधता के बीच एकता के सांस्कृतिक सूत्रों का विकास किया गया।

६३ मंत्र लंबा पृथिवी सूक्त अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसी सूक्त के १२वें मंत्र में माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या; अंश को भारतमाता के प्रति हमारी पुत्रवत् भक्ति भावना का प्रथम उद्घोष कहा जाता है। इस छोटे से अंश में 'भूमि' और 'पृथ्वी' दोनों शब्दों का प्रयोग है। क्या वे एक ही हैं या अलग-अलग हैं? यदि यहाँ 'पृथिवी' शब्द 'भूमि' का पर्याय है तो क्या हम पूरे भूमंडल को अपनी माता और स्वयं को उसका पुत्र बता रहे हैं? क्या इस सूक्त में 'पृथिवी' नामक भूखंड की पहचान के भी कुछ संकेत विद्यमान हैं? अगला ही मंत्र पृथिवी की सांस्कृतिक पहचान को स्पष्ट कर देता है कि जिस भूमि पर यज्ञवेदियों का निर्माण कर विश्वकर्मा यज्ञों का विस्तार करता है, जहाँ आहुति देने के लिए यज्ञस्तंभ खड़े हैं।

यहाँ यह प्रश्न उठाया जाना चाहिए कि भारत जैसे विशाल भूखंड की भौगोलिक एकता का साक्षात्कार सर्वप्रथम किसने किया? दुर्गम जंगलों, विशाल नदियों, ऊँचे पहाड़ों को लाँघकर किस मानव समूह ने पूरे देश को छान मारा? उसकी प्रेरणा क्या थी? लक्ष्य क्या था? क्या पूरे भारतवर्ष का भौगोलिक परिचय किसी एक पीढ़ी के वश की बात रही होगी? कितनी शताब्दियाँ, सहस्राब्दियाँ लगी होंगी इस खोज में? क्या प्रेरणा थी इस खोज के पीछे? निश्चय ही राजनीतिक विजय तो नहीं ही थी। भारत की भोगौलिक एकता का साक्षात्कार करनेवाली प्रक्रिया और तंत्र की प्रेरणा राजनीतिक कदापि नहीं थी। यदि वह प्रक्रिया और तंत्र सांस्कृतिक था तो उसका उद्गम स्थान भारत में किस क्षेत्र में था, कहाँ था? और वह सांस्कृतिक प्रवाह अपने मूल निवास से बाहर कब निकला, कितने चरणों में कितनी शताब्दियों या सहस्राब्दियों में उसने पूरे भारत को आप्लावित कर दिया, इस विशाल भूखंड की विविधता को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में गूँथ दिया, उसे एक सांस्कृतिक व्यक्तित्व या पहचान प्रदान की?

इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए जब हम आधुनिक शोध पद्धति से कौटिल्य से पीछे जाते हैं तो पाते हैं कि बौद्ध त्रिपिटक के सबसे पुराने अंश दीघ निकाय से भी पुराने माने गए महागोविंद सुत्त में भारत भूमि के स्वरूप का सटीक चित्रण उपलब्ध है। वहाँ भारत भूमि का स्वरूप बैलगाड़ी जैसा (शकरमुखी) बताया गया है। कहा गया है कि उत्तर का क्षेत्र आयताकार है और दक्षिण का क्षेत्र बैलगाड़ी के अगले भाग (शकटमुख) जैसा त्रिकोणीय। महत्त्व की बात यह है कि महा गोविंदसुत्त भी इस शकटाकार भूखंड को महापठवीं नाम से संबोधित करता है। आश्चर्य होता है कि उस युग में किस विधि से भारतीय मनीषियों ने सहस्रों योजन लंबे-चौड़े इस भूखंड के भौतिक स्वरूप को अपनी आँखों में बाँधा होगा। पुराणों में इस स्वरूप की उपमा कहीं गर्दन फैलाए कछुवे से दी गई है तो कहीं प्रत्यंचा खिंचे धनुष के साथ। ये सब उपमाएँ पंद्रह सौ-दो हजार वर्ष पुरानी तो हैं ही। बौद्ध और जैन साहित्य में भगवान् बुद्ध एवं तीर्थंकर महावीर की समकालीन जनपद सूचियों को देखने से विदित होता है कि ये जनपद पश्चिम में अफगानिस्तान और ईरान से लेकर पूर्व में बंगाल तक और दक्षिण में समुद्र तक फैले हुए थे।

बौद्ध साहित्य में भारत नामक बड़ी भौगोलिक इकाई के पाँच विभाजन यथा—उत्तरापथ, मध्यदेश, प्राच्यदेश, दक्षिणापथ एवं अपरांत का भी उल्लेख मिलता है। स्पष्ट ही, छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व तक किसी केंद्रीय व्यवस्था ने भारत नामक इकाई का पाँच भागों में विभाजन भी कर दिया था, जो उस समय तक पूरी तरह प्रचलित हो चुका था। भारत या इंडिया के इन पाँच विभागों का उल्लेख तीसरी-चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व के यूनानी साहित्य में भी मिलता है।

इसका अर्थ है कि भारत की भौगोलिक एकता का साक्षात्कार बुद्ध और महावीर के समय से काफी पहले किया जा चुका था। इससे निष्कर्ष निकलता है कि जिस सांस्कृतिक प्रक्रिया ने इस भौगोलिक एकता का साक्षात्कार कराया, वह भी पूरे देश को आप्लावित कर चुकी थी। इस सत्य का दर्शन हमें अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में होता है। अथर्ववेद को पाश्चात्य विद्वत्ता ने आठवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व में रखा है, जबकि भारतीय परंपरा उसे राजा परीक्षित (३१०२ ई.पू.) के निकट रखती है, किंतु इस लेख में हम तिथिक्रम के झगड़ों को नहीं उठाना चाहते और पाश्चात्य विद्वत्ता द्वारा गढ़े गए तिथिक्रम के पूर्वापर्य को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करके ही अपने प्रश्नों का उत्तर खोजना चाहते हैं।

६३ मंत्र लंबा पृथिवी सूक्त अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसी सूक्त के १२वें मंत्र में माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या; अंश को भारतमाता के

प्रति हमारी पुत्रवत् भक्ति भावना का प्रथम उद्घोष कहा जाता है। इस छोटे से अंश में 'भूमि' और 'पृथ्वी' दोनों शब्दों का प्रयोग है। क्या वे एक ही हैं या अलग-अलग हैं? यदि यहाँ 'पृथिवी' शब्द 'भूमि' का पर्याय है तो क्या हम पूरे भूमंडल को अपनी माता और स्वयं को उसका पुत्र बता रहे हैं? क्या इस सूक्त में 'पृथिवी' नामक भूखंड की पहचान के भी कुछ संकेत विद्यमान हैं? अगला ही मंत्र पृथिवी की सांस्कृतिक पहचान को स्पष्ट कर देता है कि जिस भूमि पर यज्ञवेदियों का निर्माण कर विश्वकर्मा यज्ञों का विस्तार करता है, जहाँ आहुति देने के लिए यज्ञस्तंभ खड़े हैं। पुन: २२वें मंत्र में कहा गया है, 'जिस भूमि पर देवताओं के लिए यज्ञों में हवि दी जाती है, जहाँ मनुष्य यज्ञशेष को प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं आदि-आदि।' मंत्र ३७ में देव विरोधी असुरों पर, वृत्रासुर पर इंद्र की विजय का उल्लेख है। उससे अगले मंत्र में पुन: यज्ञ मंडपों के निर्माण, यूप की स्थापना और ऋग्वेद की ऋचाओं, सामवेद की अर्चना और यजु: मंत्रों से इंद्र को सोमरस पिलाने का वर्णन है। मंत्र ३९ में प्राचीन सप्तर्षियों द्वारा द्वाद्वश वर्षीय सत्र एवं सोमयाग के निमित्त तपस्या करने एवं वेद मंत्रों का गान करने की बात कही गई है। संक्षेप में कहना हो तो पृथिवी सूक्त की संस्कृति की पहचान यज्ञ संस्कृति में है। वस्तुत: पृथिवी सूक्त का पहला मंत्र ही यज्ञ संस्कृति का सारतत्त्व प्रस्तुत कर देता है। वह कहता है कि सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ इस पृथिवी को धारण करते हैं। ४५वें मंत्र में पृथिवी पर रहनेवाले जनों की विविधता को भी स्वीकार किया गया है। यह मंत्र कहता है कि यह पृथिवी अनेक बोलियाँ बोलनेवाले (जन विभ्रती बहुधा विवाचसं) और नाना धर्मों (आचार-विचार) का पालन करनेवाले (नाना धर्माणं) जनों को धारण करती है और सबको समान रूप से माता की तरह अपना दूध पिलाकर पालती है। सूक्त में हिमवंत, समुद्र और सिंधु आदि के उल्लेख से स्पष्ट है कि सूक्तकार की पृथिवी महागोविंद सुत्त और कौटिल्य की पृथिवी से भिन्न नहीं है।

पर इस सूक्त में यह स्पष्ट नहीं होता कि इस यज्ञ संस्कृति का उद्गम कहाँ हुआ? किस क्रम से, किस तंत्र के द्वारा वह पूरे भारत में फैली? इसकी जानकारी हमें मनुस्मृति देती है। मनुस्मृति का दूसरा अध्याय (श्लोक १८-२५) न केवल यज्ञ संस्कृति का उद्गम क्षेत्र बताता है, बल्कि वहाँ से निकली सांस्कृतिक जय-यात्रा के विभिन्न चरणों का भी वर्णन करता है। यज्ञ संस्कृति का उद्गम सरस्वती नदी के पवित्र तट पर हुआ है, इसको रेखांकित करते हुए श्लोक १८ कहता है—

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ १८॥

सरस्वती और दृषद्वती नामक देवनदियों का मध्यवर्ती भूभाग स्वयं देवों द्वारा निर्मित ब्रह्मावर्त नामक देश कहलाता है। उसका वैशिष्टय बताते हुए अगला श्लोक कहता है—

यस्मिन्दे शे य: आचार: पारम्पर्यक्रमागत:।
वर्णानां सांतरालानां स सदाचार उच्यते॥ १९॥

उस देश में जो आचार परंपरा से चला आ रहा है, उसे ही सब वर्णों के लिए सदाचार कहा गया है अर्थात् यह ब्रह्मावर्त्त क्षेत्र एक महान् संस्कृति का उद्गम प्रदेश है। कहाँ है यह ब्रह्मावर्त्त? कहाँ है सरस्वती और दृषद्वती नामक देवनदियाँ? आज तो भारत के मानचित्र पर इनमें से कोई भी नाम नहीं है। महाभारत के वन पर्व से हमें ज्ञात होता है कि सरस्वती और दृषद्वती के मध्य का क्षेत्र ही कुरुक्षेत्र कहलाया था। इसलिए गीता में उसे धर्मक्षेत्र भी कहा गया। इसका अर्थ हुआ कि ब्रह्मावर्त्त और कुरुक्षेत्र एक ही प्रवेश के दो नाम हैं, किंतु आधुनिक विद्वत्ता कहेगी कि मनुस्मृति और महाभारत तो बहुत बाद की रचनाएँ हैं, उन्हें प्रमाण कैसे मान लें? सौभाग्य से यहाँ ऋग्वेद हमारी मदद को आते हैं। ऋग्वेद (३.२३.४) मंत्र में कहा गया है—

दृष्द्वत्या मानुष आपयायां सरस्वत्यां देवग्ने दिदीहि।

अर्थात् हे अग्नि! हम तुम्हें दृषद्वती और सरस्वती के तट पर स्थित मानुष तीर्थ में स्थापित करते हैं। तुम पूरी पृथिवी को आलोकित करो।

आधुनिक विद्वत्ता ने ऋग्वेद के सूक्त विकास की जो कहानी गढ़ी है, उसके अनुसार यह मंत्र जिस मंडल में विद्यमान है, वह मंडल ऋग्वेद के सबसे प्राचीन भाग का अंश है।

मनुस्मृति के उपरोक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि ब्रह्मावर्त्त क्षेत्र में एक ऐसी संस्कृति का जन्म हुआ, जिसका मूल सदाचार में था। इस संस्कृति का प्रवाह ब्रह्मावर्त के चारों ओर फैला। अगला श्लोक कहता है—

मत्स्याश्च पाञ्चाला: शूरसेनका।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तर॥ २०॥

ब्रह्मावर्त्त के चारों ओर के प्रदेश को जिसमें ब्रह्मावर्त्त या कुरुक्षेत्र से आगे के बाद मत्स्य, पांचाल और शूरसेन जनपद आते हैं, ब्रह्मर्षि देश कहा गया है। इस प्रदेश के अंतर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, बृजप्रदेश आते हैं। इस प्रदेश में पहुँचकर संस्कृति का चरित्र और भी निखरा, क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन:।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा:॥ २१॥

अर्थात् इस प्रदेश में जन्मे अग्रजमाओं (ब्राह्मणों) से पृथिवी के सभी मानव अपने-अपने लिए चरित्र की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

यह सांस्कृतिक प्रवाह या जय-यात्रा आगे बढ़कर मध्य देश में फैल जाती है। मनुस्मृति के अनुसार हिमालय से विंध्य पर्वत और पूर्व में प्रयाग से पश्चिम में विनशन (राजस्थान में वह जगह, जहाँ आगे चलकर सरस्वती नदी अदर्शनीय हो गई) के बीच का क्षेत्र ही मध्य देश है। यह यज्ञिय देश है। यहाँ तक यज्ञिय संस्कृति का विस्तार हो चुका है। (श्लोक २२) सांस्कृतिक जय-यात्रा के अगले चरण के रूप में मनुस्मृति आर्यावर्त का वर्णन करती है, जो हिमालय से रेवा नदी तक और पूर्व-पश्चिम में समुद्र से समुद्र तक फैला हुआ है। यह देश यज्ञिय देश है। यहाँ पवित्र काला मृग नि:शंक विचरण करता है। मनुस्मृति का मानना है कि आर्यावर्त से बाहर के निवासी मलेच्छ हैं। स्पष्ट ही यहाँ आर्य और म्लेच्छ शब्दों का प्रयोग नस्ल के आधार पर नहीं, सांस्कृतिक भिन्नता के आधार पर किया गया है। इसी अर्थ में ऋग्वेद 'कृण्वंतो विश्वमार्यम्' जैसी घोषणा करता है। यदि आर्य शब्द को नस्लवाचक मानें तो इसका

अर्थ होगा पूरे विश्व में अन्य सब नस्लों का उच्छेदन कर केवल आर्य नस्ल का प्रभुत्व स्थापित करना।

सरस्वती के तट से निकली सांस्कृतिक जय-यात्रा का संदर्भ शत्पथ ब्राह्मण में माथव विदेघ की कथा में भी उपलब्ध है। इस कथा के अनुसार सरस्वती के तट पर संपन्न यज्ञ की अग्नि पूर्व दिशा की ओर चल पड़ी। माथव विदेघ उसके पीछे-पीछे चला। वह अग्नि सदानीरा नदी (वर्तमान गंडकी) के तट पर आकर रुक गई। माथव विदेघ भी वहीं ठहर गया। सदानीरा यहाँ वैदिक संस्कृति की सीमा बन गई।

मनुस्मृति की सांस्कृतिक यात्रा आर्यावर्त पर रुक जाती है। जनश्रुति के अनुसार लंबे समय तक यज्ञिय आर्य संस्कृति विंध्याचल को लाँघ नहीं पाई। उसे पहली बार लाँघा अगस्त्य ऋषि ने। परंपरा कहती है कि अगस्त्य ऋषि के आदेश को मानकर विंध्यपर्वत झुका का झुका रह गया और संस्कृति का प्रवाह उसे पारकर पूरे भारत में फैल गया। इसी सांस्कृतिक विस्तार के माध्यम से भारत की प्राकृतिक सीमाओं और भौगोलिक एकता का साक्षात्कार हो सका। इस साक्षात्कार की गाथा महाभारत, रामायण एवं पुराणों में भारत की नदियों, पर्वतों, पुण्यनगरियों एवं जनपदों की सूचियों के रूप में सुरक्षित है। यदि महाभारत भारत का कीर्तिगान करते हुए प्राचीन राजर्षियों के नाम गिनाता है तो विष्णु पुराण यज्ञिय संस्कृति के अगले सोपान अर्थात् ब्रह्म विद्या या मोक्षमार्ग की जन्मदात्री भारत भूमि की गोद में जनम पाने के लिए स्वर्ग के देवताओं की व्याकुलता का वर्णन करता है। संपूर्ण वाङ्मय में कहीं भी नस्ली आक्रमण या नस्लों के विनाश की चर्चा नहीं है, किंतु पश्चिमी विद्वानों ने पंद्रहवीं शताब्दी में अपनी गोरी नस्ल की राक्षसी विजयों के दर्पण में अपने चेहरे को भारत का चेहरा बना दिया। भारतीय विद्वत्ता के सामने यह चुनौती है कि वह अपने प्राचीन वाङ्मय में यत्र-तत्र बिखरे संदर्भों को खोज-बटोरकर उस सांस्कृतिक जय-यात्रा की कहानी को सूत्रबद्ध रूप में प्रस्तुत करे, जिसने सहस्राब्दियों पहले सरस्वती के पावन तट से निकलकर आसेतु हिमालय विशाल भारत को उसकी बहुविध विविधता के बीच एक सांस्कृतिक व्यक्तित्व प्रदान किया।

(पत्र-पत्रिका, १८ अगस्त, २००२)

कविता

आधा-अधूरा

● सुनील कुमार शर्मा

अरमानों का क्या बोलो सब किसके पूरे होते हैं,
सपने चाहे कितने देखो कुछ ही पूरे होते हैं।
फिर भी उम्मीदों पर ही तो सब आगे बढ़ते हैं,
कुछ पाने की इच्छा में ही तो चलते रहते हैं।

मंजिल पर जाकर कब शांत हुआ करते हैं,
वहाँ पहुँच फिर आगे की ही तो सोचा करते हैं।
फिर अपूर्ण अभिलाषाओं पर व्यर्थ व्यथित क्यों होते हैं,
जीवन तो हम सबके आधे-अधूरे ही होते हैं।

जब जैसा चाहा, वैसा कब किसको मिल पाया,
फिर भी ना चाहे मानव मन कब रह पाया।
अधूरापन ही तो मानव जीवन की सुंदरता होती है,
ना सोचो आधापन, मानव की कोई विवशता होती है।

सबकुछ पाकर मानव क्या मानव रह पाएगा,
ऐसे में जीवन लक्ष्य क्या शेष रह जाएगा।
कुछ कर जाने की ऊर्जा का स्रोत कहाँ से पाएगा,
सच में बोलो, ऐसे में लक्ष्यहीन ही तो हो जाएगा।

ना पाने का दु:ख क्षणभर को अधीर कर देगा,
किंतु अभावों का अभाव तो और विवश कर देगा।
निज आकांक्षाओं से उत्प्रेरित स्वप्न देखा करते हैं,
कब किसको हालात इसमें रोका करते हैं।

बोलो विवश मन, निर्बल होने में देर कहाँ लगती है,
हो जाता निर्भर जहाँ भी संबल पाता है।
सबके साथ ही तो अकसर ऐसा होता है,
दु:ख से, अधीरता का ही ज्यादा बोझ होता है।

ज्यादा विचलित होकर क्या पा जाओगे,
व्यथा, वेदना, चिंता चक्र में फँस जाओगे।
ऐसा चलते रहने से तो निर्बल ही हो जाओगे,
ना फिर कुछ कर इस दुश्चक्र से बाहर आ पाओगे।

कालचक्र जीवन का कैसे भी जो व्यवस्थित कर पाएगा,
अलक्ष्य से लक्ष्यों को भी वही तो साध पाएगा।
संघर्ष, परिश्रम, मनोरथ से अकसर सब सध जाता है,
किंतु कभी-कभार तो, कुछ बेमन का भी हो जाता है।

जब जैसा मिल जाए जीवन निधि में संचित करते जाओ,
आधा-अधूरा जोड़ कुछ दुर्लभ सा निर्मित कर जाओ।
अपने अधूरेपन को अपनाकर आगे बढ़ जाओ,
इस आधेपन के संबल से ही, जाओ विजयी हो जाओ।

फ्लैट नं.१ ब्लॉक-२१
द.-पूर्व रेलवे ऑफिसर्स कॉलोनी
११ गार्डनरीच रोड, कोलकाता-७०००४३
दूरभाष : ९००२०८०००४

मूँछों की लड़ाई

● सुभाष चंदर

थानेदार मलखान सिंह की हालत उस गधे जैसी थी, जो जेठ के महीने में घास की कमी देखकर इसलिए परेशान होता है कि हे भगवान्, अब मैं खाऊँगा क्या? उसके बाद सावन में घास भरे जंगल को देखकर फिर रोता है—हे भगवान्! इतनी सारी घास मैं खाऊँगा कैसे? इसलिए वह ज्यादा घास को जल्दी-जल्दी खाकर खत्म करने के फेर में रहता है।

थानेदारजी पहले जिस जगह पोस्टेड थे, वहाँ खाने को सिर्फ तनख्वाह थी। उनकी परेशानी जायज थी, पुलिस की नौकरी में भी तनख्वाह से घर चला तो थू ससुरी ऐसी नौकरी पर। चलो, वहाँ से किसी तरह जान छूटी। जलालपुर का मलाईदार थाना मिल गया। अब यहाँ माल हर तरफ बिखरा पड़ा था, सो दरोगाजी जल्दी-जल्दी माल बटोरने की फिक्र में थे कि कहीं कुछ बचा न रह जाए।

अपनी पोस्टिंग के हफ्ते भर में उन्होंने इलाके भर में कहर ढा दिया। रिक्शा-ताँगेवालों से लेकर जुआरी-सटोरियों तक सबको लाइन पर ला दिया। सबसे हफ्ते बँधवा लिये, चोर-डाकुओं को अलबत्ता पचास परसेंट कमीशन एडवांस पर बाँध दिया। इतना बढ़िया इंतजाम हुआ कि थानेदारजी का कमीशन पहुँचने के बाद ही वारदात फिक्स हो पाती थी। जो इन नियमों का उल्लंघन करता, उसके लिए दरोगाजी की लाठी और हवालात के दोनों मुँह खुले मिलते थे। सारे स्टाफ को सख्त ऑर्डर थे कि शाम को आकर हिसाब दो। हालत यह हो गई कि गर कोई सिपाही से रास्ता भी पूछ लेता तो उसे जेब ढीली करनी पड़ती। थाने में आने के बाद तो हर भेड़ की मुड़ाई तय थी ही। किस्सा कोताह यह कि थानेदार जलालपुर का वह वर्दीधारी गुंडा था, जिसकी दहशत चारों ओर थी।

एक दिन पंडित अलखराम के अखाड़े का चेला रामधन आधी रात को शहर से गाँव लौट रहा था। सामने से थानेदार की जीप आ रही थी। थानेदार ने रामधन को देखा, उसकी जेब देखी, फिर रात का समय देखा। तीनों का संतुलन बैठाया। कमाई की संभावना तलाशी, फिर धर लिया रामधन को।

''क्यों बे···चोर···कहाँ से चारी करके आ रहा है। स्साले···जल्दी बता वरना लाठी से खबर लूँगा।'' थानेदार ने कड़कती आवाज में लाठी चमकाते हुए कहा।

केंद्र एवं उ.प्र. सरकार में विभिन्न पदों पर कार्य करने का अनुभव। पाँच वर्ष तक उ.प्र. सरकार की मासिक साहित्यिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' एवं भारत सरकार के स्वास्थ्य तथा उद्योग मंत्रालय में भी पत्रिकाओं का संपादन। विभिन्न राष्ट्रीय समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, आकाशवाणी और डिजिटल मीडिया में हिंदी व अंग्रेजी भाषा में लेखन तथा संपादन का वृहद् अनुभव।

''हुजूर, मैं चोर नहीं हूँ। मैं तो बिसनापुर में खेती करता हूँ। शहर से बहन से राखी बँधवाकर आ रहा हूँ।'' रामधन मिमियाया।

''स्साले···हमको बहकाता है।'' थानेदार ने कड़कते स्वर में दीवानजी को इशारा किया, ''ऐ दीवानजी, तलाशी लो स्साले की! सारा चोरी का माल जब्त करो।''

दीवानजी आदेश पालन के लिए जैसे ही आगे बढ़े, रामधन समझ गया कि जेब की कमाई गई। यह सोचते ही उसमें पी.टी. ऊषा की आत्मा आ गई और उसने दौड़ लगा दी, पर भला पुलिस के हाथों से कोई बच पाता है। थोड़ी देर में ही रामधन अपनी 'जेब' सहित पकड़ा गया। पहले तो थानेदारजी ने उसकी जेब में रखे 'चोरी' के माल को जब्त किया। उसके बाद उस पर अपनी लाठी कला के अनुपम प्रयोग किए। उसके पूरे बदन पर भूरे-लाल रंग की पेंटिंग बन गई। थानेदार ने गौर से अपनी इस कलाकृति को देखा, संतुष्ट होकर ड्राइवर को जीप आगे बढ़ाने का निर्देश दिया। जीप आगे बढ़ गई, पर रामधन वहीं पड़ा कराहने का काम संपन्न करता रहा।

अगले दिन यह खबर पंडित अलखराम के अखाड़े तक पहुँची। पंडितजी का पारा गरम हो गया। रामधन उनका प्रिय शिष्य था, उसके साथ ऐसी हरकत। पंडितजी ने जनेऊ पर हाथ रखकर कसम खाई कि इस थानेदार को सबक सिखाकर रहेंगे, पर कैसे? यह चिंतन का विषय था।

अब थोड़ा पंडित अलखराम का जुगराफिया भी बाँच दिया जाए। पंडित अलखराम बिसनापुर के मुअज्जिज आदमी हैं। अपनी जवानी में डकैती-लूट आदि के धंधे में उन्होंने काफी नाम कमाया था। मजे की बात यह थी कि हर मुहिम के वक्त उनकी जेब में लोडेड तमंचा और

हाथों तेल पिली लाठी ही रहती थी। तमंचे का उपयोग हवाई फायर के लिए ही होता था, बाकी के करम लाठी ही संपन्न करती थी। इलाके में मशहूर था कि अलखराम की लाठी के दो हाथ खाकर जो खड़ा रह जाए, वह मानुष कतई नहीं हो सकता। पर वह अतीत था, अब पंडित अलखराम ६५ बरस की पक्की उमरिया को प्राप्त कर चुके थे। बालों में चाँदनी बिखर चुकी थी, चेहरे पर भी मकड़ियों ने जाला बुन लिया था, पर अब भी मूँछें तनी रहती थीं। सीना चौड़ा और कमर सीधी रहती थी। आवाज भी वही कड़क थी और सबसे बढ़कर स्वभाव में निडरता थी।

ऐसे पंडित अलखराम के चेले की दुर्गति, वह भी पुलिसिए के हाथों पिटाई और फिर लुटाई। न···यह नहीं हो सकता। जवानी होती तो रातोरात संगी-साथियों समेत थाने पर धावा बोल देते। उठाते तमंचा, लगाते थानेदार की कनपटिया पर और दबाए देते लिबलिबी। सुबह थाने से 'राम-नाम सत्त है' की आवाज ही आती। अखबारों में नाम होता सो अलग। पर का करे, ई ससुरी उमरिया ने धोखा देय दिया। संगी-साथी भी मर-खप गए, कुछ खाँसी-खुर्रा, जोड़ दर्द वगैरह के शिकार हो गए। अब ये अखाड़े के चेले हैं, इनमें इतनी कुव्वत कहाँ, जो थानेदार पे हमला बोल दें, फिर क्या किया जावे। सोचते-सोचते पंडित अलखराम की रात काली हो गई। सुबह चार बचे जब जुम्मन के मुरगे ने कुकडू-कूँ की, तब जाकर पंडितजी के दिमाग में एक आइडिया आया। पंडितजी की आँखें अँधेरे में भी उल्लू-सी चमक उठीं, फिर वे रजाई ओढ़कर सो गए।

सुबह पंडितजी ने उठते ही पहला काम ननुआ नाई को बुलवाने का किया। ननुआ की नाई की दुकान थाने के सामने ही थी। सो वह एक तरह से बिना तनख्वाह के थाने के हज्जाम थे। थानेदार से लेकर सिपाही तक उन्हीं से हजामत बनवाते थे। ऐसे ननुआ को बुला भेजने के पीछे पंडितजी का जरूर कोई मकसद था। ननुआ आए, पायलागी की, पंडित ने ननुआ के कान में कुछ कहा, ननुआ की आँखें फैल गईं। फिर वे दोनों देर तक जाने क्या फुसफुसाते रहे। पंडित उसे समझाते, वह ना-नुकुर करता, फिर पंडितजी ने उसे पहली बार में अपनी लाठी दिखाई, दूसरी बार में सौ का नोट। ननुआ ने सौ के नोट का चुनाव किया। 'पायलागू पंडितजी' कहकर चला गया। पंडितजी उसके बाद हवा में अपनी लाठी घुमाने लगे।

अगले दिन ननुआ नाई बिना बुलाए ही थाने पहुँचे। थानेदारजी की पायलागी की। निवेदन किया, हुजूर···आज कहीं बाहर जाना है, सो सोचा, पहले आपकी हजामत बना दूँ। वैसे सुबह-सुबह आपके दर्शन कर लूँ तो मेरा दिन अच्छा गुजरता है। थानेदार प्रसन्न भए। ननुआ ने हजामत बनानी शुरू कर दी, साथ-ही-साथ बातें भी।

''हुजूर, पूरे जिले भर में आपकी लाठीबाजी की चर्चा होय रही है। लोग कहते हैं कि मलखान सिंह थानेदार जैसा लाठी चलैया पूरे इलाके में ना है।''

थानेदार के मन ने कई सारे लड्डू एक साथ गटक लिये। मुसकाए के बोले, ''बस शंकरजी की कृपा है, ननुआ! वैसे हम आज तक किसी से हारे ना हैं। दो-चार बार तो मुकाबला करनेवालों को अखाड़े से ही अस्पताल ले जाना पड़ा है। तब से हमारा नाम हड्डी तोड़ मलखान पड़ गया है।''

''हुजूर···हमारी बड़ी तमन्ना है कि एक बार आपकी लाठीबाजी का हुनर देखें। हुजूर···ये पिराथना है हमारी। देखियो, ना मत कहना थानेदार जी···।'' ननुआ ने अपने स्वर में रिरियाहट के साथ मक्खन भी मिला दिया।

''हुम्म, कहते तो तुम ठीक हो ननुआ, पर हमसे लाठी का मुकाबला करेगा कौन? हमारे नाम से ही लोगों के पाजामे चू जाते हैं। हमें तो लगता ना है कि पूरे इलाके में कोई हमारी लाठी के दो वार भी झेल पावेगा।''

''हुजूर, गुस्ताखी माफ हो तो अरज करूँ। एक आदमी है, जो आपसे थोड़ी देर टक्कर ले सके हैं, पर बस थोड़ी देर ही। वैसे सौ परसेंट जीतोगे तो आप ही, उसके साथ मुकाबला कर लो।''

''ऐं···।'' थानेदार चौंके, ''···ऐसा कौन पैदा हो गया इलाके में, जो हमसे टक्कर ले सकै है।'' फिर गुर्राए, ''तुम्हारा दिमाग तो ठीक है, ननुआ।''

''हुजूर, माई-बाप, नाराज न हो। है तो एक···हुजूर, भूल गए पंडित अलखराम को, कहवै हैं कि अपने बखत में उसकी बराबर का लठैत पाँच जिलों में ना था।''

''हुम्म···पंडित अलखराम, वह पुराना डकैत···सुना तो बहुत है उसकी लठैती के बारे में, पर अब तो वह बूढ़ा हो गया होगा।''

''हाँ, हुजूर ६५ बरस का होय गया है बुढऊ, पर लाठी अब भी चला लेवै है। मैं तो कहूँ हुजूर, आप उससे मुकाबला कर लो, यकीन मान लो, जीतने पर पूरे इलाके में आपकी लठैती की धाक जम जाएगी।''

थानेदार ने कुछ देर सोचने के बाद कहा, ''हुम्म···कहते तो ठीक हो ननुआ। अलखराम को हरा दिया तो पूरे इलाके में धाक तो सच्ची में जम जाएगी, पर कहीं उलटा न हो जाए। कहते हैं बुड्ढा···आज भी जबरदस्त लठैत है।'' थानेदार ने अपनी चिंता शेयर की।

पर ननुआ ने थानेदार की चिंता यह कहकर मिटा दी कि ''हुजूर, कहाँ आप जैसा घड़यिल जवान और कहाँ वह बुढ़ऊ। आपकी ताकत-फुरती के आगे वो कहाँ टिकेगा। इस उमर में उसके हाड़-गोड़ों में वह फुरती कहाँ होगी। थोड़ी देर में ही कुत्ते-सा हाँफने लगेगा। मेरी मानिए हुजूर···तो अगले हफ्ते ही रामलीला मैदान में लाठीबाजी का मुकाबला रखवा लो। पूरे इलाके में वाह-वाह हो जाएगी।''

थानेदार चौंका, ''अरे, रामलीला मैदान में क्यों, यहीं थाने के पिछवाड़े में जो खाली जगह पड़ी है, वहीं कर लेते हैं मुकाबला।''

''क्या कहते हैं हुजूर, सहर के इतने बड़े हाकिम का मुकाबला हो और जनता न देखे तो फैदा क्या है? हुजूर···वैसे भी जितनी भीड़ होगी, उतना ही हुजूर का नाम फैलेगा। सोचिए हुजूर, जब जीतने के बाद हजारों लोग आपकी जय-जयकार करेंगे, तब कितना मजा आएगा, सोचिए।''

थानेदार मलखान सिंह ने सोच लिया। कल्पना में देख भी लिया। पूरे इलाके में थानेदार मलखान सिंह की जय के नारे लग रहे हैं। दूर-दूर तक उनकी लाठीबाजी की चर्चा हो रही है। एस.पी. साहब खुद उन्हें बधाई दे रहे हैं। इतनी सुंदर कल्पना से दरोगाजी का चालीस इंची सीना और फूल उठा। वर्दी फटने को तैयार हो गई। उन्होंने 'हाँ' कर दी।

यह 'हाँ' उसी रात ननुआ की मार्फत पंडितजी तक ट्रांसफर हो गई।

अगले दिन थानेदार ने पंडित अलखराम को बुलवा भेजा। आखिर उनकी सहमति भी तो लेनी थी। पंडितजी थाने में हाजिर हो गए। थानेदार ने पंडितजी को नजरों से तौला—हुम्म···तो ये है पंडित अलखराम···सर पर सन जैसे सफेद बाल, कटी-फटी सी आवाज, चेहरे पे थकान। इत्ती दूर चलने में ही हाँफे हुए से, ऊपर से खों-खों की आवाज···जो स्पष्ट बुढ़ापे की घोषणा कर रही थी। बस थानेदार ने सोच लिया। इस बुढ़ऊ को तो दो लाठी में चित्त कर देंगे, बस डर है कि बुढ़ऊ कहीं टें ना बोल जाए।

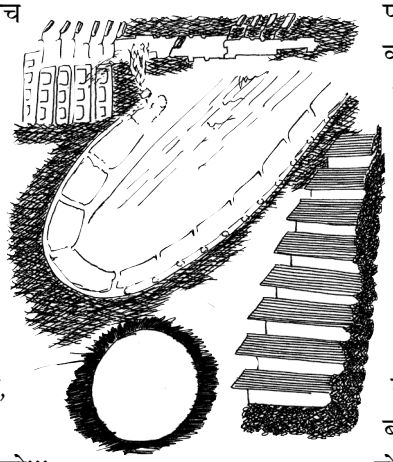

उन्होंने पंडितजी को लठैती का मुकाबला करने की चुनौती दी। पंडितजी ने थोड़ी ना-नुकुर की, ''हुजूर, मैं ठहरा पक्की उमर का आदमी, आप नौजवान छोकरे। हमारा-आपका क्या मेल।'' पर थानेदार नहीं माने। हारकर पंडितजी बोले, ''ठीक है, हुजूर, मरना तो है ही, आपकी लाठी से मरे तो सीधे स्वर्ग जाएँगे।'' फिर कुछ सोचकर पूछा, ''हुजूर, शर्त क्या रहेगी।''

थानेदार मूँछों पर ताव देते हुए बोले, ''रख लो··· सौ-सौ रुपए की।''

पंडित अलखराम नम्रता से बोले, ''हुजूर, मुझ गरीब पर सौ रुपए कहाँ से आए। मैं तो धेले की भी शर्त नहीं लगा सकता।''

थानेदार बोले, ''तो फिर···शर्त तो होनी ही चाहिए। उसके बिना जीत-हार का क्या मजा?''

पंडित सोचकर बोले, ''तो हुजूर, शर्त उस चीज की होनी चाहिए, जो हम दोनों के पास हो और जिसे देते हुए हमारे जी पर बहुत जोर पड़े।''

थानेदार ने खूब सोचा, फिर बोले, ''ऐसी क्या चीज है?''

पंडित अलखराम बोले, ''मूँछे! मूँछ हमारी भी शान है और आपकी भी। कहिए क्या कहते हैं?''

थानेदार ने एक बार सोचा और 'हाँ' कर दी और फिर मन-ही-मन पंडित अलखराम के मूँछ मुड़े चेहरे की कल्पना करके हँस पड़े।

रात को फिर ननकू और पंडितजी की मीटिंग बैठी, फिर फुसफुसाहटों के दौर चले, जो अंत तक आते-आते ठहाकों में बदल गए।

रविवार को मुकाबला होना था। उससे पहले ही पूरे इलाके को खबर हो गई। लोगों को बातें करने का मसाला मिल गया। सट्टेबाजी धतु हो गई। थानेदार की मूँछों पर ज्यादा का भाव था। पंडित अलखराम पर भी सट्टा लगानेवाले कम न थे। पूरे इलाके में गहमागहमी थी। इसी बीच पंडितजी के एक चेले की कृपा से एक पोस्टर भी छपकर आ गया, जिस पर एक तरफ थानेदार की तनी मूँछोंवाला फोटो था तो दूसरी तरफ पंडित अलखराम और उनकी लाठी का फोटो था। पोस्टर पर छपा था—

''देखिए-देखिए, इस सदी का सबसे बड़ा लाठी का मुकाबला—थानेदार मलखान सिंह और पुराने लठैत पंडित अलखराम के बीच। जो जीतेगा, उसकी मूँछें ऊँची, जो हारेगा, उसकी मूँछ साफ। देखिए, देखिए···मूँछों की लड़ाई···ठीक १० बजे, दिन रविवार, जगह रामलीला मैदान।''

अखबारवालों ने भी यह खबर नमक-मिर्च लगाकर छाप दी। जिले के एस.एस.पी., एस.पी. आदि पुलिस के हाकिमों ने भी खबर पढ़ी। उन्हें भी खबर मजेदार लगी, सो उन्होंने थानेदार को फोन करके मुकाबला देखने की मंशा जाहिर कर दी। डी.एस.पी. पांडे ने तो एडवांस में बधाई संदेश भी भेज दिया।

थानेदार परेशान हो गए। जरा से लाठीबाजी के शगल ने जान मुसीबत में डाल दी। उन्हें ननुआ पर बहुत गुस्सा आया, उसी ने उन्हें फँसाया था। उन्होंने ननुआ को तलब किया, उस पर लाठी फटकारने ही वाले थे कि ननुआ ने पैर पकड़ लिये, अभयदान माँगा। थानेदार पिनपिनाए, अफसरों के आने की बात बताई। ननुआ बोले, ''बस हुजूर, इत्ती-सी बात···। ये तो आपके भले की ही बात है। सोचिए, मुकाबले में तो आप जीतेंगे ही, साहब लोग अगर खुश हो गए, आपकी तरक्की कर दी तो···फिर तो आप और बड़े साहब बन जाएँगे। वो का कहते हैं डी. सी.पी.।'' बात थानेदार की समझ में आ गई। उस रात उन्होंने सपने में देखा कि वो डी.सी.पी. बनकर लोगों पर रोब गाँठ रहे हैं। अलबत्ता उनकी लाठी सपने में भी उनके साथ ही रही।

मुकाबले का दिन आ गया। सुबह आठ बजे से रामलीला मैदान में भीड़ जमा होनी शुरू हो गई। कस्बा तो कस्बा, आसपास के शहरों के लोग भी उमड़ पड़े। गाँवों से ट्रैक्टरों, बैलगाड़ियों में भरकर लोग आने लगे। दस बजे तक दसियों हजार लोगों की भीड़ जमा हो गई। पुलिस के बड़े हाकिम लोग भी पहुँच गए। आखिर मूँछों की लड़ाई थी, उसे देखना तो बनता ही था न।

ठीक दस बजे मुकाबला शुरू होना था। थानेदारजी और पंडित अलखराम अखाड़े में पहुँच गए। थानेदारजी ने पहले अपने कपड़े उतारे, बनियान के साथ पाजामा कसा। अपने कसरती बदन का मुजाहिरा कराया। उसके बाद गिनकर पचास दंड-बैठक पेलीं, फिर मूँछों पर हाथ फेरते हुए पंडित अलखराम को देखा। पंडितजी बड़ी शांति से खड़े थे। उन्होंने तैयारी के नाम पर सिर्फ एक बीड़ी सुलगाई, थोड़ी देर खाँसे और फिर मौका देखकर ननुआ की तरफ बाईं आँख दबा दी।

रैफरी बने डी.एस.पी. साहब ने दोनों प्रतिद्वंद्वियों के हाथ मिलवाए। लाउड स्पीकर पर लाठी के मुकाबले के नियम समझाए। इन सब कामों से फारिग होकर सीटी बजा दी, मतलब मुकाबला शुरू हो गया। साथ ही भीड़ की चिमगोइयाँ भी शुरू हो गईं—दैया रे···आज जाने किसकी मूँछ मुड़ेंगी··· ?

उधर दोनों लठैतों ने लाठियाँ चमकाईं। थानेदारजी ने मूँछों पर हाथ फेरा और हँसकर बोले, ''पंडित करो वार, हो सकता है, फिर आप लाठी चलाने लायक ही न रहें।'' पंडित अलखराम मुसकाए, फिर अपने टूटे दाँतों के बीच से हवा निकालकर बोले, ''हुजूर, आप हाकिम हैं तो पहला बार आपका।'' थानेदार ने बात मान ली, उठाई लाठी···घुमाई और कर दी···दे दनादन···। पर ये क्या, पंडितजी तो सारे दाँव बचा गए। थानेदार छाती पर मारें तो वहाँ पंडित की लाठी मौजूद, पैरों में मारे तो वहाँ मौजूद···खट···खट···टन···टन···थानेदार पिनक गए, चिल्लाकर बोले, ''पंडित, बहुत हो गया···अब नहीं छोड़ूँगा।'' पंडितजी मुसकराए, बोले, ''थानेदार, छोड़ना तो दूर, मुझे छूकर ही दिखा दो।'' आग में घी पड़ गया। थानेदार ने अपनी पूरी जान लगाकर लाठी चलाई, पर पंडित उसे भी फुरती से बचा गए। भीड़ पंडित की फुरती देखकर दंग थी। पहला राउंड खत्म हो गया, पर थानेदार की लाठी पंडित को छू भी नहीं पाई। मजे की बात है कि इस राउंड में पंडितजी ने सिर्फ बचाव किए थे, वार एक भी नहीं किया था।

थानेदार की हालत खस्ता थी। दस मिनट में ही वह पसीने-पसीने हो गए थे। अपनी पूरी कला के प्रदर्शन के बावजूद वह पंडित को छू भी नहीं पाए थे। भीड़ थानेदार पर हँस रही थी। थानेदार का गुस्सा बढ़ रहा था, जैसे ही दूसरा राउंड शुरू हुआ, उन्होंने शुरू से ही तेज हमला करने की ठान ली, पर पंडितजी की फुरती के आगे वह बेबस थे। एक बार तो उनके हाथ से लाठी ही छूटकर गिर पड़ी। पंडितजी हँसकर बोले, ''थानेदार, लाठी उठा लो। सोच लो, आखिरी बार लाठी पकड़ रहे हो।'' थानेदार की किरकिरी हो रही थी। इतनी भीड़ न होती तो वह इस बेइज्जती की पंडित को ऐसी सजा देते कि उनकी पुश्तें याद रखतीं। आई.पी.सी. की सारी दफाएँ उन पर लगाकर उन्हें जेल में ठुसवा देते, पर क्या करें, मजबूर थे।

थानेदार को सोचता देखकर पंडितजी बोले, ''थानेदार, लो अब मैं वार करूँगा, तुम सँभालो। अभी हल्के वार, फिर भारी वार। लो पहला वार तुम्हारी नाक पर।'' कहते ही पंडितजी ने लाठी चलाई। दरोगा ने बहुतेरा बचाव की कोशिश की, पर नाक टूट गई। खून का फव्वारा बहने लगा। दूसरे वार में लाठी कमर पर पड़ी। तीसरे वार में दाएँ हाथ की हड्डी शहीद हुई, चौथे वार में थानेदार का पिछवाड़ा टूट गया। कूल्हे की हड्डी ने कड़कड़ का संगीत बजा दिया। थानेदारजी धड़ाम से अखाड़े में गिर पड़े, ''हाय मर गया, अरे कोई बचा लो इस बुढ़ऊ से। ये तो मार ही डालेगा।'' उसके बाद रोते-चीखते थानेदार की छाती पर पंडितजी ने अपनी लाठी रख ली। प्रेस फोटोग्राफर ने खट से फोटो खींच ली।

रैफरी ने पंडितजी के हाथ उठाकर उनके जीतने की घोषणा कर दी और थानेदार को अस्पताल पहुँचाने की, पर जैसे ही सिपाही एंबुलेंस में बैठाने लगे, पंडितजी बोले, ''हुजूर, शर्त तो पूरी हुई नहीं। थानेदार की हड्डियाँ ही तो टूटी हैं, मूँछें तो सलामत हैं।'' इतना कहकर पंडितजी ने ननुआ को इशारा किया। उसने दर्द से कराहते थानेदार की मूँछें साफ कर दीं। भीड़ ने 'पंडित अलखराम जिंदाबाद' का नारा लगाया। पंडितजी ने अपनी सफेद मूँछों पर हाथ फेर दिया।

आगे की कहानी सिर्फ इतनी है कि थानेदार मलखान सिंह ने पूरे दो बरस तक अस्पताल में टूटी हड्डियों का इलाज कराया, पर हड्डियाँ सीधी नहीं हुईं। वह आज भी लँगड़ाकर चलते हैं और हाँ, उनके चेहरे से घमंड, क्रूरता आदि के साथ मूँछें भी गायब हो गई हैं। लोग पीठ पीछे उन्हें मूँछकटा थानेदार कहकर चिढ़ाते हैं।

जैसा बुरा हश्र थानेदार की मूँछों का हुआ, वैसा हश्र भगवान किसी का न करे।

जी-१८६-ए, एच.आई.जी. फ्लैट
प्रताप विहार, गाजियाबाद-२०१००९
दूरभाष : ९३११६६००५७

कविता

चलता चल

● माता प्रसाद शुक्ल

चलता चल भई चलता चल
आगे कदम बढ़ाता चल,
सबको गले लगाता चल
वंदे मातरम् गाता चल।

पढ़ता चल तू पढ़ता चल
बढ़ता चल तू बढ़ता चल,
मीठी बोली-वाणी से
सबका मन हर्षाता चल।

कदम-कदम पर पौध लगा
जन-जन को हरियाता चल,
जोड़-जोड़कर तू तिनके
चिड़िया नीड़ बनाता चल।

गाता चल भई गाता चल,
वंदे मातरम् गाता चल।

शिंदे की छावनी
ग्वालियर-४७४००१
दूरभाष : ९९०७१७१५२१

वैश्विक नाट्य, नृत्य और लीला में राम

● रीतारानी पालीवाल

'वैश्विक नाट्य, नृत्य और लीला में राम' यानी प्रस्तुतिपरक कलाओं में रामकथा की परंपरा—रामायण की दृश्यात्मक प्रस्तुति। यह अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण और रोचक विषय है। इसमें तीन शब्द हैं नाटक, नृत्य और लीला। ये तीनों शब्द अलग-अलग दिखाई देते हुए भी अभिन्न हैं। नाट्य अथवा नाटक की प्रस्तुति अभिनय के माध्यम से होती है और अभिनय को पूर्णता नृत्य के द्वारा मिलती है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में अभिनय मुद्राओं 'करण', 'अंगहार' 'रेचक' की विस्तृत चर्चा है, जो आंगिक और सात्त्विक अभिनय का माध्यम बनती हैं। प्राचीन काल से ही नाटक के साथ नृत्य योजना की परंपरा रही है। नाट्यशास्त्र में 'अमृतमंथन' और 'त्रिपुरदाह' नाटकों की प्रस्तुति के साथ शिव के तांडव नृत्य का उल्लेख है। नाट्य और नृत्य के अलावा यहाँ तीसरा शब्द है लीला, जो अपने आप में अभिनय अथवा प्रस्तुति का पर्याय है। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास बार-बार याद दिलाते कि राम भगवान् हैं और नर के रूप में लीला कर रहे हैं। सुपरिचित शब्द है रामलीला, जिसके मायने हैं रामकथा की सजीव नाट्य-प्रस्तुति, जिसकी भारतीय समाज में सुदीर्घ परंपरा है।

नृत्य का समावेश नाट्य-प्रस्तुति में दो तरह से होता है—एक तो है नाटक की गद्यात्मक प्रस्तुति के साथ नृत्य की योजना और दूसरा है नाट्य की नृत्यमय प्रस्तुति यानी नृत्य-नाट्य। नृत्य-नाट्य अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक, संप्रेषणीय और आह्लादकारी होता है। नृत्य-नाट्य के रूप में भी रामकथा लंबे समय से प्रस्तुत होती चली आ रही है।

देखने की बात यह है कि रामायण जो एक पाठ है, दृश्य रूप में उपस्थित होकर उसमें क्या विशेष जुड़ जाता है, जो पाठ्य रूप में नहीं था। नाटक के स्वरूप के विषय में 'नाट्यशास्त्र' में कहा गया है कि न ऐसा कोई ज्ञान है न विद्या न कला न योग न कर्म, जिसे हम नाटक में नहीं देखते—

न तज्ञानं न तच्छिल्पम न सा विद्या न सा कला
न सा योगो न तत्कर्म नाट्य अस्मिन यन्नदृश्यते।

अत: नाट्य के संदर्भ में राम और रामकथा पर चर्चा करने का अर्थ है समग्र जीवन और समग्र संस्कृति के संदर्भ में इस पर चर्चा करना।

सुपरिचित लेखिका। 'रंगमंच : नया परिदृश्य', 'अनुवाद प्रक्रिया', 'अनुवाद की सामाजिक भूमिका', 'अनुवाद और भाषिक संस्कृति', 'जापानी रंग कला : नोह, काबुकी और बुनराकु', 'जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश की रंग दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन' एवं प्रेमचंद के उपन्यास 'कर्मभूमि' का अंग्रेजी में अनुवाद। प्रोफेसर एवं निदेशक, मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।

'रामायण' अथवा रामकथा भारतीय संस्कृति की ऐसी प्रतिनिधि गाथा है, जो हजारों सालों से भारतीय जनमानस में रची-बसी है और जहाँ-जहाँ भारतीय गए वहाँ-वहाँ उनके साथ पहुँची है, वहाँ की संस्कृति का अंग ही नहीं बनी उस संस्कृति के निर्माण में इसने प्रबल भूमिका अदा की है। वहाँ की भाषाओं में पुन: सृजित हुई है, वहाँ का प्रमुख नाट्य रूप बनकर इसने वहाँ की कलाओं को गढ़ा है और स्थानीय विशेषताओं को आत्मसात् कर अपनी अलग पहचान बनाई है।

रामायण अथवा रामकथा भारतीय संवेदना का, सामूहिक अवचेतन का, जातीय स्मृति का अभिन्न अंग है। नाटक चूँकि विविध ज्ञान और कलाओं का समावेश करनेवाली सामूहिक कला है, अत: नाटक का माध्यम पाकर रामकथा युगों-युगों से लोक-चित्त का रंजन करती आ रही है। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर रामायण-महाभारत को भारत का चिरंतन इतिहास मानते हैं। 'रामायण' नामक अपने निबंध में उनका कहना है कि ये दोनों कालबद्ध इतिहास नहीं, ये भारतीय चित्त का इतिहास हैं, जिसमें भारतीय जन अपनी छवि देखता रहा है—'यह घटनावली का इतिहास नहीं, भारतवर्ष की जो साधना है, संकल्प हैं, उन्हीं का इतिहास इन दो काव्य-सौंधों में चिरंतन सिंहासन पर विराजमान है।'

प्रश्न है कि यह चित्त का इतिहास क्या है? रवींद्रनाथ का कहना है कि रामायण में राम-रावण युद्ध है अवश्य, किंतु रामकथा का केंद्रीय भाव युद्ध न होकर प्रेम है, पारिवारिक प्रेम, भरत और राम का प्रेम, राम-लक्ष्मण का प्रेम, राम-सीता का प्रेम और हनुमान, निषाद, शबरी, विभीषण की भक्ति है; गृहस्थ आश्रम की, दांपत्य की महनीयता की स्थापना है, जहाँ स्वयं अपने से अधिक 'अन्य' की परवाह है। ऐसे प्रसंग

और स्थितियाँ हैं, जो भारतीय चित्त को लगातार आह्लादित करती रही है। लोकचित्त को रमाने में रामायण के पाठ्य रूप से भी ज्यादा भूमिका दृश्य रूप की रही है। और यह दृश्य रूप यानी नाट्य रूप बहुत पुराने जमाने से चला आ रहा है।

रामकथा की नाट्य-प्रस्तुतियों के अनेक रूप आज भारत में मौजूद हैं। उत्तरी भारत में हिंदी भाषी क्षेत्र में रामलीला की परंपरा है, जिसकी प्रस्तुति हर वर्ष आश्विन मास में विभिन्न शहरों-कस्बों में पंद्रह दिन से लेकर इकतीस दिन तक होती है। हर रोज राम की नर लीला का एक अंश प्रस्तुत किया जाता है। स्थानीय समाज की सामूहिक भागीदारी से प्रस्तुत इस लीला में कथावाचक लोग 'रामचरितमानस' का पाठ करते हैं और पात्रों का स्वरूप बने अभिनेता संवाद बोलते हुए प्रस्तुति करते हैं। शास्त्रीय नृत्य परंपरा में कथकली, कुडियाट्टम, यक्षगान, भरतनाट्यम, कथक आदि में रामायण कथाओं की प्रस्तुति लंबे समय से होती चली आ रही है। उड़ीसा और केरल के मालाबार इलाके में रामकथा मंचन छाया पुतली नाटक के माध्यम से करने का प्रचलन रहा है। इसके अलावा विभिन्न भारतीय भाषाओं और बोलियों की अपनी-अपनी रामायणों पर आधारित रामलीलाएँ अलग-अलग क्षेत्रों में प्रस्तुत की जाती हैं। तुलसीदास 'रामायण सतकोटि अपारा' की बात कहते हैं। फादर कामिल बुल्के ने देश-विदेश की सैकड़ों रामायणें खोजी हैं, ए.के. रामानुजन ३०० रामायणों की चर्चा करते हैं। रामायणों की तरह रामकथा की नाट्य-प्रस्तुतियों के अनेक-अनेक रूप भारतीय विविधता के बीच एकता का उदाहरण तो हैं ही, रामायण की रचना से पहले उसके नाट्य रूप की मौजूदगी की के भी परिचायक हैं।

विभिन्न शहरों, कस्बों और गाँवों में अपनी-अपनी सुविधाओं और साधनों के अनुरूप रामकथा को दृश्य बनाने की सामूहिक सांस्कृतिक गतिविधि जारी रही। उसी विरासत में अयोध्या, काशी, वृंदावन, अल्मोड़ा, सतना, मधुबनी आदि की रामलीलाएँ विशेष आकर्षण बन प्रसिद्धि पा सकीं। व्यावसायिकता से दूर इस नाट्य ने स्थानीय समाज की सांस्कृतिक एवं कलात्मक अभिरुचियों के निर्माण में, सामूहिकता को सुदृढ़ बनाने में, नई-पुरानी पीढ़ियों को जोड़ने में बड़ी भूमिका निबाही। बनारस में रामनगर की ३१ दिन तक चलनेवाली रामलीला इस जनभागीदारी की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है, जो लगभग पिछली दो शताब्दियों से अपने परंपरागत स्वरूप को कायम रखे हैं।

आज रामलीला का जो रूप मौजूद है, माना जाता है कि उसका आरंभ काशी में तुलसीदास ने कराया। यद्यपि रामकथा की दृश्य प्रस्तुति की परंपरा बहुत पुराने समय से चली आ रही थी, यह बात विद्वानों ने ठोस प्रमाणों के आधार पर सिद्ध की है। 'हरिवंश पुराण' (जो कि वेदव्यास द्वारा रचित है) में रामलीला नाटक की प्रस्तुति की बात कही गई है, 'रामायण', 'महाभारत' में कुशीलव का उल्लेख है। यह कुशीलव शब्द गायक और अभिनेता के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस आधार पर विद्वानों का मानना है कि रामायण की पाठ्य काव्य के रूप में रचना से पहले वह गायकों और अभिनेता मंडलियों के बीच मौजूद चली आ रही थी। महाकवि जयशंकर प्रसाद जितने बड़े लेखक उतने ही बड़े साहित्य और संस्कृति के शोधकर्ता भी। उन्होंने 'नाटकों का आरंभ' नामक अपने निबंध में लिखा है—'संभवत: 'रामायण' काल के नाटक-संघ बहुत प्राचीन काल से प्रचलित भारतीय वस्तु थे। 'महाभारत' में भी रंभाभिसार के अभिनय का विशद वर्णन मिलता है। तब इन पाठ्य काव्यों से नाटक प्राचीन थे ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। संभव है कि अन्य प्राचीन साहित्य की तरह ये सब नाटक नटों को कंठस्थ रहे होंगे।' (काव्य और कला तथा अन्य निबंध)

संस्कृत साहित्य विशेषज्ञ और दक्षिण एशिया अध्ययन केंद्र, एडिनबरा में प्रोफेसर जान ब्रोकिंग्टन का मानना है कि मौखिक परंपरा संपन्न इस विशाल भारतीय भू-भाग में कथा गायकों और नाट्य मंडलियों द्वारा रामकथा की दृश्य प्रस्तुति रामायण-महाभारत की रचना से पहले से चली आती रही होगी और बाद में भी कायम रही होगी। अन्यथा इतने बड़े देश में ये महाकाव्य लोक स्मृति में संचित न रह पाते। इन कथाओं की लोक-व्याप्ति और विभिन्न कलाओं के बीच इनके विस्तार की पुष्टि में वे एलोरा की गुफाओं और इंडोनेशिया में जावा के प्रांबनान मंदिर (नवीं-दसवीं ईसवी) में उकेरे गए मूर्ति-शिल्प में अंकित रामलीला का उदाहरण देते हैं।

बनारस की सुविख्यात रामनगर की रामलीला के अध्येता और विश्लेषक रिचर्ड शेखनर भी रामलीला प्रस्तुति की प्राचीन परंपरा देखते हैं। दूसरी ओर दक्षिण भारत के शास्त्रीय नाट्य-रूपों कुडियाट्टम और कथककलि में रामायण के प्रसंगों के मंचन की परंपरा रामकथा की दृश्य प्रस्तुति की निरंतरता को सिद्ध करती है। लोक साहित्य विशेषज्ञ डॉ. श्याम परमार भी भक्ति के प्रसार से पहले से रामलीला की मौजूदगी अनेक प्रमाणों के आधार पर उद्घाटित करते हैं।

तुलसीदास का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने रामलीला को इतना जनप्रिय रूप दिया कि समूचा उत्तरी भारत सियाराममय हो गया और रामलीला की प्रस्तुति 'रामचरितमानस' के पाठ के साथ होने लगी। शंबूक वध और वैदेही वनवास जैसे लोक चित्त को वेदना पहुँचानेवाले प्रसंगों को तुलसीदास ने बहुत सहजता से 'रामचरितमानस' से बाहर रखा। राम का लोकनायक और लोकरंजक रूप ही इसमें समाहित किया। फलत: इसकी लोकव्याप्ति का विस्तार हुआ। रामलीला से प्रेरणा पाकर मध्यकाल में हिंदी में नाटक लेखन के प्रयास हुए। प्राणचंद ने 'रामायण महानाटक', हृदयराम ने 'हनुमन्नाटक और महाराज विश्वनाथ सिंह ने 'आनंद रघुनंदन' नाटकों की रचना की।

रामलीला का महत्त्व इस दृष्टि से भी रहा है कि हिंदी क्षेत्र में लंबे समय तक, कहना चाहिए सदियों तक विद्यमान रही रंगमंचीय निष्क्रियता के दौर में जनरुचि का संस्कार-परिष्कार करने में रामलीला-

रासलीला की व्यापक भूमिका रही। विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक कारणों से मध्यकाल में हिंदी क्षेत्र सिलसिलेवार रंगमंचीय गतिविधि से शून्य रहा। किंतु रामलीला अपने लोकनाट्य रूप में जन-मन में रस का संचार करती रही। विभिन्न शहरों, कस्बों और गाँवों में अपनी-अपनी सुविधाओं और साधनों के अनुरूप रामकथा को दृश्य बनाने की सामूहिक सांस्कृतिक गतिविधि जारी रही। उसी विरासत में अयोध्या, काशी, वृंदावन, अल्मोड़ा, सतना, मधुबनी आदि की रामलीलाएँ विशेष आकर्षण बन प्रसिद्धि पा सकीं। व्यावसायिकता से दूर इस नाट्य ने स्थानीय समाज की सांस्कृतिक एवं कलात्मक अभिरुचियों के निर्माण में, सामूहिकता को सुदृढ़ बनाने में, नई-पुरानी पीढ़ियों को जोड़ने में बड़ी भूमिका निबाही। बनारस में रामनगर की ३१ दिन तक चलनेवाली रामलीला इस जनभागीदारी की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है, जो लगभग पिछली दो शताब्दियों से अपने परंपरागत स्वरूप को कायम रखे हैं।

आजादी के बाद हिंदी रंगमंच के विकास और तकनीकी सुविधाओं के चलते रामलीला प्रस्तुतियों में कलात्मक आकर्षण बढ़ा। यह व्यावसायिक रंगमंच से भी जुड़ी है। दिल्ली में श्रीराम भारतीय कला केंद्र द्वारा प्रस्तुत रामलीला इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मूलत: 'रामचरितमानस' को आधार बनाते हुए लगभग एक माह तक हर रोज पूरी रामकथा इसमें प्रस्तुत की जाती है। विभिन्न शास्त्रीय और लोक शैलियों को समाहित करता यह नृत्य-नाट्य लगातार दर्शकों को आह्लादित करता रहा है। पिछले करीब छह दशकों से निरंतर प्रस्तुत होती आ रही इस नृत्य नाटिका में शास्त्रीय नृत्य-संगीत का समावेश उत्तर-दक्षिण की परंपरा का संगम स्थापित करता है। इस नृत्य नाटिका की परिकल्पना और स्वरूप निर्माण केरल कलामंडलम के शीर्ष कथकली कलाकारों-कलामंडलम गोपीनाथ और तंकमणि द्वारा किया गया था। समय के साथ थोड़े-बहुत संशोधन-परिष्कार के बावजूद यह अपने मूल स्वरूप को कायम रखे हुए है।

वस्तुत: रामायणी कथा में मानव हृदय की, गहन मानवीय मनोभावों की इतनी संप्रेषणीय, सशक्त और मर्मस्पर्शी संवेदनात्मक प्रस्तुति है कि जब यह भारत के बाहर एशिया के देशों में गई तो जहाँ पहुँची, वहाँ के लोगों की चेतना में बस गई। इसका विस्तार इंडोनेशिया, कंबोडिया, म्याँमार, थाईलैंड, मलेशिया, लाओस, फिलिपींस तक हुआ। कहीं यह कथा बौद्ध धर्म के माध्यम से पहुँची तो कहीं शैव और वैष्णव माध्यमों से। कथावाचकों, पंडितों, दार्शनिकों, कलाकारों, शिल्पकारों, अभिनेताओं, नृत्यकारों आदि अनेक स्रोतों से यह कथा उन समाजों-संस्कृतियों की मूल धारा में समाविष्ट हो गई और सदियों से उनकी कलात्मक संवेदना की, उनके सौंदर्यबोध की पहचान बनी हुई है। उन देशों की भाषाओं में रामायण के अनुवाद हुए हैं। एशियाई देशों की अपनी-अपनी रामायणें हैं, जिनका मूल आधार संस्कृत रामायण और कंब रामायण हैं, हर समाज ने उसे अपनी स्थानीय संवेदना और सुरुचि के अनुरूप ढाला है, लेकिन रामकथा का बुनियादी ढाँचा और प्रधान-पात्रों से जुड़ी घटनाएँ सबमें मौजूद हैं। इंडोनेशिया की 'काकाबीन रामायण', कंबोडिया की 'रिएमकर', थाईलैंड की 'रामकिएन', म्याँमार की 'यामायन' अथवा 'याम जात्दव' ('याम जातक'), मलेशिया की 'हिकायत सेरी राम', फिलिपींस की 'महारादिया लावना', लाओस (जिसे राम के पुत्र लव का नगर माना जाता है) की रामायण 'फ्रा लाक फ्रा लाम' को ये देश अपनी-अपनी सांस्कृतिक परंपरा की पहचान मानते हैं। उनकी रंगमंच परंपरा रामकथा से प्रेरणा पाती है, जो उनकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक पहचान बनी हुई है। दक्षिण-पूर्व एशिया के इन देशों से भारत का संपर्क दक्षिण के समुद्री मार्ग से हुआ, अत: दक्षिण की सुसंपन्न कलाएँ भी इन देशों में पहुचीं। वहाँ का शास्त्रीय संगीत-नृत्य, अभिनय, रूप-सज्जा, ललित कलाएँ, चित्र एवं मूर्तिशिल्प, सभी कुछ इन देशों में पहुँचा और इन देशों की संस्कृति में घुल-मिल गया। उनके मंदिरों की दीवारों पर, उनके प्रस्तर शिल्प में, काष्ठशिल्प में अंकित हो रामायण उनकी स्थायी पहचान बन गई।

इंडोनेशिया के जावा और बाली द्वीपों से भारत का दो हजार साल पुराना संपर्क रहा है, जो उनकी भाषा और संस्कृति में आज भी देखा जा सकता है। रामायण के इंडोनेशियाई पाठ पर आधारित नृत्य-नाट्य 'वायांग' की प्रस्तुतियाँ जावा के प्रांबनान मंदिर तथा बाली के विभिन्न मंदिरों में नियमित रूप से होती हैं। नर्तकियों की गति, यति, लय और मुद्राओं पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

थाई नृत्य-नाट्य 'लाखोन खोई' और 'खोंन' वस्तुत: थाई रामलीला है, जो 'रामकिएन' पर आधारित होती है। खोन में मुखौटा पहनकर अभिनय किया जाता है। स्थानीय कला और सौंदर्यबोध से जुड़कर नृत्य मुद्राएँ चित्रात्मक भव्यता पा लेती हैं।

कंबोडियाई नृत्य-नाट्य रोएउंग कहलाता है। 'रिएमकर' (रामकीर्ति अथवा रामायण) पर आधारित होता है। अंकोरवाट के अप्रतिम मूर्तिशिल्प का सौंदर्य इसमें सजीव हो उठता है। लाओस की रामायण पर आधारित नृत्य-नाट्य फ्रालाक कहलाता है।

वस्तुत: राम, सीता लक्ष्मण, हनुमान, रावण आदि पात्र दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया का एक बड़े भाग की सांस्कृतिक चेतना में गहरे बसे हुए हैं। बुद्ध के संदेश के साथ-साथ भारतीय जीवन की आतंरिक लय भी इन देशों में गई और यह लय राम की लीला में बसती थी। परिणाम यह हुआ कि बौद्धानुयायी हों या इसलाम या किसी अन्य मत के अनुयायी यहाँ के लोगों ने अपनी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए रामकथा को अपनाया और इसे साहित्य-संगीत-नृत्य में ढाला और इस तरह अपने समस्त कला और शिल्प में समाविष्ट कराया।

रामकथा की नाट्य प्रस्तुति का एक और रूप है, जो तटवर्ती भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रचलित है, वह है छाया पुतली नाट्य, आंध्र में थोलु बोमालाटा, कर्नाटक में गोम्बेयाटा, महाराष्ट्र में चर्म बाहुली नाट्य, केरल में थोलापावा कुथू, तमिलनाडु में तोल थोल बोम्मालाटा, उड़ीसा में रावण छाया नाम से प्रसिद्ध छाया पुतली नाटक में सफेद परदे के पीछे से रोशनी करके पुतलियों को संचालित किया जाता है।

चमड़े की बनी पुतलियाँ गति पाकर सजीव हो उठती हैं। रामायण-महाभारत की कथाओं के छायापुतली मंचन की कला ने इंडोनेशिया, कंबोडिया, थाईलैंड, मलेशिया के रंगमंच को विश्व प्रसिद्धि प्रदान कराई है। इंडोनेशिया का वायांग और वायांग कुलित, थाईलैंड का नांग याई। कंबोडिया का नांग स्बैक थोम, मलेशिया का वायांग कुलित रात-रात भर चलनेवाली छाया नाट्य प्रस्तुतियाँ होती हैं। पुतलियाँ सुंदर-सुडौल होती हैं और अपने पूरे परिवेश के साथ तराशी गई होती हैं। कथा गायन के साथ उनका संचालक उन्हें जीवंत गति प्रदान करता है।

रामकथा के वैश्विक प्रसार का आधुनिक संदर्भ भारतीय डायस्पोरा और प्रवासी भारतीयों से जुड़ा है। इनमें एक ओर तो ब्रिटिश उपनिवेशों में गिरमिटिया मजदूरों के रूप में गए भारतीय थे, जिन्होंने औपनिवेशिक तंत्र के अत्याचारों के त्रास को झेलते हुए अपनी पीड़ा को कुछ देर के लिए भुलाने का, अपने बिछुड़े घर से, अपने लोगों से जुड़े रहने का सूत्र रामायण में पाया। वक्त के साथ उनके वंशजों की स्थिति जब सुधरी तो उन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत की ओर लौटना चाहा तो वे रामायण और रामलीला की ओर आकृष्ट हुए। त्रिनिदाद, टैबगो, मॉरीशस, सूरीनाम आदि देशों में भारतवंशियों ने रामायण केंद्र स्थापित किए हैं, जो रामलीला प्रस्तुति भी करते हैं।

प्रवासी भारतीयों का दूसरा वर्ग है, जो बेहतर रोजगार की तलाश में स्वेच्छा से विदेशों में विशेष रूप से पश्चिम के देशों में जाकर बसा है। यह वर्ग भी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा रहना चाहता है, अपनी नई पीढ़ियों को उनसे जोड़े रखना चाहता है तो फिर रामकथा उसे आश्रय प्रतीत होती है। आज नई पीढ़ी का रामकथा से संपर्क रामलीला की बजाय तकनीकी दृश्य माध्यमों से अधिक है। तकनीकी माध्यमों की अपनी सीमाएँ हैं। उन्हें देखने से कथा से जुड़ने का आनंद तो पाया जा सकता है, लेकिन अकेले में भोगा जानेवाला आनंद है। तकनीकी माध्यमों पर प्रस्तुत रामलीला में स्थानीयता, सामाजिकता, सामूहिकता, दर्शकों की साझेदारी का वैसा विस्तार नहीं होता, जैसा मंचीय प्रस्तुति और उसकी तैयारी की प्रक्रिया में होता है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि नृत्य, नाट्य और लीला में युगों-युगों से होती चली आ रही रामकथा की सजीव प्रस्तुति ने न केवल जन-मन का रंजन किया है, बल्कि उसकी अनुभूति को, कलात्मक संवेदना को गढ़ा है।

मानविकी विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,
मैदानगढ़ी, नई दिल्ली-११००६८

कविता

लड़कियाँ

● हेमा चंदानी 'अंजुलि'

सच में
दुनिया को बहुत हैरान करती हैं लड़कियाँ!

एक तो बिना बताए कोख में आ जाती हैं
फिर चाहे लाख मारने की कोशिश करो,
फिर भी बच जाती हैं लड़कियाँ।

ठीक से खाने को न दो
फिर भी देह बढ़ती ही जाती है,
फटे-पुराने कैसे भी कपड़े पहनाओ
फिर भी सुंदर दिखती हैं लड़कियाँ।

गरीबों की तरह पढ़ाओ
फिर भी मेरिट में आ जाती हैं लड़कियाँ,
लाख पराई कह दो
फिर भी अपनापन दिखलाती हैं लड़कियाँ।

चाहे पहले घर की चहारदीवारी न लाँघ पाई हों कभी
पर पति की बीमारी पे नौकरी को चली जाती हैं लड़कियाँ,

चाहे खुद के लिए आवाज न उठाई हो कभी,
पर बच्चों के लिए जमाने से लड़ जाती हैं लड़कियाँ।

वैधव्य हो या तलाक
उम्रभर मृत रिश्तों को ढोती हैं लड़कियाँ,
खुद से अनजान
मगर घर के लिए हमेशा परेशान रहती हैं लड़कियाँ।

शायद सही कहती है यह दुनिया
कि लड़कियों की अक्ल घुटनों में होती है,
अगर सिर में होती तो उनकी दुनिया ऐसी न होती।

सच में
मेरी तो समझ से परे हैं लड़कियाँ।

५८/डी, १६०३
अष्टविनायक को.ऑप. एच.एस.जी सोसाइटी लि.
न्यू महादा टावर, एकता नगर बस स्टॉप के पीछे
कांदीवली वेस्ट, मुंबई-४०००६७
दूरभाष : ०९८३३०२९८६२

स्मरण

भावनाओं के संवेदनशील चितेरे प्रो. नामवर सिंह

● हेमंत शर्मा

नामवर सिंह ध्वंस के शिकंजे में जकड़े हुए इस संसार में सृजन का वर थे। वे मेरे गुरु थे—जीवन को गति देनेवाले, दिशा देनेवाले तथा मकसद देनेवाले। वे मेरी कलम की प्रेरक शक्ति थे। मेरी कलम जब कभी थक जाती थी, जीवन के दूसरे उद्देश्यों में फँस जाती थी तो वे ही उसमें ऊर्जा की स्याही भरते थे; हौसले का आकाश दिखाते थे। मैं आज भी जब कलम उठाता हूँ तो कानों में उनके शब्द गूँजते हैं, मानो एक अदृश्य सी शक्ति कलम की देह में नई साँस भर रही हो; जेहन में आते नित नए विचार सृजन की भोर में जगमगा रहे हों। ये सब गुरुदेव की आत्मीय भावनाओं का सजल आशीर्वाद ही तो है। उनके न रहने की वेदना असह्य है। ऐसा लग रहा है, मानो भीतर कुछ टूट गया हो—कुछ अपूरणीय सा, असहनीय सा। हिंदी आलोचना अनाथ हो गई है। नामवर सिंह के न रहने से उसकी तीसरी पीढ़ी तिरोहित हो गई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद अब नामवरजी थे। साहित्य का एक स्वर्णिम युग एकाएक विलीन हो गया। अक्षर अमिट होते हैं, शाश्वत होते हैं। नामवर सिंह का रचा-बसा संसार मुझे इसकी याद दिला रहा है। वे अब नहीं हैं, मगर उनका रचा-जिया-लिखा मुझसे निरंतर संवाद कर रहा है। वे जिस मृत्यु का हवाला देकर मुझे शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या पर किताब पूरी करने का तकादा करते थे, वही मृत्यु उनके जाने के बाद बेहद बौनी नजर आ रही है। मेरी दराज में समाई नामवर सिंह की किताबों की शृंखला उस मृत्यु के ललाट पर पराजय का अमिट स्मृति-चिह्न बनकर अट्टहास कर रही है।

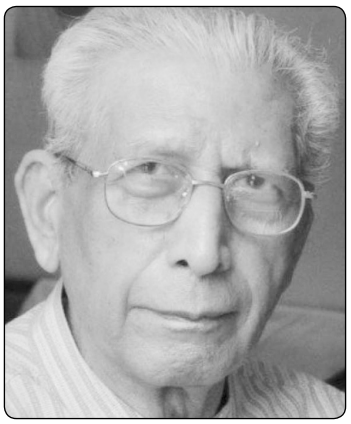

(१-५-१९२७—१९-२-२०१९)

कुछ दिनों पहले ही उन्हें देखने गया था। वे एम्स में भरती थे। उस दौरान उनकी तबीयत में सुधार हुआ था। वेंटिलेटर हट गया था। रक्तचाप, हृदयगति सामान्य थी। चेतना लौट आई थी। हलकी-फुलकी बात भी कर रहे थे। दिमाग में चोट थी, इसलिए थोड़ी गफलत महसूस कर रहे थे। बातचीत भटक रही थी। फेफड़ों में संक्रमण बना हुआ था। डॉक्टरों का कहना था कि स्थिति में सुधार है। पर उनकी उम्र को देखते हुए अभी खतरे से बाहर नहीं कहा जा सकता था। मैं उनसे आई.सी.यू. में मिला। वे मुझे देखते ही पहचान गए। हालाँकि मैं आई.सी.यू. की वर्दी में था—सिर पर टोपी, चेहरे पर मास्क। सामान्य आदमी को पहचानने में वक्त लगता। वे तो गंभीर बीमारी के सदमे में थे। मुझे सिर्फ अपना नाम बताना पड़ा, और वे हमेशा की तरह मुसकरा दिए थे। उनके भीतर का जिंदादिल शख्स इस अवस्था में भी बोल पड़ा था—

''आ गईला। अब सब ठीक हो जाई। हमार पट्टी हटवावा।'' उनके दोनों हाथ में पट्टियाँ बँधी थीं, ताकि वे तंद्रा में अपनी जीवन रक्षक प्रणाली न हटा दें। मैंने कहा, ''डॉक्टर से बात हो गई है, वो एक दिन बाद खोल देंगे।'' वे इस बात पर अड़े रहे कि तुम कहो, तुम्हारे कहने से खोल देंगे। फिर इधर-उधर की बातें करने लगे, जो ज्यादा समझ में नहीं आ रही थीं। फिर बोले, ''तुम्हारी किताब की समीक्षा करनी है मुझे।'' मैंने उनसे बताया कि आप ही ने भूमिका लिखी है। वे बोलते रहे—मुझे दूरदर्शन पर समीक्षा करनी है। मैं उनकी गफलत समझ गया था, इसलिए उनके कहे में सिर्फ हाँ-में-हाँ मिलाने लगा। तब तक डॉक्टर आ गए थे।'' उन्होंने बताया कि गुरुजी पहले से ठीक हैं। इतनी जल्दी ऐसी रिकवरी की उन्हें उम्मीद नहीं थी। उस रोज डॉक्टर की उम्मीद मेरे जेहन की तमाम आशंकाओं को परास्त कर गई। मैं व्यग्र होकर रह गया था, उम्मीद से वापस लौटा।

हालाँकि बिस्तर पर नामवरजी को लाचार देख मन उद्विग्न हो गया। जिस आदमी को पूरे ताप के साथ मैंने देखा था, जम्मू से लेकर तिरुवनंतपुरम् तक जिस व्यक्ति की तेजस्विता के सामने तमाम हिंदी विभाग काँपते थे। जिसकी मर्जी तीस बरस तक हिंदी आलोचना की धारा तय करती रही। जिसका कहा एक-एक शब्द हिंदी आलोचना का बीजशब्द बनता था। मैंने उन नामवर की तेजस्विता का सूर्य देखा था। आनेवाली नस्लें इस बात के लिए हम पर रश्क भी कर सकती हैं कि मैं गुरुदेव के प्रिय शिष्यों में रहा हूँ।

उनका न रहना नामवर युग का अंत है। नामवर सिंह ने आचार्य द्विवेदी के बाद साहित्य का एक संसार गढ़ा था। इसे आप 'नामवर का संसार' कह सकते हैं। साहित्य में इतना बड़ा संसार किसी लेखक-आलोचक का नहीं था। उन्होंने भाषिक संस्कार से लैस एक पूरी पीढ़ी गढ़ी। कभी-कभी तो मुझे समझ नहीं पड़ता था कि वे आलोचना के नामवर थे या फिर नामवर की आलोचना। मैनेजर पांडेय कहते हैं कि नामवर के संसार में भाँति-भाँति के लोग हैं, जो उन्हें तो परेशान नहीं करते, पर दूसरों को काट भी सकते हैं। ऐसा क्यों न हो, वे शिव की नगरी के थे। भोला-भंगड़ तो बराती होंगे ही। उनका कौन सा परिचय दूँ यहाँ? हिंदी साहित्य के शिखर पुरुष, आलोचना की धारा, आलोचना की संस्कृति, तर्क के डिक्टेटर, आलोचना की कसौटी, उन्हें न जाने

कितने नाम दिए गए थे। मेरा मानना है कि आलोचक और अध्यापक होने के साथ ही वे अपने युग के सबसे बड़े वक्ता भी थे। वे अपनी जुबान से कलम का काम करते थे। अपने भाषण से मंत्रमुग्ध करते थे।

वे सचमुच नामवर थे। माता-पिता का बचपन में दिया नाम सार्थक किया। उनका नाम बड़ा था, दिल भी बड़ा था। दो साल पहले नामवरजी नब्बे के हुए थे। नब्बे के नामवर पर इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में संवाद रखा गया था। राम बहादुर राय आयोजक थे। गृहमंत्री राजनाथ सिंह मुख्य अतिथि थे। दोनों ही दक्षिणपंथी। उस आयोजन में नामवर सिंह के होने से वामपंथी खेमे में तूफान मच गया। नामवर वहाँ कैसे? उन पर न जाने का दबाव पड़ा। डिगाने की कोशिशें हुईं। सोशल मीडिया पर नामवरजी के सठियाने जैसी टिप्पणियाँ हुईं। पर वे अविचलित रहे। अडिग रहे। वे समारोह में आए और सौ साल तक जीने की इच्छा प्रकट थी। ये नामवर थे। वे किसी खेमे के नहीं थे। सभी के थे और सबसे बढ़कर मानव की स्वतंत्रता के।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में वे सेमिनार के लिए आते रहते थे। उनसे मिलकर ही हम खुद को आलोचना का अरस्तू मान बैठते। नामवरजी बहुत समय तक बी.एच.यू. में आते नहीं थे। एक लोकसभा का चुनाव लड़ने के कारण गुरुदेव को दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में बी.एच.यू. छोड़ना पड़ा था। फिर उन्होंने आना-जाना बंद किया। पर जब उनके व्यक्तित्व का सूर्य पूरी प्रखरता पर था, उस दौरान कुलपति के निवेदन पर वे विश्वविद्यालयी संगोष्ठियों में आने लगे थे। मुझे गुरुदेव की कृपा तभी से मिलने लगी थी। नामवर सिंह हिंदी के इकलौते आलोचक थे, जो आदिकाल से लेकर उत्तर-आधुनिक युग तक बारह सौ बरस के हिंदी साहित्य की किसी भी कृति की समीक्षा के आधिकारिक विद्वान् थे।

मैं जब 'जनसत्ता' में आया तो मेरी जो रिपोर्ट उन्हें अच्छी लगती, फौरन मुझे फोन करते। वे जनसत्ता के नियमित पाठक थे। बाद के दिनों में वे 'तमाशा मेरे आगे' के कॉलम पर मुझे नियमित फोन करते। 'वाह! पंडितजी अईसन कौउनव बनारसीए लिख सकला।' गुरुदेव जब मुझे मिलते, हमेशा मेरे लिखे हुए किसी लेख की चर्चा करते और हर बार कुछ नया लिखने के लिए प्रेरित करते। अयोध्या वाली किताबें तो हर इतवार तगादा करके उन्होंने ही लिखवाईं।

गुरुदेव के जाने के बाद उनसे जुड़ी स्मृतियों ने मेरे मानस-पटल को घेर रखा है। ये स्मृतियाँ मुझे खाली नहीं छोड़तीं। मुझे हिंदी साहित्य की चिर मशाल आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी याद आ रहे हैं। उनसे एक बार किसी ने पूछा कि आपकी सर्वश्रेष्ठ कृति क्या है? आचार्य हजारी प्रसाद के मुँह से बस एक नाम निकला, 'नामवर सिंह।' ये वही नामवर थे, जिन्होंने हिंदी साहित्य का एक युग गढ़ा, उसे ध्वनि दी। भाषा के अद्भुत अलंकारों से सुशोभित किया। समय की दीवार पर उसकी अविस्मरणीय शिनाख्त मुकम्मल की। जिस बनारसी मिट्टी ने नामवर को बनाया, वह सृजन के अक्षुण्ण प्राणतत्त्व से भरी-पूरी थी। उसमें कबीर का साहस, तुलसी का लोकतत्त्व, प्रेमचंद का समाजशास्त्र और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का पांडित्य था। जब ये सारे तत्त्व एक साथ मिलते हैं, तब एक नामवर सिंह बनते हैं। उनकी यही पहचान जीवनभर उनके साथ रही।

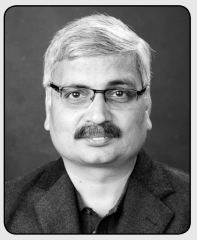

पत्रकारिता का जाना-माना नाम। जन्म और संस्कार पाया काशी में। नौकरी के लिए लखनऊ में रहे। पंद्रह साल तक 'जनसत्ता' के राज्य संवाददाता रहने के बाद दो साल 'हिंदुस्तान' लखनऊ में संपादकी की। इंडिया टी.वी. में नींव से निर्माण तक। कैलास-मानसरोवर की अंतर्यात्रा कराती पुस्तक 'द्वितीयोनास्ति', 'तमाशा मेरे आगे', हाल ही में प्रकाशित अयोध्या पर दो पुस्तकें 'युद्ध में अयोध्या', 'अयोध्या का चश्मदीद' चर्चित।

नामवर सिंह के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी खूबी उसकी समग्रता और उसी समग्रता की जड़ों में घुली हुई अनोखी विशिष्टता रही। इसी खूबी ने उन्हें बड़ी-से-बड़ी परंपरा को खारिज करने, अपना झंडा गाड़ने और हिंदी आलोचना में सबसे ऊँचा, आला और अलहदा स्थान बनाने में मदद की। हर खूबी के कुछ फायदे होते हैं तो कुछ नुकसान भी। नामवरजी ने अपनी इसी खूबी के लिए नुकसान भी उठाया। नामवरजी को बनारस में काफी विरोध झेलना पड़ा, हालाँकि यह विरोध तुलसी और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी झेला था। नामवरजी बनारस के जिस मोहल्ले लोलार्क कुंड में रहते थे, वह भदैनी इलाके में पड़ता है। यहाँ काशी के पुराण पंडितों ने तुलसीदास को भगा दिया था। उनकी 'रामचरित मानस' को गंगा में फेंक दिया था, क्योंकि तुलसी लोकभाषा में रघुनाथगाथा लिख रहे थे। पुराण पंडितों के केंद्र 'भदैनी' से भागकर ही तुलसी ने अस्सी के उस हिस्से का नाम 'भयदायिनी' रखा था, जो बाद में बिगड़कर 'भदैनी' बना। कवि केदारनाथ सिंह तो यहाँ तक कहते थे कि ''भदैनी में 'सरवाइव' करना आसान नहीं है। नामवर सिंह सरवाइव कर गए, शायद इसलिए भी वे नामवर सिंह बन गए।''

नामवर हिंदी आलोचना का अकेला ऐसा नाम थे, जो हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर उत्तर-आधुनिक युग तक किसी भी कालखंड पर अधिकार से अपनी बात रखते थे। उनका न रहना हिंदी आलोचना की सबसे सजग, सतर्क, बहुपठित और संवादी परंपरा का अवसान है। पूरे तीस बरस से मैं नामवर के होने का मतलब ढूँढ़ रहा था और अब उनके न होने के मायने ढूँढ़ने बैठा हूँ। एक बड़ा शून्य है संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से लेकर अब तक के भाषायी साहित्य में। उद्भट और मुँहफट प्रतिभा के धनी नामवर सिंह की 'नामवरियत' बनारस में ही जन्म ले सकती थी। इसकी भी एक वजह है। बनारसीपन एक अति आधुनिक सांस्कृतिक दृष्टि है। उसमें जनमे, पगे, बढ़े नामवरजी पांडित्य से भरे विविध रंगोंवाले बिंदास बनारसी थे। जमाने को ठेंगे पर रख अपनी बात को पूरी ताकत के साथ रखने का अंदाज इसी दृष्टि की उपज थी, क्योंकि जाति, वर्ग, संप्रदाय और धर्म से आगे की चीज है बनारसीपन। समूची पांडित्य परंपरा से लैस नामवरजी अति आधुनिक औजारों से 'दूसरी परंपरा' यहीं ढूँढ़ सकते थे। नामवर सिंह का कर्मक्षेत्र भले ही दिल्ली रहा हो, पर उनका भावक्षेत्र हमेशा बनारस रहा।

सही है कि बनारस में नामवरजी का अनुभव अच्छा नहीं रहा,

मगर यह भी उतना ही सच है कि वे दिल्ली में बनारस को 'मिस' करते रहे। वह दिल्ली में हमेशा बनारस ढूँढ़ते रहे। अपने आस-पास, मित्रों में, खान-पान में, पहनावे में और अपनी भाषा में। उन्होंने गुस्से में बनारस छोड़ा। लोकसभा का चुनाव लड़ा। नौकरी गई। बेरोजगारी देखी। समकालीन साहित्यकारों ने काम भी लगाया। मगर जब बनारस छोड़ा तो पलटकर नहीं देखा। उनके भीतर का जो बनारसी था, उसी ने उनके भीतर यह दृढ़ता और जिद पैदा की। आखिरी के दिनों में वे मुझसे कहा करते थे कि उन्होंने क्षेत्र संन्यास ले लिया है। अब वे इस क्षेत्र के बाहर नहीं जाना चाहते हैं, पर एक बार बनारस जाने का मन है। 'देखल जाय कईसन हौअ बनारस, कईसन हऊअन बाबा विश्वनाथ', पर जहाज से यात्रा की उन्हें इजाजत नहीं थी। सो अपने मूल पर लौटने की उनकी इच्छा धरी रह गई। गुरुदेव की बनारस जाने की इच्छा इतनी बलवती थी कि वे बार-बार कहते, एक बार फिर बनारस जाने का मन है, अब जीवन का क्या ठिकाना। बनारस जाने और बाबा विश्वनाथ के दर्शन की इच्छा अधूरी ही रह गई। वामपंथी होते हुए भी बार-बार बाबा विश्वनाथ के दर्शन का आग्रह उनके संस्कारों का असर था। बनारस के प्रति अपने मोह को वे बार-बार इन वाक्यों में परिलक्षित करते कि मैंने क्षेत्र संन्यास ले लिया है। उनका शरीर भर बनारस से दूर रहा, मगर आत्मा बनारस की मिट्टी में ही पगी-बसी रही।

नामवर सिंह पिछले तीन दशकों से हिंदी साहित्य के केंद्र में थे। उन्होंने आलोचना की वाचिक परंपरा को जीवित किया। आलोचना को बंद गली से आगे ले गए। उसको गंभीरता से मुक्त कर आसान, सरस और ऐसा पठनीय बनाया कि वह रचना का आनंद देने लगी। लिखने से ज्यादा महत्त्व बोले जाने को दिया जाने लगा। किताबों की तुलना में संगोष्ठियों का महत्त्व बढ़ा और इस पूरी परंपरा के अलमबरदार बने नामवरजी। क्योंकि नामवर सिंह कलम के सिपाही नहीं हैं, बातों के जादूगर थे। बातूनी नामवर सिंह को दिल्ली में सब जानते हैं। लेकिन इस बातूनीपन के पीछे वे एक गंभीर अध्येता थे। इस लिहाज से नामवर सिंह शायद हिंदी में समकालीन विश्व साहित्य के सबसे बड़े बौद्धिक पुरुष थे। नामवरजी बेहद अध्ययनशील थे। वे मिर्जा गालिब से लेकर मनोज मुंतजिर तक, कहीं से भी शुरू कर, कहीं भी खत्म कर सकते थे। जितना अधिकार उनका कालिदास और भवभूति पर था, उतनी ही सहजता से वे ब्रेख्त और लुशुन को भी समझाते थे।

नामवरजी अपनी आवाज, असाधारण स्मरणशक्ति, सहज प्रत्युत्पन्न मति आदि की बदौलत पिछले ३० वर्ष से न सिर्फ साहित्यिक संगोष्ठियों को लूटते आए थे, बल्कि अपने साहित्यिक रण-कौशल से अपनी विचारधारा के विरोध में खड़े विद्वानों को भी गिराते, पछाड़ते और उखाड़ते आए थे। वे भाषा के बेजोड़ खिलाड़ी थे। उनकी भाषा मुहावरे गढ़ती थी और यही मुहावरे साहित्य की चौहद्दी बनाते थे। नामवरजी का व्यक्तित्व बहुआयामी था। आलोचना ही नहीं कविता की परंपरा से भी उनका उतना ही गहरा संबंध था। नामवर सिंह 'पुनीत' को बहुत कम लोग जानते हैं। अपने लेखक-जीवन की शुरुआत में वे इस नाम से कविताएँ लिखते थे। अध्यापक नामवर। चंदौली से चुनाव लड़नेवाले राजनेता नामवर। आलोचक नामवर और अब किंवदंती बन चुके नामवर।

रिश्ते-नाते उन्हें ज्यादा प्रभावित नहीं करते थे। घटना, मनुष्य और विचार इन तीनों में वे विचार को अधिक महत्त्व देते रहे। वे विद्यार्थियों को आलोचना पढ़ाते ही नहीं, आलोचना सिखाते भी रहे। वे सामनेवाले की बात को सिरे से खारिज करने का दम रखते थे, पर साथ ही सामनेवाले की बहस और असहमति के अधिकार की हिफाजत करने के लिए भी उतने ही दमखम से खड़े होते थे। शायद यही वजह है कि नामवर सिंह जिन्हें खारिज करते थे, उन्हें ज्यादा पढ़ते थे। बिना पढ़े विरोध, केवल लोकतंत्र में विपक्ष की औपचारिक भूमिका भर है, मगर नामवर सिंह खाँटी विपक्ष की नहीं, बल्कि विद्वत् और संवेदनशील प्रतिपक्ष की भूमिका अदा करते थे।

नामवरजी का एक खास स्वभाव था कि अगर वे आपकी बात से असहमत हैं तो वे आपकी बाकी बातों को उड़ाते हुए कहेंगे, ''आप तो बड़े विद्वान् आदमी हैं।'' एक संस्मरण याद आया। साल १९८२ की बात है। मैं पहली बार उनसे विधिवत् मिला। बी.एच.यू. से जे.एन.यू. में पढ़ने आया था। दाखिला कराने जब बनारस से दिल्ली आ रहा था, तब मेरे पिता मनु शर्मा ने कहा था कि नामवरजी से जरूर मिलना। मेरे भीतर भी बड़ी उत्सुकता थी नामवर सिंह से मिलने की। उनके घर पहुँचा, दस्तक दी। उन्होंने खुद ही दरवाजा खोला। बोले, ''आइए, कैसे दिल्ली आए हैं?'' मैंने जवाब दिया, ''पढ़ने आया हूँ।'' चश्मे के भीतर से झाँकती उनकी गंभीर आँखों ने पूछा, ''रहते तो कबीरचौरा में ही हो।'' मैंने कहा, ''जी।'' उनका अगला सवाल था, ''कबीर को पढ़ा है?'' ''जी पढ़ा है।'' ''कबीर को समझने के लिए किसे पढ़ा है?'' नामवरजी ने अगला सवाल दागा। उन्होंने सोचा होगा कि मैं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम लूँगा, क्योंकि हिंदी में कबीर पर उनकी सबसे प्रामाणिक किताब थी। लेकिन मैंने कहा, ''जी, मैंने कबीर पर आचार्य रजनीश को पढ़ा है।'' रजनीश उस वक्त तक ओशो नहीं थे। मेरे इस जवाब पर वे भेद भरी मुसकान के साथ अपने चिरपरिचित अंदाज में बोले, ''आप तो बड़े विद्वान् आदमी मालूम पड़ते हैं।'' मैं इसे समझा नहीं। बाद में पता चला कि वे अपना यह जुमला तब ही उछालते हैं, जब आप निरर्थक बोल रहे हों या उनके सामने अपनी 'ज्ञान-संपदा' को बड़ी आतुरता के साथ प्रदर्शित कर रहे हों, तब भी वे यही कहेंगे, ''आप तो बड़े विद्वान् आदमी हैं।''

इस घटना के कोई अट्ठाईस वर्ष बाद नामवरजी नोएडा में

मेरे घर आए। सायंकालीन जमावड़ा। केदारनाथ सिंह, ओम थानवी, रामबहादुर राय, मेरे पत्रकार साथी अजय उपाध्याय के साथ ही राजनेता व संविधानविद् देवेंद्र द्विवेदी भी मौजूद थे। गुरुवर प्रभाष जोशी को भी आना था। पूछा तो पता चला, वे चल दिए हैं। नामवरजी बोले, ''हेमंत, परेशान न हो, प्रभाषजी समझदार हैं, हम लोगों को मौका दे रहे हैं, ताकि हम अपना तरल कार्यक्रम समाप्त करें।'' मैंने चुहल की, कहा कि जोशीजी इसका बुरा नहीं मानते। गोस्वामी तुलसीदास तक ने भी इस तरल की महत्ता बताई है। नामवरजी चौंके। ''क्या कहा?'' मैंने कहा, ''जी, तुलसीदास ने लिखा है—तरल पदारथ हैं जग माही, कर्महीन नर पावत नाहीं।'' वह तो प्रूफ की गलती से 'तरल' की जगह 'सकल' छप गया। मेरे उवाच पर बाकी लोग ठहाका लगाते, इससे पहले ही नामवर सिंह बोले, ''वाह! वाह! बहुत विद्वान् आदमी हो!''

नामवरजी की हँसी-ठिठोली का भी एक विशिष्ट अंदाज था। एक बार बनारस में आलोचक डॉ. बच्चन सिंह के यहाँ नामवर सिंह, विजयशंकर मल्ल, केदारनाथ सिंह आदि 'संध्या-वंदन' के लिए बैठे थे। नामवरजी शाम के बैठने-बिठाने के कार्यक्रम को 'संध्या-वंदन' कहते थे। बच्चन सिंहजी के यहाँ संपन्न उस 'संध्या-वंदन' में विजयशंकर मल्ल कुछ इधर-उधर की बात ले आए। मल्लजी विद्वान् अध्यापक थे। उनकी विद्वत्ता का हम पर आतंक था। वे इतने संवेदनशील थे कि कोई बड़ी ट्रेन दुर्घटना और सड़क पर साइकिल से किसी का गिरना उन्हें समान कष्ट पहुँचाते थे। बात हिंदी अखबार और उसकी बदलती भाषा की हो रही थी। मल्लजी कहने लगे—भाई, पटना से एक अखबार निकलता था। नाम था—'प्रदीप'। यह कहते हुए वे नामवरजी की ओर मुखातिब हुए और थोड़ा टेढ़े होकर वायु मुक्त की। नामवरजी ने तुरंत कहा—हाँ, हाँ निकलता था, अभी-अभी निकला है और फिर निकलेगा। बाकी लोग आनंद की मुद्रा में थे। नामवरजी गंभीर। आशय कि वे गंभीर रहकर आनंद लेते थे।

कवि केदारनाथ सिंह और नामवरजी की खूब छनती थी। केदारजी कहते थे, 'यह कोई साधारण बात नहीं है कि पिछले तीन दशक के इतने बड़े कालखंड में समकालीन हिंदी साहित्य के केंद्र में एक आलोचक हैं। कोई रचना नहीं।' इस गुत्थी को सुलझाना होगा, तभी हमें नामवर सिंह होने के सही मायने पता चल सकेंगे। नामवरजी आलोचना के कालजयी हस्ताक्षर थे। एक पूरी-की-पूरी पीढ़ी है, जिसके लिए वे एक संस्था की तरह थे। यह संस्था सिर्फ साहित्य तक सीमित नहीं थी। नामवरजी अपने आपमें जीवन की प्रयोगशाला थे। वे इनसानियत के सूर्य थे। मानवीय भावनाओं के संवेदनशील चितेरे थे। साहित्य के कैनवास पर उनका जितना बड़ा कद था, उससे भी लंबी लकीर वे मानवता के कैनवास पर खींचते थे। गुरु एक शानदार यात्रा पूरी कर अनंत की ओर निकल पड़े हैं। अब भी हर इतवार सुबह फोन उठाकर देखता हूँ। हाथ काँपने लगते हैं। कहीं गुरुदेव का फोन तो नहीं आया। क्या लिख रहे हो, ये पूछने के लिए। उनकी स्मृति को प्रणाम। शत-शत प्रणाम।

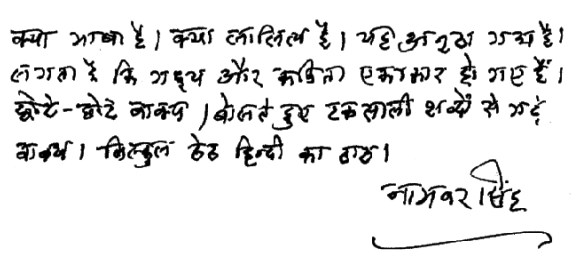

लेखक की पुस्तक 'तमाशा मेरे आगे' पर नामवरजी की हस्तलिख टिप्पणी

आसावरी,
जी-१८०, सेक्टर-४४
नोएडा-२०१०३०१

जब भी आता है कोई परिवर्तन

कविता

● चंद्रसेन विराट

वह नहीं एकदम से आता है
धीरे-धीरे वो क्रम से आता है,
जब भी आता है कोई परिवर्तन
छोटे-छोटे कदम से आता है।
आपके स्वप्न को आकार मिले
आपकी रचना को आधार मिले,
अबके नववर्ष में मनवांछित सब
यश मिले, धन भी मिले, प्यार मिले।

प्रेम निस्स्वार्थ स्वत: प्रेरित है
स्व-समर्पण से हुआ स्थापित है,
प्रेम है गूढ़ सही अर्थों में
त्याग के भाव से परिभाषित है।

चल रहा हूँ मैं, रहगुजर में हूँ
छंद में भी हूँ मैं, बहर में हूँ,
लक्ष्य अंतिम न कोई है जिसका
अब भी कविता के उस सफर में हूँ।

वक्त के आर-पार रहता है
लोक-स्मृति में शुमार रहता है,
व्यक्ति रहता नहीं हमेशा को
किंतु उसका विचार रहता है।

अग्नि की अर्चना से गुजरा हूँ
हर व्यथित व्यंजना से गुजरा हूँ,
कुछ सरल लिख सकूँ इसी खातिर
मैं कठिन यातना से गुजरा हूँ।

उसको निज तक ही नहीं सीमित रख
उसके अंतस को सदा दीपित रख,
तेरे भीतर जो सुधी नायक है
उसको मत मार, उसे जीवित रख।

१२१, बैकुंठधाम कॉलोनी
आनंद बाजार के पीछे
इंदौर-४५२०१८ (म.प्र.)
दूरभाष : ९३२९८९५५४०

मौत-दर-मौत

● राकेश भ्रमर

देवीदीन तब नहीं मरा था, जब उसकी पाँच बीघा फसल अति जल-वृष्टि, ओला-वृष्टि और आँधी-तूफान से बरबाद हो गई थी। तब उसके मुँह से हाय तक नहीं निकली। बस विस्फारित आँखों से पानी में डूबी गेहूँ की फसल को देखता रह गया था। फसल इस तरह जमीन पर लेट गई थी, जैसे उस पर भारी रोलर चलाया गया हो। अरहर के फूल झड़कर जमीन के ऊपर पानी और कीचड़ में सने अपनी बदकिस्मती पर आँसू बहा रहे थे। यही हाल सरसों, चने और मटर के खेत का था। कहीं भी किसी पौधे में जीवन का संचार नहीं हो रहा था।

वह मूक था, फसल मरणासन्न थी; परंतु घरवाले इस तरह चीख-चिल्ला रहे थे, जैसे उनके घर के किसी प्रियजन की मौत हो गई थी। सच भी था, किसान की जीविका का आधार उसकी खेती होती है। वही चौपट हो जाए, तो उसके जीवन में क्या बचता है? ऐसा केवल देवीदीन के साथ ही नहीं हुआ था। गाँव के लगभग हर किसान की फसल मौसम की मार से बरबाद हो गई थी। आस-पास के क्षेत्रों की ही नहीं, पता चला था, प्रदेश के अलावा हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और मध्य प्रदेश में भी बेमौसम की बरसात ने फसलों पर कहर ढाया था। प्राकृतिक आपदा ने किसानों के पेट पर ही लात नहीं मारी थी, बल्कि उनके सपनों को चकनाचूर कर दिया था, उनकी भावी योजनाओं पर पानी फेर दिया था।

देवीदीन पाँच बीघे का काश्तकार था। घर में चार प्राणी थे—वह स्वयं, पत्नी, बड़ी बेटी और छोटा बेटा। छोटा परिवार था, सुख की कोई कमी न थी। किसान के जीवन में यदा-कदा सूखा और बाढ़ का प्रकोप आता ही रहता था, परंतु आपदाओं के बीच भी किसान हँसता-मुसकराता रहता है। कभी मेहनत से जी नहीं चुराता और रूखी-सूखी खाकर भी अपनी फसल को खाद-पानी देता है, ताकि उसको झूमते हुए देखकर उसके मन में संगीत की तरंगें दौड़ सकें। हालाँकि उसके जीवन में ऐसे फूल कम ही खिलते हैं।

इस बार पूरे क्षेत्र में रबी की फसल अच्छी थी। जाड़े के मौसम में वरुण देवता कई बार प्रसन्न हुए और उन्होंने बारिश की बूँदों से धरती को सींचकर किसानों की आशाओं को पंख लगा दिए। खेतों में फसल लहलहाने लगी थी और जब बसंत का मौसम आया तो सरसों के फूलों ने पूरी धरती को पीले रंग से रँग दिया। गेहूँ और अरहर के पौधे भी

सुपरिचित साहित्यकार। 'जंगल बबूलों के', 'हवाओं के शहर में'(गजल-संग्रह), 'उस गली में' (उपन्यास), 'अब और नहीं' (कहानी-संग्रह)। 'प्राची' मासिक पत्रिका का संपादन। पत्र-पत्रिकाओं में सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित। दूरदर्शन लखनऊ तथा आकाशवाणी रामपुर, जबलपुर और मुंबई से रचनाओं का प्रसारण। संप्रति केंद्र सरकार में अधिकारी।

अपनी जवानी पर इतरा रहे थे और उन पर फूलों के रंग चढ़ने शुरू हुए ही थे कि अचानक फिर से वरुण देवता न जाने क्यों, किसानों से नाराज हो गए। अब रबी की फसल को तेज धूप और पछुआ हवा की जरूरत थी, पानी की नहीं; परंतु पूरब की तरफ से आँधी-तूफान के साथ तेज बारिश हुई, कहीं-कहीं ओलावृष्टि हुई और उसने खेतों में खड़ी लहलहाती हुई फसल को जैसे धरती पर नहीं, मौत की अरथी पर लिटा दिया हो। गेहूँ की फसल खेतों में सड़ गई और अरहर के फूल झड़ने से उसमें दाने ही नहीं आए। कई किसान सदमे से मौत के आगोश में समा गए, जो बचे रह गए, वे भी मरे समान थे।

देवीदीन ने इस साल अपनी बेटी की शादी तय कर रखी थी। सोचा था, फसल अच्छी है, धूम-धाम से बेटी की शादी करेगा। परंतु मनुष्य जो सोचता है, वह संभवत: कभी पूरा नहीं होता। वह योजनाएँ बनाता है, परंतु एक अदृश्य शक्ति उनको बिगाड़ती रहती है। कई दिनों तक घर में मातम का माहौल बना रहा। जिस प्रकार आसमान में बादल छाए थे, उसी पर सभी के दिलों पर गम की धूल बिखरी पड़ी थी। अचानक समाचार आया कि सरकार किसानों को मुआवजा देगी, परंतु कितना? यह पता नहीं था। लेखपाल फसलों का मुआयना करके बरबादी का पैमाना निर्धारित करेंगे, फिर सरकार मुआवजा तय करेगी। इस घोषणा के बावजूद किसानों के चेहरों पर उम्मीद की कोई आशा नहीं जागी। पहले भी ऐसा होता आया है। न जाने कितनी बार किसानों की फसल बाढ़ में डूबी, अकाल में सूख गई। सरकारी ऐलानों में मुआवजे की घोषणा हुई, परंतु सारा खेल कागजों में ही सिमटकर रह गया। सरकार ने मुआवजा दिया, नहीं दिया। अगर दिया तो वह कहाँ बाँटा गया, किसको मिला, पता नहीं। इस बार भी ऐसा ही होगा, सभी लोग सोच रहे थे, इसलिए किसी के मन में कोई उत्साह नहीं था। आशा के दीपक बुझे के बुझे रह गए। परंतु नहीं···लगता था, इस बार सरकार किसानों के प्रति चिंतित

थी, उनकी समस्याओं को लेकर गंभीर थी। बड़े-बड़े अखबारों और टी. वी. के पत्रकार कैमरे लेकर गाँवों के दौरे कर रहे थे, बरबाद फसल की जीवंत तसवीरें टी.वी. पर दिखाई जा रही थीं। सरकारी अधिकारी ही नहीं, नेता भी गाँवों के दौरे कर रहे थे।

देवीदीन के गाँव में भी लेखपाल के साथ कुछ अधिकारी आए। वह सभी सरपंच के दरवाजे पर बैठे थे। वहीं पर गाँव के आपदा प्रभावित किसान भी इकट्ठा हुए थे। अधिकारियों ने कुछ किसानों से बात की। फिर लेखपाल से सभी किसानों के नाम लिखने के लिए कहा। खेतों का मुआयना तो नहीं हुआ, परंतु किसानों से पूछकर बरबादी का आकलन कर लिया गया। प्रमाण के लिए सभी किसानों से उनके खेतों की खसरा-खतौनी लेखपाल ने अपने पास रखवा ली।

शाम का समय था। आज आसमान से बादल पूरी तरह तो नहीं, परंतु काफी हद तक छँट गए थे। हल्की-हल्की धूप भी निकली थी, परंतु इससे फसल को कोई फायदा नहीं हुआ था। खेतों में पानी अभी तक भरा था और उसमें फसल डूबी पड़ी थी। अब उसको कोई भी खाद जीवित नहीं कर सकती थी।

देवीदीन अपने घर के बाहर चारपाई पर बैठा बीड़ी सूत रहा था। वहीं पास में उसकी बीवी जमीन पर बैठी अपने दु:ख भरे दिनों को कोस रही थी, ''भगवान गरीबों पर ही अत्याचार करता है। थोड़ी-सी जमीन में पैदा ही क्या होता है? जितना पैदा नहीं होता, उससे ज्यादा खाद-पानी और मेहनत लग जाती है। ऊपर से बाढ़ और सूखा, गरीब करे तो क्या करे? पता नहीं, चमकी की शादी कैसे होगी?'' चमकी उनकी बेटी का नाम था।

''यही चिंता तो मुझे भी खाए जा रही है। घर में अन्न का दाना नहीं आएगा, तो क्या खाएँगे और क्या बेचकर शादी करेंगे। कर्जा लेकर शादी करेंगे तो जिंदगी भर चुकता नहीं कर पाएँगे। इतना अच्छा रिश्ता तोड़ना भी ठीक नहीं है। ये लोग अगर मान जाते तो अगले साल कर देते।'' उसकी पत्नी ने सुझाव दिया।

''पता नहीं, शायद न मानें, उनको तो एक से एक अच्छे रिश्ते मिल रहे हैं। हमारे लिए थोड़े न बैठे रहेंगे।'' वह हताश स्वर में बोला। ''फिर कैसे करोगे?''

''सोचता हूँ, एक बीघा खेत बेच दूँ।'' आस-पास जैसे कोई बम फटा हो। वह चौंककर बैठी की बैठी रह गई। देवीदीन उसके चेहरे के चढ़ते-उतरते भावों को देखता रहा। फिर बोला, ''कर्जा लेकर शादी करना बेवकूफी है। ब्याज ही नहीं चुका पाएँगे, मूलधन की छोड़ो। एक बीघा खेत बिक भी गया, तो कोई खास दिक्कत नहीं होगी। वैसे भी हम खेती से केवल पेट की रोटी भर के लिए ही पैदा कर पाते हैं। बचत तो कोई होती नहीं। एक बीघा खेत बेच देने पर भी चार बीघा जमीन अपने पास बची रहेगी। मेहनत से काम करेंगे, तो खाने भर के लिए पैदा कर ही लेंगे। वरना मेहनत-मजदूरी कहाँ चली जाएगी।''

उसकी बीवी की साँस लौटी, ''सरकार अगर मुआवजा देगी, तो··· शायद खेत न बेचना पड़े।''

देवीदीन हँसा। बड़े दिनों बाद हँसा था। मुसीबत में भी आदमी हँस सकता है, यह देवीदीन से कोई सीखे। हँसी रोककर बोला, ''बड़ा अच्छा मजाक कर लेती हो। आज तक सरकार ने किसी को मुआवजा दिया है? वह सड़क और रेल हादसे में मरनेवालों को मुआवजा देती है। हज और तीर्थ पर जानेवालों को अनुदान देती है, परंतु किसान की फसल बरबाद होने या उसके मरने पर कोई मुआवजा नहीं देती। और देगी भी तो कितना, सौ-पचास, बस।'' कहते-कहते उसकी आवाज में रोना भर आया।

''फिर सरकार इतना ढोंग क्यों करती है? जब देखो तब नेता टसुए बहाने चले आते हैं, जैसे हम लोग उनके सगे-संबंधी हैं।''

''अरे, तुम नहीं जानतीं। यह सब वोट का चक्कर है और कुछ नहीं। वह हमारे लिए झूठे आँसू नहीं बहाएँगे, तो उनको वोट कहाँ से मिलेगा। वह हमारे ऊपर राज कैसे करेंगे?''

''इनके ऊपर गाज नहीं गिरती। हम गरीबों के ही सब लोग दुश्मन हैं।''

''उनका काम ही यही है, जले पर नमक छिड़कना।''

''हमें तो कोई भी नहीं बख्शता। एक तरफ भगवान बरबाद करता है तो दूसरी तरफ बड़े लोग हमें लूट लेते हैं और इसके बाद कोई ऐरा-गैरा हमारे जले पर नमक छिड़कने चला आता है।'' गरीब मजदूर और किसान के साथ हमेशा मजाक होता रहता है। इस बार भी हुआ। दो दिन बाद ही गाँव के सभी किसानों के घर सरपंच का फरमान पहुँचा कि पाँच सौ रुपए प्रति बीघा की दर से तहसीलदार और लेखपाल को पैसा देना होगा, तभी मुआवजा पास होगा।

फरमान सुनते ही सभी किसान भड़क गए। यह तो सरासर ज्यादती थी। किसान के घर में पैसा कहाँ से आएगा? फसल बरबाद पड़ी है। आमदनी का और कोई जरिया नहीं। क्या वह कर्जा काढ़कर तहसीलदार को घूस देगा? कुछ जवान और उत्साही किसान सरपंच के पास पहुँचे। पूछा तो सरपंचजी मूँछों पर ताव देते हुए बोले, ''भई, आप तो जानते हैं, जब सरकारी अधिकारी गाँव-गाँव का चक्कर लगाकर आपकी भलाई के लिए परेशान हो रहे हैं, तो हमारा भी धर्म बनता है कि उनके लिए चाय-पानी का इंतजाम करें।''

''यह चाय-पानी नहीं, सरासर लूट है। पाँच सौ रुपए प्रति बीघा? इसका मतलब आप समझते हैं। सौ बीघे का पचास हजार और इस गाँव में लगभग दो सौ बीघा जमीन सभी काश्तकारों के पास है।'' एक पढ़े-लिखे नवजवान ने कहा।

''भई, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। आप यह न समझें कि बीच में मैं दलाली खाऊँगा।'' सरपंच ने खिसियानी हँसी हँसते हुए कहा।

''लेखपाल और तहसीलदार तो सरकारी नौकर हैं। सरकारी काम के लिए उनको तनख्वाह मिलती है। मुआवजा वह अपनी जेब से नहीं दे रहे, जो हमसे कमीशन माँग रहे हैं।'' दूसरे जवान ने तैश में आते हुए कहा।

''हम कमीशन नहीं देंगे।'' तीसरे ने ऐलान किया।

नौजवान आपस में हो-हल्ला करने लगे। सरपंच ने उनको शांत करते हुए कहा, ''मैं आपकी भावनाएँ समझता हूँ, परंतु आप समझ लीजिए, कोई भी सरकारी काम बिना घूस के नहीं होता है। आगे मुझे कुछ नहीं कहना। आप पैसा देंगे तो मुआवजा मिलेगा, नहीं तो हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहिए।''

नवजवान चिल्लाने लगे, ''यह सरकार निकम्मी है। सरपंच चोर है। तहसीलदार बेईमान है। हम उनकी मनमानी नहीं चलने देंगे।'' वे सभी चीखते-चिल्लाते और गालियाँ बकते हुए चले गए। माहौल काफी गरम हो गया था, परंतु मारपीट जैसी कोई वारदात नहीं हुई।

गाँव में दो गुट बन गए—एक गुट जवानों का था, जो घूस नहीं देना चाहता था और दूसरा गुट बुजुर्ग लोगों का था, जिन्होंने दुनिया देखी थी। वे घूस देने के पक्ष में थे। वे चाहते थे—पाँच सौ देकर अगर हजार मिलते हैं, तो क्या बुराई है? इस प्रकार कुछ लोगों ने चुपचाप सरपंच को जाकर पैसे दे दिए। कुछ लोगों ने नहीं दिए।

देवीदीन पैसे देने के पक्ष में था, परंतु उसके घर में फूटी कौड़ी भी नहीं थी। अंत में उसने अपनी बीवी की झुमकी और पाजेब बनिया के यहाँ गिरवी रखकर ढाई हजार रुपए का इंतजाम किया। उसके पास पाँच बीघे खेती थी। इस तरह ढाई हजार बनते थे, परंतु इतने रुपयों के लिए उसे लगभग पंद्रह हजार के गहने गिरवी रखने पड़े थे। सोचा था, मुआवजा मिलते ही छुड़वा लेगा।

फसल काटने का समय आ गया था, परंतु मुआवजा नहीं आया। किसानों ने आधी-अधूरी सूखी फसल काट ली। दो-चार दाने जो मिले, घर ले आए और रीती आँखों से मुआवजे का इंतजार करते रहे, परंतु सरकार जैसे मुआवजा देना ही भूल गई थी। राम-राम जपते तीन महीने बीत गए। तब खबर आई, मुआवजा सीधे किसानों के खाते में आएगा। यह एक नई मुसीबत थी। जिन किसानों के खाते थे, उनको तो कोई दिक्कत नहीं थी, परंतु जिनके नहीं थे, वे बेचारे भाग-दौड़ करते रहे। कई चक्कर लगाने के बाद सरकारी बैंक में उनके खाते खुल पाए और जब किसानों के खाते में मुआवजे की राशि आई तो सबको चक्कर आ गए। किसी के खाते में पाँच सौ तो किसी के खाते में हजार रुपए आए थे।

लोग खूब चीखे-चिल्लाए, सरपंच को गालियाँ दीं। उनके घर के आगे प्रदर्शन किया, परंतु ढाक के तीन पात। सरपंच ने उनको उलटी-सीधी पट्टी पढ़ाकर शांत कर दिया और लेखपाल तथा तहसीलदार के पास जाने की किसी की हिम्मत नहीं थी। देवीदीन तो अधमरा पहले ही हो चुका था, अब तीन चौथाई मर गया था। हजार रुपए में वह किस-किसके माथे पर चंदन लगाता। बेटी की शादी कहाँ से करता?

खेत बेचने के अलावा अब उसके पास कोई चारा नहीं था। शादी की तिथि नजदीक आती जा रही थी। देवीदीन के पास पैसों का कोई इंतजाम नहीं था। इसी बीच लड़के के बाप ने खबर भिजवाई कि तिलक में बाकी सामान के साथ-साथ मोटर साइकिल भी चाहिए। पहले मोटर साइकिल की कोई बात नहीं हुई थी।

''लड़के वाले तो जोंक की तरह हमारा खून चूसने में लगे हैं।'' उसकी पत्नी ने रुआँसे स्वर में कहा।

''ये तो मगरमच्छ हैं, सीधे निगलनेवाले। किसी का दर्द नहीं समझते। परंतु लड़की तो ब्याहनी है। यहाँ नहीं तो कहीं और। सारे लड़केवाले एक जैसे होते हैं। उनसे पार पाना मुश्किल है।''

''अब तो कोई आसरा भी नहीं।''

''आसरा है, खेत बेच देंगे।'' देवीदीन ने बस इतना ही कहा।

आदमी चाहे जितना बेबस हो, वह अपने जीने की राह खोज ही लेता है। गाँव में तीन-चार लोग ही ऐसे थे, जिनके पास इतना पैसा था कि आनन-फानन में चार लाख का खेत खरीद लेते, परंतु गाँव में कुछ लोग ऐसे भी थे, जिनकी जेब में छदाम भी न थी, परंतु बोली बढ़-चढ़कर लगाते थे। इस प्रकार वह जमीन की कीमत बढ़ा-चढ़ा देते और असली खरीददार पीछे हट जाता। देवीदीन ने राजकुमार गुप्ता से चार लाख में अपनी एक बीघा जमीन का सौदा कर लिया। दस हजार रुपए बयाना भी ले लिया। बाकी पैसा लिखा-पढ़ी के दिन देना तय हुआ।

उसी दिन शाम को सरपंच गंगादीन ने उसे बुलाया। पूछा, ''का हो देवीदीन, जमीन बेच रहे हो?''

देवीदीन सकपका गया। उसने किसी को नहीं बताया था, फिर सरपंच को कैसे पता चला। झिझकते हुए बोला, ''हाँ, बिटिया की शादी करनी है।''

''तो मुझे बताते। मैं क्या पैसे नहीं देता?''

देवीदीन जानता था, सरपंच दबंग था। सौदा तय करके पूरे पैसे कभी नहीं देता था। जो देता था, वह भी थोड़े-थोड़े करके और कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाता था।

वह चुप रहा। सरपंच ने आगे कहा, ''सारे काम मुझसे करवाते हो और जमीन बेचने के लिए बनियों के पास जाते हो। आगे मुझसे कोई काम नहीं पड़ेगा?'' सरपंच ने उसे दाँव में लेने की कोशिश की, परंतु देवीदीन सोच रहा था, काम तो पड़ता है और आगे भी पड़ेगा, परंतु करवाते कहाँ हो? ढाई हजार रुपए लेकर एक हजार मुआवजा दिलवाया, यह कहाँ का न्याय था।

उसने विनम्रता से कहा, ''सरपंचजी, जमीन तो आगे भी बिकेगी। इस बार मैंने गुप्ताजी से बात कर ली है। वचन देता हूँ कि अगली बार जब भी जमीन बेचूँगा, आपको ही दूँगा।''

''अभी लिखा-पढ़ी तो नहीं की?''

''नहीं, परंतु बयाना ले लिया है।''

''उसे लौटा दो, और यह जमीन मेरे नाम लिखवा दो। मैं बयाना देता हूँ।'' सरपंच ने अकड़कर कहा।

देवीदीन अंदर-ही-अंदर सहम गया, परंतु हिम्मत बटोरकर बोला, ''सरपंचजी, मेरी बात खराब हो जाएगी। आपको जमीन की क्या कमी है?'' देवीदीन का इशारा सरपंचजी समझ गए। पिछले दस सालों से वह ग्राम प्रधान थे और इस दौरान लेखपाल से मिलकर ग्राम सभा की सारी परती जमीन और ताल-तलैया अपने नाम करवा लिये थे। सरकारी योजनाओं का पैसा हजम करके जगह-जगह दुकानें और मकान खड़े कर लिए थे। खेती की जमीन पहले ही उनके पास बहुत थी और सरपंच बनने के बाद लगभग बीस बीघा और खरीद ली थी। खूब संपन्न थे, परंतु मनुष्य की हवस कभी खत्म नहीं होती।

''अच्छा।'' सरपंचजी व्यंग्य से मुसकराए। फिर मन-ही-मन कुछ सोचकर बोले, ''कोई बात नहीं, तुम अपनी बात खराब मत करो। अगली बार सही! ये बताओ, लड़की का रिश्ता कहाँ तय किया है? लड़का क्या करता है?''

'मौरावा के पास मवई में। लड़का कोई खास काम नहीं करता। पंजाब में ईंट भट्ठों में काम करता है।'' देवीदीन ने दीनता से बताया।

''चलो कोई बात नहीं...! दहेज कितना दे रहे हो?''

''दहेज क्या देना, परंतु आजकल गरीब हो, चाहे अमीर, दहेज में मोटरसाइकिल, घड़ी, अँगूठी, चेन तथा घर का सारा सामान और फर्नीचर देना ही पड़ता है। नकद भी पचास हजार-लाख के बीच में चढ़ाना पड़ता है। लड़का चाहे बेरोजगार ही क्यों न हो, इतना तो देना ही पड़ता है।''

''तीन-चार लाख तो खर्च हो जाएँगे?'' सरपंच ने ऐसे पूछा, जैसे गाँव-घर की शादियों के बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं थी।

''हाँ, इससे कम में क्या होगा?''

'चलो, ठीक है। मेरे लायक कोई काम हो तो बताना।'' सरपंचजी ने दरियादिली से कहा। 'भगवान करे, आपसे कोई काम न पड़े।' वह मन-ही-मन सोचता हुआ घर लौट आया।

अगले सप्ताह देवीदीन के खेत की लिखा-पढ़ी राजकुमार गुप्ता के नाम हो गई। शाम को वह तहसील से हँसी-खुशी लौटा। गुप्ताजी के घर से पैसे लेकर अपने घर पहुँचा तो बीवी दरवाजे पर ही बैठी मिली, जैसे किसी का शोक मना रही हो।

''यहाँ, क्यों बैठी हो? चलो, घर के अंदर।'' वह जल्दी से जल्दी घर के अंदर जाकर बीवी के हाथों में पैसे रखना चाहता था।

''घर के अंदर जाकर क्या करोगे? खेत बेच आए, अब रुपयों को भी आग लगा दो।'' फिर वह सुबकने लगी, ''ऊपर से भगवान् खफा है, नीचे आदमी हमारी जान खाए जा रहे हैं। कहाँ जाकर मर जाएँ हम?'' फिर वह जोर-जोर से रोने लगी। देवीदीन अंदर-ही-अंदर भयभीत हो गया, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि घर में ऐसी कौन सी आफत आ गई, जो उसकी पत्नी फूट-फूटकर रो रही है।

उसने बीवी को तसल्ली देते हुए कहा, ''अरी, कुछ बताएगी भी कि यों ही मुँह फाड़-फाड़कर रोती रहेगी। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा।'' फिर उसने इधर-उधर नजर फेरी। उसकी बीवी का रोना सुनकर पड़ोस की कुछ औरतें इकट्ठा हो गई थीं, जैसे वह उसके रोने का इंतजार ही कर रही थीं कि वह रोए और वे हाजिर हों।

उसने प्रश्नवाचक भाव से उन सबकी तरफ देखा, शायद उनमें से कोई कुछ बता सके। पड़ोस की देवकी चाची आगे आकर बोलीं, ''बेटा, तेरे साथ बहुत बुरा हुआ। लड़केवाले आए थे।''

''लड़केवाले?'' उसके मुँह से निकला। वह समझ नहीं पाया।

''हाँ, तेरी बेटी की ससुरालवाले। वह रिश्ता तोड़ गए।'' देवकी चाची ने रहस्य की गठरी तुरंत खोल दी। जैसे उन्हें यह रहस्य खोलने के लिए बहुत जल्दी थी।

''रिश्ता तोड़ गए?'' देवीदीन के मुँह से हलकी आवाज में ये शब्द निकले और वह धड़ाम से जमीन पर बैठ गया। उसका दिमाग चकरा गया। हृदय जैसे फट जाएगा। ''यह कैसे हो गया? बिना किसी बातचीत के वह रिश्ता कैसे तोड़ सकते हैं?''

उसकी बीवी ने रोना रोककर कहा, ''उनके शरीर में कीड़े पड़ेंगे, सड़ जाएँगे, कोई लाश उठानेवाला नहीं मिलेगा। कहके गए हैं कि मेरी बेटी बदचलन है। गाँव के कई लड़कों के साथ उसके रिश्ते हैं। इतना बड़ा झूठ? सती-सावित्री जैसी लड़की के चरित्र पर इतना बड़ा लांछन लगाया। गाँव के ही किसी दुश्मन का काम है। मैंने किसी का क्या बुरा किया, जो मेरी बेटी का घर बसने के पहले ही उजाड़ दिया। भगवान् सब देख रहा है। जिसने हमारे साथ बुरा किया, उसके घर में भी बेटी होगी। उसका घर भी इसी तरह उजड़ेगा।'' और वह इसी तरह अनजान लोगों को गालियाँ और बद्दुआओं से कोसती रही।

देवीदीन का शरीर लगभग सुन्न हो चुका था, कानों में धड़ाम-धड़ाम की आवाजें आ रही थीं। वह कुछ सुन रहा था, कुछ नहीं। बस उसकी आँखों के सामने एक चित्र उभर रहा था—सरपंच गंगादीन का, जिसने उससे पूछा था कि वह लड़की का रिश्ता कहाँ कर रहा है। और उसने गाँव का नाम-पता बता दिया था। गाँव में उसका कोई दुश्मन नहीं था, परंतु उसे लग रहा था, सरपंच ने उससे दुश्मनी निभाई है। उसने अपना खेत उसे नहीं बेचा था, इसी कारण उसने उसकी बेटी का घर बसने से पहले उजाड़ दिया।

देवीदीन आज सचमुच पूरा का पूरा मर गया था।

साअ

२८, तीसरा तल, गली नं. ११
प्रताप नगर, मयूर विहार फेज-१
दिल्ली-११००९१
दूरभाष : ९९६८०२०९३०

आलेख

सूरदास और सूरकुटी

● सतीशचंद्र चतुर्वेदी

लेखक परिचय
सुपरिचित लेखक, कवि एवं कथाकार। 'अंगीरा से आगरा' (निबंध-संग्रह), 'आगरानामा' (इतिहास) द्वितीय संस्करण एवं कई लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संप्रति 'रत्नदीप' (सांस्कृतिक संस्था) के संचालक।

सन् १९२४ के लगभग हिंदी के प्रसिद्ध राहित्यकार लाला भगवानदीन ने 'सूर पंचरत्न' पुस्तक में सूरदास का परिचय देते हुए लिखा कि 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के आधार पर सूरदासजी आगरा-मथुरा मार्ग पर रुनकता नामक स्थान पर रहते थे। सन् १९२६ में डॉ. हरिहरनाथ टंडन को उस स्थान को देखने की उत्सुकता हुई। वे खोजते-खोजते उस स्थान पर पहुँच गए और गऊघाट पर उस टूटी-फूटी कुटी को उन्होंने देखा और उसमें लगी ईंटें उठाकर देखीं। ईंटें अकबर और जहाँगीर के समय की बनावट की लंबाई की मिलीं, इससे यह विश्वास हो गया कि कुटी का अस्तित्व पुराना है, लेकिन इसका वर्तमान रूप पुराना नहीं है। डॉ. हरिहरनाथ टंडन ने उस स्थान की प्रामाणिकता से तत्कालीन जिलाधीश सर जान मार्शल को अवगत कराया और जिलाधीश ने छानबीन करके और आश्वस्त होकर उसे सूरकुटी घोषित कर दिया। सन् १९५२ में डॉ. टंडन के प्रयास से कीठम होकर सूरकुटी तक मार्ग मिल गया। डॉ. टंडन के शिष्य डॉ. सिद्धेश्वरनाथ श्रीवास्तव को सूरकुटी की धुन सवार हुई और उनकी उस धुन ने उन्हें 'सब तज सूर भज' में लगा दिया। डॉ. श्रीवास्तव ने कहा कि मेरा सूरकुटी तथा सूरदास से जुड़ने का संपूर्ण श्रेय डॉ. हरिहरनाथ टंडन और पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी को जाता है। टंडनजी ने सन् १९२८-२९ में सूरकुटी की खोज करने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन् १९५२ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री गोविंद बल्लभ पंत आगरा आए थे। उनके निजी सचिव श्री जानकी से टंडनजी का परिचय था। डॉ. टंडन ने पंतजी से सूरकुटी की चर्चा की और कहा कि वहाँ पहुँचने का कोई मार्ग न होने कारण बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन सूरकुटी नहीं जा सके। पंतजी ने कहा कि सड़क कम-से-कम पैंतीस फुट चौड़ी होनी चाहिए। तत्काल उन्होंने अपने निजी सचिव को आदेश दिया कि वह वन विभाग को पत्र लिखे, वन विभाग ने लगभग एक किलोमीटर सड़क सूरकुटी की बनवा दी। टंडनजी ने उद्यान विभाग के उपनिदेशक पं. श्रीराम शुक्ल से कहकर सूरकुटी पर घास लगवाने तथा गुलाब लगवाने का कार्य कराया। साहित्यकार तथा प्रशासन के महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी सन् १९४४ में आगरा में जिला विद्यालय निरीक्षक थे। वे डॉ. टंडन के मित्र भी थे। उन्होंने भी सूरकुटी के कार्य में बहुत रुचि ली थी। पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी ने सूरकुटी को देखा, तब उस समय सूरकुटी के दक्षिण-पश्चिम का कोना बिल्कुल टूटा पड़ा था। दक्षिण की दीवार में लगभग ढाई फीट का मोखला था, छत की दो कड़ियाँ नीचे लटक रही थीं। छत भी कहीं-कहीं से टूटी हुई थी। रुनकता के अध्यापक पं. दौलतराम ने बताया कि यहाँ पर श्यामदास नामक बाबा लगभग सन् १९४८ तक रहे। सूर स्मारक मंडल की स्थापना सन् १९५८ में हुई थी। इससे पूर्व सूर स्मारक समिति की स्थापना सन् १९५२ में की थी। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी, पं. श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, डॉ. किरन कुमारी गुप्त, डॉ. सत्येंद्र, डॉ. हरिहरनाथ टंडन, श्री फूलसिंह शर्मा, कुमारी विजयलता श्रीवास्तव तथा डॉ. सिद्धेश्वर नाथ श्रीवास्तव के हस्ताक्षर कराकर रजिस्ट्रार को भेजे गए थे। सन् १९६० में सूर स्मारक मंडल की स्थापना करनेवाले उक्त नौ संस्थापक सदस्य थे। सूर स्मारक मंडल की कुछ योजनाओं को प्रदेश तथा केंद्रीय सरकार से नियमों के अनुसार पचास प्रतिशत अनुदान प्राप्त हुआ था! सूरकुटी नगर से दूर है। वहाँ जाना, रहना या अध्ययन करना अपेक्षाकृत कठिन है। यदि नगर में ही कहीं सूर साहित्य पुस्तकालय या संग्रहालय स्थापित कर दिया जाए तो सूर साहित्य का अवलोकन और अनुसंधान करना आसान हो जाए। आगरा से रुनकता करीब-करीब मिल गया है। सूर-सरोवर (कीठम झील) पर पक्षी बिहार की योजना पूरी हो चुकी है। सूरदास की वह प्राचीन कुटी मरम्मत के बाद जैसी की तैसी सुरक्षित है।

एक बड़ा हाल। सूरकुटी बनाए जाने के मॉडल की तसवीर, जिसका नक्शा बनाया है आगरा के प्रसिद्ध आर्किटैक्ट श्री शशि भूषण शिरोमणि ने। लगभग तैंतीस दृष्टिहीन बच्चों का अंधविद्यालय। उनका अध्ययन-कक्ष तथा चारपाई और बिस्तरों से युक्त कक्ष, ऑफिस कक्ष। सूर की एक चबूतरे पर वक्ष-मूर्ति, सूर की दूसरे चबूतरे पर बड़ी मूर्ति, गौशाला, हैडपंप, जैटपंप पुष्पवाटिका सब्जियों की क्यारियाँ, सौर-ऊर्जा की रोशनी तथा भोजन की व्यवस्था। इटावा निवासी अस्सी वर्षीय अध्यापक श्री बाजपेयी, जो परिवार को छोड़कर अकेले सूरकुटी की व्यवस्था देखने में हाथ बँटाते थे। आठ वर्ष से पंद्रह वर्ष तक के दृष्टिहीन बच्चे, जो ब्रेल पद्धति की पुस्तकों के माध्यम से काव्य पाठ करते हैं, अपने अध्यापक डॉ. अर्जुनलाल चौधरी के साथ पद गायन करते हैं। दृष्टिहीन बच्चों को पढ़ानेवाले पाँच अध्यापक दृष्टिहीन हैं और एक सदृष्टि। सारे बच्चे बिना किसी के सहारे अपने कमरों में आते-जाते हैं, जो मँगाया जाता है, लाते हैं। वे दृष्टिहीन बच्चे प्लास्टिक की बेंत से कुरसी बुनते हैं। उन बच्चों की बनाई हुई दुरंगी प्लास्टिक की कड़ी, मोमबत्तियाँ और डिटरजेंट पाउडर बनाते हैं। यह सब सूर की भूमि का प्रभाव है। सन् १९७१ में डॉ. सिद्धेश्वरनाथजी को सूरकुटी की खुदाई में दो फारसी मुद्रित सिक्के मिले थे, वे निश्चित ही मुगलकाल के होंगे। सन् १९७१ में नेत्रहीन विद्यालय की स्थापना हुई। त्रैमासिक पत्रिका

'सूर-सौरभ' का प्रकाश सन् १९७६ से होने लगा। छह वर्ष तक आगरा से प्रकाशन होता रहा था। गौशाला का प्रारंभ नेत्रहीन छात्रों को दूध की सुविधा के लिए हुआ। सन् १९६१ से पत्र-व्यवहार करने पर सन् १९७१ में तत्कालीन वनमंत्री चौधरी चरणसिंह ने पच्चीस एकड़ वनविभाग की भूमि सूर रमारक मंडल को प्रदान करने के आदेश दिए। महाकवि सूरदास हाईस्कूल की स्थापना जूनियर हाईस्कूल के रूप में सन् १९६१ में की थी। पहले यह सूरकुटी पर था, सन् १९७१ से जनता की माँग पर रुनकता के आगरा-मथुरा राजमार्ग पर स्थापित कर दिया। वह विद्यालय जुलाई १९९१ से इंटर कॉलेज हो गया है। नेत्रहीन विद्यालय को केंद्रीय कल्याण मंत्रालय से मान्यता प्राप्त है। भारत में लगभग तीन सौ नेत्रहीन विद्यालय हैं। इनमें चालीस राजकीय तथा शेष संस्थाओं द्वारा संचालित हैं। अधिकांश प्राइमरी तक ही चलते हैं। सूरदास पर अंग्रेजी भाषा में एक 'सूरदास' ग्रंथ तथा दूसरा 'सूर पंचशती' ग्रंथ प्रकाशित हुआ। सन् १९८२ में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ से 'सूर सचित्र पदावली' का प्रकाशन हुआ था। इस पुस्तक में सूर के पचास पद हैं। इस पुस्तक की पाँच हजार प्रतियाँ बच्चों को उपहारस्वरूप देने के लिए प्रकाशित की गईं। आगरावासी सूरकुटी को कितना जानते हैं, पता नहीं, पर गुजरात निवासी सूरकुटी के लिए समर्पित हैं।

सन् १५५९ में महात्मा सूरदासजी अपना सूरसागर लेकर गोस्वामी तुलसीदासजी के पास गए थे और एक सप्ताह के सत्संग के बाद वापस आए थे। मध्ययुग के मानस मे यह विश्वास दृढ़ हो गया कि वे जन्म से ही अंधे थे। अकबर बादशाह की इच्छा सूरदासजी से मिलने की हुई और वे सूरदासजी के पास जा पहुँचे, तब अकबर ने कुछ सुनाने की प्रार्थना की तो सूरदासजी ने उन्हें पच्चीस दोहे गाकर सुनाए थे। सूरदास से भेंट करके आगरा लौटने पर अकबर ने सूरदास के पदों की तलाश कराई और उन्होंने सूरदासजी के जिन पदों को सुना था, उनको फारसी भाषा में लिखवाया था। सन् १९२६ में हिंदी साहित्य सम्मेलन के भरतपुर अधिवेशन में सूरसागर के संपादन की पहली बार चर्चा हुई और तत्कालीन भरतपुर नरेश सवाई किशन सिंह को संपादन कराने तथा प्रकाशन कराने का भार सौंपा गया था। सूरदास के अनुमानित गोलोकवास १५६०-१५६३ के आसपास के एक हस्तलेख का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। यह हस्तलेखन जयपुर महाराज के पोथीखाना से प्राप्त हुआ है। ब्रिटिश कोलंबिया यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर डॉ. केन ई. ब्रायट का गवेषणात्मक निबंध १९८२ में महाराजा सवाई मानसिंह द्वितीय म्यूजियम ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित किया गया है। पुरातत्त्व प्राचीन हस्तलेखों और सूर साहित्य के विद्वान् पंडित उदयशंकर शास्त्री ने अपने सूरसागर की सामग्री का संकलन-संपादन शीर्षक लेख (भारतीय साहित्य, वर्ष-१७ अंक १-२ कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी हिंदी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ आगरा) में सूरसागर की जो हस्तलिखित प्रतियों की सूची दी है, उसमें सबसे प्राचीन प्रति १६०१ ई. की नाथद्वारा की प्रति है और सबसे आर्वाचीन १७४१ की बरौली भरतपुर की प्रति है। पंडित जवाहरलाल चतुर्वेदी ने भी कहा है कि स्कंधात्मक सूरसागर की प्रति १६८८ के पहले की नहीं मिलती, जबकि संग्रह रूप की प्रति सन् १५७८ की मिली है। सूरसागर के पाठ-संपादन के दो और प्रयत्न हुए। १९६५ में कलकत्ता के बिनार्नी ट्रस्ट ने पंडित जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित ४९४ पदों की एक जिल्द प्रकाशित की थी। तीसरे दशक में ब्रजभाषा के अनन्य प्रेमी और कवि बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'बिहारी रत्नाकर' के संपादन के बाद सूरसागर के संपादन का संकल्प किया था। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा के उल्लेख के अनुसार उन्हें पाँच वर्ष सूरदास के जीवन और काव्य का गहन अध्ययन करने के उपरांत इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी.फिल. की उपाधि प्राप्त हुई थी। केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के पूर्व निदेशक प्रो. ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा संपादित सूरसागर का प्रकाशन सन् १९८८ में ज्ञानमंडल लिमिटेड, विक्रम भवन लंका, वाराणसी में हुआ था। महाकवि सूरदास का जन्म १४७८ में हुआ था और उनका निधन १५८३ में। सूर पंचशती के अवसर पर जो आयोजन हुए थे, वे इस प्रकार हैं। उसी दौरान पं. हृषीकेश चतुर्वेदीजी ने सन् १९५७ में सूरदास के प्रति कविता लिखी थी, इस कविता की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

मंगल-मूरि, सूर! तब वानी।
सहज, सुगम्य, सरस अति अनुपम
परम-मरम-मयि सवन सुहानि॥

नगर के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक उत्थान हेतु समर्पित सूरसदन का निर्माण वंसत पंचमी रविवार, ३१ जनवरी, १९७१ को प्रारंभ हुआ था, उस समय नगर प्रमुख रामबाबू वर्मा थे। सन् १९५२ में डाक विभाग ने सूरदासजी पर डाक टिकट निकाला था। डाक विभाग ने १२ फरवरी, १९७८ को सूर पंचशती के अवसर पर लिफाफा जारी किया था। डॉ. रामचंद्र गुप्त एडवोकेट महापौर की स्मृति में श्री शिवप्रसाद गुप्ता, अध्यक्ष विधान परिषद्, उत्तर प्रदेश एवं सूर स्मारक मंडल के सौजन्य से महाकवि सूरदास की मूर्ति की स्थापना सूरसदन में की गई, जिसका अनावरण १ मार्च, १९९२ को महामहिम डॉ. शंकर दयाल शर्मा उपराष्ट्रपति के कर-कमलों द्वारा संपन्न हुआ था। सूरपंचशती के आयोजन जब हो रहे थे, तब प्रसिद्ध चित्रकार रामकुमार द्वारा बनाया हुआ सूरदासजी का चित्र बंबई से प्रकाशित होनेवाले 'धर्मयुग' साप्ताहिक में प्रकाशित हुआ था। सन् १५१० में महाप्रभु बल्लभाचार्य की भेंट सूर से हुई थी। महाप्रभु तीन दिन वहाँ रुके थे और अपने साथ सूर को परासौली ले गए, जहाँ सूरदास मृत्युपर्यंत सन् १५८३ तक रहे। सूरदासजी का एक पद यहाँ प्रस्तुत है।

चरन कमल बंदौ हरि राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सबकुछ दरसाइ।
बहिरो सुने मूक पुनि बोले रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार बंदौ तिहि पाइ॥

चौबेजी का कटरा
किनारी बाजार, आगरा-३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०५६२६४५०२८८

स्मरण

आज के दधीचि देवेंद्र स्वरूपजी

● राजकुमार भाटिया

हम प्राय: ऋषि-मुनियों एवं महापुरुषों का उल्लेख करते हैं, परंतु संभवत: यह उल्लेख अतीत में हुए व्यक्तियों के बारे में होता है। क्या यही उल्लेख हम उन व्यक्तियों के बारे में भी करते हैं, जो हमारे जीवनकाल में हुए हों और जिनके निकट संपर्क में हम आए हों? संभवत: हम ऐसा नहीं करते हैं। मेरी मान्यता है कि हमें अपने आसपास के ऋषि-मुनियों एवं महापुरुषों को पहचानना चाहिए। श्री देवेंद्र स्वरूप अग्रवाल ऐसे ऋषि एवं महापुरुष थे, जिनका नैकट्य मुझे प्राप्त हुआ था।

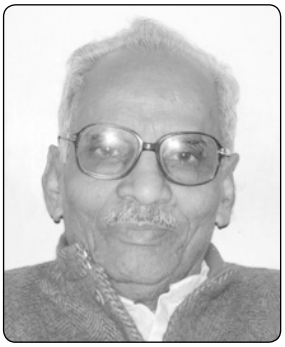

(३०-३-१९२६—१४-१-२०१९)

उनसे मेरा परिचय पाँच दशकों पुराना था और निकटता भी अनेक वर्षों की थी। वे 'सादा जीवन उच्च विचार' के श्रेष्ठतम उदाहरण थे। मूलत: वे उच्च कोटि के विद्वान् थे, परंतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक होने के कारण वे श्रेष्ठ सामाजिक प्राणी भी थे। प्राय: ज्ञानी होने का अहंकार विद्वान् को अच्छा सामाजिक व्यक्ति नहीं बनने देता, पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यप्रणाली में परस्पर मानवीय संबंधों को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। संघ में एक गीत गाया जाता है—'शुद्ध-सात्त्विक प्रेम अपने कार्य का आधार है।' गहन अध्ययन और प्रचुर लेखन देवेंद्रजी के व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू था, पर अधिकाधिक व्यक्तियों से मिलना भी उन्हें अच्छा लगता था, जो शुद्ध-सात्त्विक प्रेम के कारण ही संभव होता था।

देवेंद्रजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निष्ठावान स्वयंसेवक थे। संघ में अनेक लोग अपना पूरा समय संघ-कार्य में लगाते हैं, वे प्रचारक कहलाते हैं। प्रचारक जीवन की अवधि हर व्यक्ति की अलग होती है। देवेंद्रजी भी कुछ वर्ष संघ के प्रचारक बने। संघ के प्रति उनकी निष्ठा भावुकता पर आधारित नहीं थी। संघ को उन्होंने बौद्धिकता एवं तार्किकता के आधार पर अपनाया था। विचारधारा का विषय हो अथवा कार्यपद्धति का या फिर व्यक्तियों का, सबके बारे में वे अपनी बात कहने में कतई संकोच नहीं करते थे।

संघ को अपने इतिहास में अनेक प्रकार के विरोधों का सामना करना पड़ा। सन् १९४८ में तो महात्मा गांधी की हत्या का आरोप भी संघ पर लगा दिया और उसे प्रतिबंधित भी किया गया। १९७५-७७ में आपातकाल के दौरान संघ पर फिर प्रतिबंध लगा। पिछली सदी के उत्तरार्ध में संघ को वामपंथियों और अन्य विरोधियों के तीखे प्रहारों को, विशेषकर बौद्धिक जगत् और मीडिया में लगातार झेलना पड़ा। ऐसी स्थिति में १९९० के आसपास संघ ने 'प्रज्ञाप्रवाह' नाम से एक कार्य प्रारंभ किया, जिसका उद्देश्य था संघ की बौद्धिक जगत् में उपयुक्त प्रस्तुति। संघ के इस निर्णय में देवेंद्रजी की प्रमुख भूमिका थी।

देवेंद्रजी की अध्ययनवृत्ति इतनी प्रबल थी कि उसके कारण उन्होंने हजारों पुस्तकों का संग्रह किया हुआ था और जैसे ही कोई नई पुस्तक उन्हें महत्त्व की लगती थी, वे उसे खरीदने में देरी नहीं करते थे। पुस्तकों के संसार में किसी पुस्तक का दुर्लभ हो जाना भी होता है। देवेंद्रजी के पास ऐसी पुस्तकें सहज मिल जाती थीं।

उनकी अध्ययनवृत्ति का दूसरा पहलू था प्रतिदिन अनेक अखबारों को पढ़ना। वे न केवल अखबार पढ़ते थे, बल्कि उनमें से उपयोगी सामग्री की कतरनें भी सँभालते थे।

देवेंद्रजी की स्मरणशक्ति भी अद्भुत थी। इतिहास का विषय हो अथवा अन्य कोई संदर्भ, ऐसा लगता था कि उन्हें सबकुछ स्मरण रहता था। उनकी उच्च शिक्षा इतिहास विषय में हुई थी। दिल्ली के पी.जी.डी.ए.वी. महाविद्यालय में वे इतिहास के प्राध्यापक रहे थे। मैं भी उसी महाविद्यालय में प्राध्यापक रहा। इतिहासकार के नाते उनकी प्रतिभा का लाभ रामजन्मभूमि आंदोलन को मिला। आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभानेवाली विश्व हिंदू परिषद् को, विशेषकर १९९०-९२ के वर्षों में सरकार और न्यायालयों के समक्ष अयोध्या में रामजन्मभूमि की ऐतिहासिकता के प्रमाण देने पड़े थे। प्रमाणों को जुटाने का परिश्रम जिन इतिहासविदों ने किया, उनमें देवेंद्रजी अग्रणी थे।

देवेंद्रजी की आयु जब लगभग ८० वर्ष हो गई थी, तब हमारे संबंधों में एक भावुक क्षण आया। उस परिपक्व आयु में एक युवावाली ऊर्जा के साथ एक कार्य उन्होंने प्रारंभ किया और मुझे कहा कि 'मरने से पहले मैं कुछ मूल काम करना चाहता हूँ।' और वह कार्य था—भारतीय संविधान और संविधान निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेषण। एक शोधकर्ता की भाँति उन्होंने इस विषय को अपनाया और एक टोली बनाकर इस कार्य में जुट गए। सेंटर फॉर पॉलिसी स्टडीज के निदेशक डॉ. जितेंद्र बजाज और मुझे सम्मिलित रूप से ऐसा लगा कि विषय निचोड़ तक पहुँचे अथवा नहीं, उस विषय पर देवेंद्रजी के विचार अवश्य सुने जाने चाहिए। इसलिए प्रति सप्ताह उनके एक व्याख्यान की योजना हमने बनाई। कुल १७ व्याख्यान आयोजित किए गए और उन पर आधारित एक पुस्तक 'भारतीय संविधान की औपनिवेशिक पृष्ठभूमि' भी सेंटर ने प्रकाशित की।

देवेंद्रजी पद, सम्मान और प्रतिष्ठा के आकांक्षी नहीं थे, इन्हें वे हमेशा ठुकराते रहे। इसे एक विडंबना ही कहेंगे कि उनकी मृत्यु के तुरंत

बाद भारत सरकार द्वारा उन्हें पद्मश्री प्रदान की गई। जीवित रहते हुए वे उसे स्वीकार करते कि नहीं, इसका उत्तर कोई नहीं दे सकता। पी.जी. डी.ए.वी. महाविद्यालय से जब वे सेवानिवृत्त हुए तो उन्होंने विदाई कार्यक्रम भी स्वीकार नहीं किया।

देवेंद्रजी ने किन-किन सामाजिक कार्यों अथवा संस्थाओं में दायित्व लेकर कार्य किया, इसकी पूरी जानकारी मेरे पास नहीं है। पर वे १९६६-६७ के वर्ष में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, दिल्ली के अध्यक्ष बने। वे अधिक समय उस पद पर नहीं रहना चाहते थे, अत: अगले वर्ष ही उन्होंने एक योग्य महिला डॉ. कमला संघी को वह पद सौंप दिया। डॉ. संघी के साथ मुझे संस्था का मंत्री बनाया गया। अपने अध्यक्षकाल में देवेंद्रजी ने दिल्ली के कई भागों में विद्यार्थी परिषद् के स्वाध्याय मंडल प्रारंभ किए, जिनमें वे अध्यक्ष न रहते हुए भी रुचि लेते रहे। 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक के वे अनेक वर्षों तक संपादक रहे। दीनदयाल शोध-संस्थान में दो अलग-अलग कालखंडों में उन्होंने दायित्व निभाया। २०१० में उन्होंने स्वेच्छा से अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद् की सदस्यता ग्रहण की। ऐसा उन्होंने संस्था के महासचिव श्री बालेश्वर अग्रवाल को आदर देने के लिए किया। आपातकाल के दौरान एवं उसके पश्चात् कुछ समय उन्होंने पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज की राष्ट्रीय सेवा योजना की इकाई के प्रमुख का दायित्व सँभाला और उसे दिल्ली विश्वविद्यालय की सर्वश्रेष्ठ इकाई बना दिया।

देवेंद्रजी के कुछ कार्य अधूरे ही रह गए। अपने संघ जीवन के संबंध में उन्होंने बहुत कुछ अपनी डायरियों में लिखा। उनकी इच्छा संघ के बारे में एक शोध-पुस्तक लिखने की थी, जिसे वे नहीं कर पाए। एक समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह रहे श्री एकनाथ रानडे, जिन्होंने कन्याकुमारी में विवेकानंद केंद्र की स्थापना की थी, से देवेंद्रजी

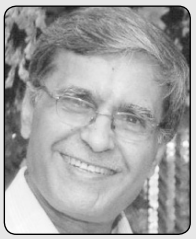

वरिष्ठ उपाध्यक्ष, अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद्, पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, पूर्व अध्यक्ष, नैशनल डेमोक्रेटिक टीचर्स फ्रंट, दिल्ली विश्वविद्यालय, सदस्य, गवर्निंग बॉडी, एस.जी.टी. विश्वविद्यालय, गुरुग्राम, सदस्य, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कोर्ट, संरक्षक, पीपल ऑफ इंडियन ओरिजिन चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री, सदस्य, निदेशक मंडल, हिंदुस्थान समाचार।

की बहुत निकटता थी। देवेंद्रजी से आग्रह किया गया कि एकनाथजी के बारे में पुस्तक लिखें। देवेंद्रजी ने तत्त्वत: इस कार्य को स्वीकार भी किया, पर वे इसे पूरा नहीं कर पाए।

जीवन के अंतिम वर्षों में देवेंद्रजी के लिए दिल्ली में रह पाना कठिन हो गया। उनका मन दिल्ली में रहने को करता था, क्योंकि दिल्ली में लोगों से मिलना-जुलना उन्हें प्रिय था, परंतु पारिवारिक परिस्थिति इसके लिए अनुकूल नहीं थी। दिल्ली में मयूर विहार में जिस बेटे के साथ वे रहते थे, उसका फ्लैट तीसरी मंजिल पर था। लिफ्ट न होने के कारण देवेंद्रजी के लिए वहाँ रहना कठिन होता गया। फिर उनके बेटे को नौकरी के कारण दिल्ली छोड़नी पड़ गई। देवेंद्रजी दिल्ली से ८० किलोमीटर दूर भिवाड़ी में अपने दूसरे बेटे के साथ रहने लगे।

सामाजिकता का कर्तव्य देवेंद्रजी ने मृत्यु के पश्चात् भी निभाया। चिकित्सा जगत् के उपयोग के लिए उन्होंने जीवित रहते हुए देहदान का संकल्प लिया था, जिसे उनके परिवारवालों ने निभाया।

ऐसे महामानव को मेरा शत-शत प्रणाम!

सी-२ अशोक विहार
फेज-१, दिल्ली-११००५२

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक **साहित्य अमृत** के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 1110734393 IFSC-CBIN 0280297 में **साहित्य अमृत** के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर **साहित्य अमृत** का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

जनता की गवाहियाँ

● मे. जनरल सूरज भाटिया

१३ अप्रैल, १९१९ में जलियाँवाला बाग में हुआ नर-संहार इतिहास का अंग है। उस दिन हजारों निःशस्त्र भारतीयों का नृशंस रक्तपात हुआ। उसके बाद मार्शल लॉ आरोपित हुआ। यदि जलियाँवाला बाग कांड फाँसी के सदृश था तो उसके बाद का अध्याय कालापानी से कम नहीं था। वह कुकांड भारत के आधुनिक इतिहास का एक ऐसा प्रकरण है, जिसे सरलता से भुलाया नहीं जा सकता, भूलना भी नहीं चाहिए। अंग्रेजों ने इस नर-संहार की घटना पर परदा डालने के जी-तोड़ प्रयत्न किए। कई तथ्यों का पता तो स्वतंत्रता के दशकों पश्चात् लगा।

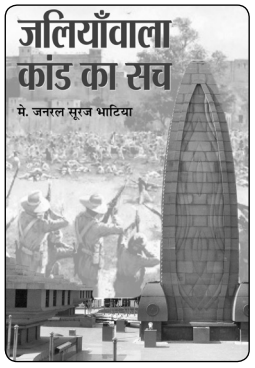

हंटर कमीशन ने सिर्फ सरकारी अफसरों और मुलाजिमों के बयान लिये थे। इसमें प्रशासन के उच्चायुक्त मुख्य थे। इसके अतिरिक्त सैनिक अफसरों तथा पुलिस अफसरों, निचले दरजे के पुलिसकर्मियों तथा खुफिया पुलिस के गिने-चुने लोगों की गवाहियाँ शामिल थीं। हंटर कमीशन ने जनसाधारण से एक भी बयान दर्ज नहीं किया। इस तथ्य से उनकी निरपेक्षता के अनुपात का अनुमान लगाया जा सकता है। यदि कांग्रेस न होती तो हंटर कमीशन भी नहीं बना होता। हंटर कमीशन कांग्रेस के बार-बार जोर देने के कारण और भारत के अंग्रेजी प्रशासन के कड़े विरोध के बावजूद गठित करने की बाध्यता में ही लंदन की सरकार ने कुछ राहत महसूस की।

यह अचानक क्या हो गया था सरकार के सर्वोत्तम तथा लाड़ले सूबे पंजाब को, जिसने सन् १८५७ से अभी तक अंग्रेज सरकार की बहाली के लिए बेजोड़ योगदान दिया था? जिसके लोग आड़े वक्त हुकूमत के काम आते रहे थे? जिसके लोगों ने १८५७ के बाद हिंदुस्तान को दुबारा विजित करने में गोरी सरकार की भरपूर तथा निर्णायक सहायता की थी? जिन्होंने महायुद्ध के दौरान देश के सभी प्रांतों में जनसंख्या के अनुपात से कहीं ज्यादा रंगरूट देकर अंग्रेजों को चिंतामुक्त किया था? जिन्होंने लाम-कोष में अपने जेवर भी गिरवी रखकर पैसा दिया था? जिन्होंने करों की अदायगी से सरकार के खजाने भरे थे? जिन्होंने कड़े श्रम से धरती में गेहूँ-चावल उपजा पूरे देश का पेट पालने में योगदान किया था? यही अनाज विदेशों की क्षुधापूर्ति के लिए भी निर्यात किया जा रहा था। क्या हो गया था सरकार के वफादार, राजभक्त और लाड़ले पंजाब को?

अंग्रेज सरकार का मत था कि इस कायाकल्प के लिए कांग्रेस का 'घिनौना नेतृत्व' और मुख्यतः उसके वरिष्ठ, मगर सिरफिरे नेता 'गांधी' ही जिम्मेवार हैं। भोली-भाली और अनपढ़ जनता के मस्तिष्क में सत्याग्रह की 'विषबेल' वही बो रहे हैं; 'खिलाफत' में मुसलमानों का साथ देकर हिंदू-मुसलमानों के अस्थायी सहयोग व भाईचारे के कृत्रिम ढकोसले के मुरदा तन में हवा भर रहे हैं।

: दो :

९ अप्रैल, १९१९। अमृतसर, लाहौर, पंजाब। हिंदू तथा मुसलमानों ने अभूतपूर्व एकता का प्रदर्शन किया। विशेषकर रामनवमी के त्योहार पर। एक ही जुलूस में कंधे-से-कंधा भिड़ाकर, भाग लेकर। इससे अंग्रेज हुक्मरान के होश उड़ गए; पर साथ ही उन्हें लगा कि इस एकता के मूल में अवश्य कोई षड्यंत्र छिपा है!

जलियाँवाला बाग के नृशंस हत्याकांड के उपरांत अंग्रेजी सरकार ने मगरमच्छी आँसू बहाना भी मुनासिब नहीं समझा। अचंभे की बात है कि १३ अप्रैल के हत्याकांड के उपरांत उन्हें ऐसा नहीं लगा कि उन्होंने कोई गलती की हो।

अंग्रेज सरकार ने पश्चात्ताप करने अथवा नरमी दिखलाने की अपेक्षा १३ अप्रैल के उपरांत अपने रवैये में लगातार बढ़ती निर्दयता तथा बर्बरता का प्रदर्शन ही किया। उन्होंने उन सभी लोगों की चुन-चुनकर 'खबर लेना' प्रारंभ किया, जिन्होंने सत्याग्रह आंदोलन के प्रति अपनी सहानुभूति दिखलाई थी या हड़ताल में भाग लेने के लिए लोगों को उत्प्रेरित किया था।

पंजाब के अधिकतर प्रमुख नगरों में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया था। नागरिक प्रशासन अनुभवी प्रशासकों के हाथों से निकालकर सैनिकों के अधीन कर दिया गया। यह सब पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओ' डायर की निजी सिफारिश तथा प्रबल दबाव के कारण किया गया। बाद में वाइसराय तक को कबूल करना पड़ा कि पंजाब में हुए उपद्रवों की सही वास्तविकता से उन्हें कई महीनों तक अनभिज्ञ रखा गया था।

दावा यह पेश किया गया कि पंजाब में 'बगावत' के हालात थे। इसीलिए वहाँ मार्शल लॉ लगाना जरूरी हो गया था। साथ-ही-साथ अफगानिस्तान सीमा पर बढ़ते तनाव तथा युद्ध के हालात पैदा हो रहे थे। ओ' डायर साहब ने केंद्रीय सरकार को यही जतलाया। वे यह भूल गए कि इंग्लैंड जैसी विख्यात दिग्-दिगंती शक्ति, जिसने जर्मनी को हार की 'धूल चटवाई', को अब अफगानिस्तान जैसी 'क्षुद्र मक्खी' से आतंकित होने का खतरा कैसे पैदा हो गया है?

जगह-जगह अंग्रेज हुक्मरान रोज स्वयं आ धमकते। अमृतसर में

जनरल डायर और लाहौर में ओ' डायर साहब अन्य शहरों में वरिष्ठ सैनिक अफसर तथा नए-नए मनमरजी के काम करवाते, मनपसंद कानून चलवाते, जिनका मुख्य ध्येय जनता को दंडित, प्रताड़ित तथा अपमानित करना होता। 'अच्छा, तुमने हड़ताल करने की जुर्रत दिखाई!' 'सत्याग्रह की शपथ खाई!' 'गांधी के भाषण सुने!' 'उनके मत से सहानुभूति प्रकट की!' 'उनकी कांग्रेस का समर्थन किया।' आओ, तुम्हें सबक सिखाते हैं! ऐसा कि तुम्हारी सात पीढ़ियाँ भी याद रखें! तुम्हारे सगे-संबंधी और देखने-जाननेवाले-सभी आँखें फाड़कर देखें कि सरकार का विरोध करनेवालों की क्या दुर्दशा होती है! उनकी कैसे मिट्टी पलीद की जाती है! अब रोते-कराहते क्यों हो? अब जाओ न अपने आका गांधी के पास! माँगो उसी से मदद!

प्रतिशोध तथा सबक सिखाने की भावना उबाल पर थी।

: तीन :

वकील समुदाय को सार्वजनिक रूप से कुलियों की तरह काम करने के लिए विवश किया गया। उनसे सरेआम, भरी सभा में कुरसियाँ-मेज उठवाई गईं। वकीलों के द्वारा ही शहर की मुख्य इमारतों पर मार्शल लॉ के पोस्टर चिपकवाए गए, ताकि लोग देख लें कि उनके 'अपने' वकीलों की असली औकात क्या है। उन्हें नाम की जगह 'नंबर' दे डाले गए। हर बार उनके नंबर पुकारे जाते और स्कूल के बच्चों की तरह उनकी हाजिरी लगती। उन्हें 'तिकड़ी' का मुआयना करवाया गया, जिसे देखते ही लोगों के हृदय भय तथा आतंक से काँप उठें। इस प्रकार की 'कई तिकड़ियाँ' सार्वजनिक स्थलों व चौराहों पर खड़ी की गईं। इनमें ऊपर से जुड़ी खड़ी दो बल्लियों के बीच एक हथकड़ी लटकती थी। अभियुक्त के हाथ इन्हीं हथकड़ियों से बाँध दिए जाते थे और कपड़े उतारकर उसकी नंगी पीठ पर कोड़े मारे जाते थे। वकील समुदाय को इस प्रकार के कई हृदय-विदारक दृश्य देखने के लिए विवश किया गया।

वकीलों को लेफ्टिनेंट न्यूमैन नामक नौसिखिया अफसर के 'अधीन' कर दिया गया। वह स्वभाव से जल्लाद जैसा था। संभ्रांत तथा शिक्षित वर्ग के लोगों को गाली-गलौज देने और उन्हें जलील करने में उसे मजा आता था। वह वकीलों को गालियाँ देता और कोड़ों से मारने, यहाँ तक कि गोलियों से उड़ा डालने की धमकियाँ देता; उनकी सैनिक कवायद करवाता—इस बहाने से कि उन्हें सलाम करने की तालीम देकर अनुशासित किया जा रहा है।

: चार :

लोगों की गवाहियों से यह प्रत्यक्ष हो गया कि १० अप्रैल को दोपहर तक अमृतसर में तब तक किसी भी सरकारी इमारत में आग नहीं लगाई गई थी, जब तक प्रशासन द्वारा भीड़ पर अवांछित फायर खोलकर, उनमें से कई लोगों को ढेर कर भीड़ को उत्तेजित नहीं किया गया। लोगों के मत में डिप्टी कमिश्नर ने अपना काम शालीनता, होशियारी तथा दिलेरी के 'अभाव से' किया। संगीन हालात में लोगों की भीड़ से कैसे पेश आया जाता है, इसके बारे में वह नितांत अज्ञानी तथा नौसिखिया सिद्ध हुआ। उसने जो कुछ किया, हड़बड़ाकर और उत्तेजना में घबराकर किया, जिससे परिस्थिति सुधरने की बजाय और बिगड़ती ही चली गई।

पंजाब के लोगों ने ३० मार्च को व्यापक हड़ताल की। ६ अप्रैल को दुबारा हड़ताल करने का उनका इरादा नहीं था। मगर सरकार ने पंजाब के प्रमुख नेताओं डॉ. किचलू तथा डॉ. सत्यपाल के साथ जो दुर्व्यवहार किया, उसी ने लोगों को ६ अप्रैल को भी हड़ताल करने के लिए उकसाया। ९ अप्रैल को हिंदू-मुसलमानों की एकता का प्रदर्शन देखकर अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर के हाथ-पाँव ढीले पड़ गए। वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठा और स्थिति का निरपेक्ष अवलोकन एवं उचित आकलन करने में सर्वथा असमर्थ हो गया। घबराकर उसने स्थिति को अत्यधिक संवेदनात्मक प्रदर्शित करनेवाले पत्र लिखकर अपने उच्चाधिकारियों को स्थिति का अतिशयोक्तिपूर्ण जायजा दिया और इस प्रकार उचित निर्णय लेने की राह में गंभीर बाधा बना।

इसी प्रकार पंजाब की सरकार तथा केंद्रीय सरकार ने गांधीजी के आंदोलन को सही ढंग से देखने में अपनी असमर्थता प्रकट की। 'हड़ताल', 'सत्याग्रह' सरकार के कानों में पड़नेवाले इन नए शब्दों का सटीक अनुवाद तथा सूझ सरकार के पल्ले नहीं पड़ी। इसके मूल में वही ओ' डायर किस्म की सोच थी, जो किसी भी प्रकार के राजनीतिक आंदोलन अथवा स्वाधिकार माँग को 'बगावत के घेरे' में ला खड़ा करती थी। इन लोगों ने गांधीजी को पढ़ने-समझने में भारी भूल की। सरकार उन्हें एक 'चंट-चालाक राजनीतिज्ञ' के लिबास में देखने की आदी हो गई थी। उनके पंजाब तथा दिल्ली प्रवेश पर रोक लगा दी गई।

: पाँच :

जैसी भूलें पंजाब सरकार ने डॉ. किचलू व डॉ. सत्यपाल को लेकर कीं, ठीक वैसी ही भूलें केंद्रीय सरकार ने शायद ओ' डायर की हठधर्मिता के कारण गांधीजी के बारे में कीं।

सरकार कदम-कदम पर नहले-पर-दहला चलाने का दस्तूर निभा रही थी।

वह रॉलेट ऐक्ट को लागू करने पर तुली थी, भले ही हिंदुस्तानी जनता कितना ही विरोध क्यों न करें। जब लोग विचलित तथा उत्तेजित हुए तो उन्हें आँखें दिखलाकर डराने-धमकाने की नीति अपनाई गई। निश्चय ही हुक्मरान सोचते थे कि लोगों पर आतंक जमाने की नीति अंततः कारगर होगी।

: छह :

जलियाँवाला बाग में एकत्र अधिकतर लोग सभाबंदी की किसी भी घोषणा से अनभिज्ञ थे। क्या यह ऐलान मनगढ़ंत ढंग से किया गया था? क्या इसका अक्षरशः कथानक बाद में रचा गया—हंटर कमेटी से थोड़ा पहले? क्या यह ऐलान फुसफुसाकर किया गया, जिससे साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे? त्योहार के दिन इस प्रकार के ऐलान करने के पीछे आखिर हुक्मरान तबके का इरादा क्या था? शहर में बिजली-पानी आदि बंद रखकर जान-बूझकर लोगों को यों भी दंडित किया जा रहा था। सरकारी कारवाइयों के पीछे बदले की यह भावना प्रमुख लगती थी कि हम ईंट का जवाब पत्थर से देंगे, वरना इन लोगों की क्या मजाल कि ये जर्मनी जैसे राष्ट्र को हरानेवाली ताकत के विरोध में खड़ा होने की धृष्टता करें? यदि करें तो शीघ्रातिशीघ्र उन्हें कैसे अपनी औकात से परिचित करा डाला जाए? सा.अ.

(मे. जनरल सूरज भाटिया की पुस्तक 'जलियाँवाला कांड का सच' से साभार)

कहानी

जड़ों की ओर

● चितरंजन भारती

''उस किताब को तुम देख रही हो!'' देवजीत देवबर्मन उससे मुसकराकर बोला, ''उसने मेरा जीवन बदल दिया था।''

''वह कैसे?'' माधवी उत्सुकता से भरकर बोली, ''जब वह किताब तुम्हारी थी, तो तुमने उसे म्यूजियम में क्यों दे दिया? और उस किताब ने कैसे तुम्हारा जीवन बदल दिया?''

''यह भी एक कहानी है या संयोग, जैसा कुछ कह लो। मुझे वह किताब मेरी माँ के एक पुराने संदूक में पड़ी मिली थी। उनका देहांत मेरे छुटपन में ही हो गया था। वे पढ़ी-लिखी तो नहीं थीं, मगर उन्हें लिखने-पढ़ने का बेहद शौक था। उन्होंने स्वयं ही देख-सुनकर लिखना-पढ़ना सीख लिया था। वह किताब त्रिपुरा की प्राचीन काक-बरक भाषा में और बँगला लिपि में लिखी गई है। मुझे मेरी माँ ने यह भाषा सिखलाई थी। इसलिए मैं स्थानीय काकबरक भाषा समझता-बोलता ही नहीं, बल्कि पढ़ भी लेता हूँ। तुम्हें तो पता ही है कि हम त्रिपुरा राजघराने से ताल्लुक रखते थे। मगर राजतंत्र खत्म होते ही सारा वैभव, सारा ऐश्वर्य खत्म हो गया था और हम सड़क पर आ गए थे।''

''इसके बाद क्या हुआ?''

''छोड़ो ये सब बातें।'' वह उपेक्षा में भरकर बोला, ''यह सब एक दुःस्वप्न की तरह था। कल सुबह हम त्रिपुरा का वह भव्य राजमहल देखने जाएँगे, जो अब यहीं का विधान सभा भवन है।''

माधवी ने स्पष्ट देखा कि अतीत की बातें करने पर देवजीत के चेहरे पर विषाद की छाया मँडराने लगी है, तो उसने बात को वहीं छोड़ उसके साथ वापस लौट चली। आज त्रिपुरा के अगरतला स्थित स्टेट म्यूजियम को देखकर उसे यहाँ के बारे में बहुत सारी जानकारी मिली थी। मगर देवजीत ने उसे जो बताया था, उसे जानकर वे आश्चर्यचकित थी। किताबें महत्त्वपूर्ण होती हैं। तब और, जब वे बहुत पुरानी और पांडुलिपि रूप में हों। तब उनका ऐतिहासिक महत्त्व बढ़ जाता है। शीशे की आलमारी में बंद उस पुस्तक को वह छूना चाहती थी, जिसे देवजीत के किन्हीं पुरखे ने लिखा होगा और जो उसकी माँ के पास सुरक्षित रखी थी। एक तरह से अच्छा ही हुआ कि यह पुस्तक म्यूजियम में आ गई। अन्यथा वह उसके घर में पड़ी-पड़ी यों ही बरबाद हो जाती। शायद यही भाग्य है, जो समय के थपेड़े खाकर स्वर्ण को मिट्टी में और मिट्टी को स्वर्ण में बदल देता है। यह समय ही तो है, जो राजा को रंक में और रंक को राजा में बदल देता है।

देवजीत उसका पति है। और उसी के आग्रह पर पूरे पाँच साल बाद वह इधर अगरतला आया है। जब भी वह उसे इधर आने को कहती, वह यात्रा संबंधी बहाने बनाकर टाल जाता था। कहता कि पहले दिल्ली से गुवाहाटी जाओ। वहाँ से फिर छोटी लाइनवाली ट्रेन पकड़कर चौबीस घंटे की यात्रा कर त्रिपुरा के एक छोटे से स्टेशन कुमारघाट पहुँचो। और फिर वहाँ से रातभर का बस सफर करके ही अगरतला पहुँचा जा सकता है। लगभग एक सप्ताह तो लग ही जाएगा पहुँचने में। तिसपर रास्ते में सैकड़ों सुरंगें मिलती हैं। कब कहीं लैंड स्लाइडिंग होकर पहाड़ का पत्थर-मिट्टी धसक जाए और रास्ता ब्लॉक कर दे, पता नहीं होता। परेशानी तब और बढ़ जाती है, जब चलती ट्रेन बीच रास्ते कहीं जंगल में रुक जाती है। न खाने का और न पीने का ठिकाना। क्या करोगी उधर जाकर?

सुपरिचित कथाकार। अब तक 'किस मोड़ तक' (कहानी-संग्रह); 'और आम जनता के लिए' (लघुकथा-संग्रह) प्रकाशित। कई रचनाएँ पुरस्कृत एवं प्रशंसित। साहित्यश्री एवं आचार्य की उपाधि से सम्मानित। संप्रति हिंदुस्तान पेपर कॉ.लि. की इकाई कछाड़ पेपर मिल में कार्यरत।

एक बार तो उसने यहाँ तक कहा कि वह हवाई जहाज से ही चले। हर स्त्री की हसरत होती है कि एक दिन वह ससुराल जाएगी। उसका जन्म-कर्म सब दिल्ली में ही हुआ था। और शादी भी हड़बड़ी में कोर्ट मैरिज के रूप में दिल्ली में ही हुई थी। मगर फिर भी वह अपना पति-गृह देखना चाहती है। मगर वह फ्लैट और गाड़ी के ई.एम.आई. ऋणों के भुगतान का बहाना कर टाल देता था। इस बार जो उसने सुना कि अगरतला के लिए दिल्ली से राजधानी एक्सप्रेस खुल रही है, तो वह अपनी उत्सुकता रोक नहीं पाई थी और अगरतला जाने के लिए जिद पकड़ बैठी थी। हार मानकर देवजीत ने उसे बताया कि अप्रैल में उसके गाँव में 'गरिया त्योहार' के समय जाना बेहतर होगा, तो वही राजधानी एक्सप्रेस की दो टिकटें खरीदकर ले आई थी। अप्रैल में छुट्टी मिलना भी आसान था। हालाँकि उसके विद्यालय में जहाँ वह शिक्षिका थी, नया सत्र आरंभ हो जाता था। मगर प्रिंसिपल ने उसे बीस दिन की छुट्टी मंजूर कर दी थी। और देवजीत को भी उसके कार्यालय से छुट्टी मिलने में असुविधा न रही थी।

यहाँ उसने देवजीत के लंबे-चौड़े परिवार को देखा, जो पुराने अगरतला के एक विशाल परिसर में बने अनेक घरों में बसे हुए थे। यह इलाका दरअसल एक गाँव ही था, जो विकसित होते अगरतला शहर के जद में आ गया था। कहने के लिए देवजीत इस घर का एक हिस्सा था। मगर जैसे उसने ही स्वेच्छा से यहाँ का अपना हक और हिस्सा सबकुछ छोड़ रखा था। अभी वे इस घर के मेहमान समान थे। उसका एक बड़ा भाई, जिनकी शहर में हार्डवेयर की बहुत बड़ी दुकान थी, उसी के घर

में वे ठहरे थे।

''पूरे पाँच साल बाद आ रहे हो तुम। अपनी जन्मभूमि को भुला देना कोई अच्छी बात तो नहीं।'' उसके भाई बोले थे, ''यहाँ नहीं रहना है, तो मत रहो। मगर यहाँ आते-जाते रहने में क्या बुराई है!''

''ठीक है, अब आता-जाता रहूँगा।'' देवजीत ने संक्षिप्त सा जवाब दिया था।

यह इत्तफाक ही था कि यहाँ पहुँचने के अगले दिन ही वह म्यूजियम देखने आ गए थे। कारण कि वह नजदीक में था और माधवी की इतिहास में रुचि थी। म्यूजियम घूमने के बाद वह शहर का एक चक्कर लगाकर घर वापस लौटे थे। घर आकर खाना खाकर वह सोने चला गया। मगर नींद थी कि आ नहीं रही थी। बार-बार वह महल उसके सामने कभी अपनी वर्तमान की भव्यता के साथ, जो अभी त्रिपुरा का शानदार विधानसभा भवन है, साकार हो जाता, तो कभी अतीत के पुराने रूप में सामने आ जाता था, जब उसने उसे वीरान और खँडहर समान उजाड़ रूप में तीसेक साल पहले देखा था। माधवी को अपने अतीत के बारे में क्या बताए वह! क्या सोचेगी वह कि राजघराने का एक सदस्य क्या इस रूप में भी जीवन देख सकता है!

राजघराना तो बाद में बिखरा। उसके पहले ही उसका परिवार सड़क पर आ चुका था, जब सत्ता के खेल में उसके दादा को महल से ही बेदखल कर दिया गया था। उन्हें संगीत में रुचि थी, सो उसी सिलसिले में उनका कलकत्ता और मुंबई भी आना-जाना लगा रहता था। इसके अलावा वे राजतंत्र के बजाय लोकतंत्र पर यकीन करने लगे थे। दरअसल उन दिनों देशभर में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जन-आंदोलनों की धूम थी। कलकत्ता और बंगाल जैसे आंदोलनों के केंद्र में थे। जाहिर है बंगाल के बगल में बसा त्रिपुरा इससे कैसे अछूता रहता। उधर त्रिपुरा राजतंत्र ब्रिटिश सरकार के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आंदोलनों को कुचलने में लगा था। ऐसे में राजपरिवार का ही एक सदस्य आंदोलनकारियों के प्रति सहानुभूति रखे और उन्हें सहयोग करे, यह राजतंत्र को क्योंकर बरदाश्त होता। इसलिए उन्हें महल से निष्कासित कर दिया गया था। बल्कि वह खुद ही राजमहल से निकल गए थे। जब विचार ही परस्पर विरोधी हों, तो कोई साथ रह भी कैसे सकता है। वैसे भी उन्होंने इधर की शासन व्यवस्था एवं प्रभुत्व पाने की आकांक्षा आदि पर कभी ध्यान भी नहीं दिया था। जबकि इधर भी सभी अपनी राजनीति चमकाने में लगे थे और स्वाधीनता पूर्व से ही सत्ता में अपनी स्थिति मजबूत कर रहे थे। वैसे वे न तो राजनीति में और न ही गीत-संगीत की दुनिया में ही खास कुछ कर पाए थे; महज एक संगीत शिक्षक भर बनकर ऐसे ही चल बसे थे।

उधर सत्ता से सीधे ताल्लुक रखनेवाले लोग विधायक और सांसद भी बनते रहे थे। अब आमदनी न हो, तो महल किस काम का। उस समय त्रिपुरा में काफी अफरा-तफरी मची थी। पूर्वी पाकिस्तान, जो अब बांग्लादेश के नाम से जाना जाता है, से भाग-भागकर हिंदू बंगाली लोग इधर आ-आकर बसते जा रहे थे और कोई भी छोटा-मोटा काम-धाम या व्यापार कर रहे थे। यही नहीं, वे स्वयं को स्थानीय समाज में खपाने और अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए वैवाहिक संबंध भी कायम कर रहे थे। ऐसी विकट स्थिति में सभी को कितनी जद्दोजहद करनी पड़ती होगी। चूँकि वे तिरस्कृत, बहिष्कृत और पलायित लोग थे। वे मेहनत नहीं करते तो क्या करते। वैसे भी उनकी पढ़ाई-लिखाई भी अच्छी होती थी। मगर वे सिर्फ कहने के लिए राजघराने के लोग थे। उनके पास न शिक्षा थी और न ही समझ।

एक समय ऐसा था, जब महल के कारिंदे सैकड़ों गाँव की मालगुजारी लाते थे। फिर हजारों बीघा खेती की जमीन की उपज थी। सो धन-संपत्ति की कमी न थी। मगर वह सब अचानक बंद हो गया था। जिनको खेती के लिए जमीन दी गई थी, अब उन्होंने उसपर अपना कब्जा जमाकर मालिकाना हक ले लिया था। मालगुजारी वसूल करने का काम अब सरकारी अधिकारी करने लगे थे। ऐसे में अर्थाभाव होना स्वाभाविक बात थी।

उसके बाबूजी इकलौते थे। अपनी विकट परिस्थिति के बीच उन्होंने अगरतला के मार्केट में एक किराने की दुकान खोलकर अपने परिवार को सँभाला था। वह अपने दस भाई-बहनों में सबसे छोटा था, इसलिए वह अपनी माँ के ज्यादा समीप रहा था।

जब वह दसेक साल का रहा होगा, तभी उसकी माँ का देहांत हो गया था। तबतक उनके पास काफी जेवरात थे। मगर कुछ घर को सँभालने में तो कुछ जेवरात दुकान खोलने में बिक चुके थे। फिर भी उनके पास कुछ जेवरात और कीमती कपड़े अभी भी थे, जो उनके मरते ही घर के अन्य सदस्यों द्वारा चुपचाप हथिया लिये गए थे। अब उनके कमरे में बस कुछ टूटे संदूक थे, जिनमें कुछ फटे-पुराने कपड़े और सामान थे, जिनकी कोई कीमत न थी। अब बस संदूक में कुछ उनकी यादें थीं, जिसे वह कभी-कभार खोलकर देख लिया करता था। एक दिन वह ऐसे ही एक संदूक को देख-सहेज रहा था कि उसे वह किताब मिली थी। बँगला लिपि में काकबराक भाषा में लिखी थी वह किताब। उसने उसी दम उस किताब को पढ़ना शुरू किया, तो उसे रोमांच हो आया। वह उसके आदिम धर्म, ज्योतिष और तंत्र-मंत्र के संबंध में हस्तलिखित किताब थी। इसलिए उसके पल्ले कुछ पड़ा नहीं। उस किताब के रहस्यों और ज्ञान को समझने लायक उम्र भी तो नहीं थी उसकी। फिर भी उसी से उसे महल के एक रहस्य के बारे में पता चला तो वह एक दिन उधर ही महल की ओर चला आया था।

इस समय वह महल खाली था और खँडहर में तब्दील हो चुका था। चारों तरफ वीरानी थी और उसके इर्द-गिर्द झाड़-झंखाड़ फैले हुए थे, सो उधर कौन जाता। लोमड़ियों का एक झुंड उसके देखते इधर-उधर भागने लगा था। कुछ छोटे-मोटे जीव-जंतु आदि भी दिखे, जिसकी उसे परवाह न थी। उस वक्त तक अगरतला इतना सघन नहीं था और वह कई बार अकेले ही पहाड़ों और बीहड़ वनों में घूम चुका था। वह किताब में विर्निदिष्ट दिशा-निर्देशों के अनुरूप महल के समीपवर्ती एक मंदिर के पास के एक सूखे कुएँ के पास पहुँच गया। उसमें घुप्प अँधेरा था। उस दिन तो वह वहाँ से वापस चला आया।

अगले दिन माँ के बक्से को उसने फिर से टटोला, तो उसमें कपड़े का एक बटुआ मिला। उसमें कुछ रुपए थे। कुछ रुपए उसने भाइयों से

माँगे। और फिर बाजार जाकर एक टॉर्च खरीद लाया। इसके बाद उसने रस्सी, मोमबत्ती, माचिस, चाकू, डंडा आदि का जुगाड़ किया और अगले दिन फिर वहीं पहुँच गया।

उसने रस्सियों में अनेक गाँठें लगाईं। फिर उसे एक पेड़ से बाँध कुएँ में लटका दिया। उसे पूरी उम्मीद थी कि उसमें कोई खजाना होगा, जिसे पाने के बाद उसका जीवन बदल सकता है। धड़कते हृदय के साथ वह अपने पैर के अँगूठे और उँगलियों को गाँठों में फँसाते हुए रस्सी के सहारे धीरे-धीरे कुएँ में उतरने लगा। चूँकि धूप थी, इसलिए इस समय सब स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

कुएँ में दलदल और झाड़ियाँ थीं। शुक्र था कि वह दलदल भी हल्का ही था, जो सिर्फ पैर में चिपकने लायक मिट्टी के रूप में था। उसने कुएँ के चारों तरफ नजर दौड़ाई तो देखा कि कुएँ के एक दीवार की तरफ लोहे का एक छोटा सा दरवाजा है, जिसमें एक बड़ा सा ताला लगा है। उसने ताले को हाथ लगाकर झटका दिया तो वह खुल गया।

धड़कते हृदय के साथ उसने ताले को अलग कर दरवाजे को खोल दिया। आशा के अनुरूप उसमें एक सुरंग थी। वह सुरंग में घुसा। घुप्प अँधेरे के बीच उसने टॉर्च जलाई तो उसे आगे का रास्ता दिखाई दिया। वह उसमें घुसा और फिर उसमें आगे बढ़ता चला गया। पूरा रास्ता छोटे बड़े-पत्थरों और कीचड़-पानी से भरा था। उसके कपड़े गीले और गंदे हो गए थे। पाँव का चप्पल तो कब का टूटकर उससे अलग हो चुका था और वह नंगे पाँव ही आगे बढ़ रहा था। घंटों चलने के बाद उसे पुन: उसी प्रकार का एक लोहे का दरवाजा दिखाई दिया, जिसमें उसी प्रकार का ताला लटका था। उसने उसे झटके से खींचा तो वह खुलकर उसके हाथ में आ गया।

सुरंग के दूसरे छोर पर छोटे-बड़े पत्थरों से भरा हुआ एक बड़ा सा गड्ढा था। उसने पत्थरों को अपने हाथ से ही हटाना शुरू कर दिया। थोड़ी देर बाद कुछ रास्ता बनाने के बाद वह जब बाहर आया तो उसके सामने हाओरा नदी वह रही थी। उसने अपने साथ लाए सामान को वहीं एक जगह छिपाकर रख दिया और नदी की तरफ बढ़ चला।

मगर वह एक जगह बदहवास हो नदी के तट पर बेहोश होकर गिर पड़ा था। थकान थी और शायद निराशा भी कि कुछ हाथ लगा नहीं, इसका अहसास भी था। वहीं एक मछुआरा उसे उठाकर अपनी झोंपड़ी में ले आया और उसे खाना खिलाकर अपने पास सुला दिया। उन दिनों कुछ भी पूछताछ करने या खोज-खबर रखने का रिवाज भी नहीं था। वैसे भी गरीबों का हिसाब-किताब रखता ही कौन है।

अगले दिन पुन: किसी अज्ञात आशा में वह फिर उस सुरंग में घुसा कि शायद कहीं कुछ दिखे और कुछ मिल जाए। हालाँकि अब उसे यह भय भी लगने लगा था कि कहीं उस सुरंग में कुछ खतरनाक जीव-जंतु या अज्ञात भूत-प्रेत वगैरह मिल गए तो क्या होगा। सबसे पहले उसने अपने साथ लाए सामान को ढूँढ़ना शुरू किया। वह उसे एक जगह मिला। मगर माचिस सील गई थी और टॉर्च भी जल नहीं रहा था। बड़ी मुश्किल से ठोक-बजाकर उसने टॉर्च को जलने लायक बनाया और पुन: उसी रास्ते पर चल पड़ा।

अब उसे भय यह भी होने लगा कि कहीं टॉर्च की बैटरी न खत्म हो जाए। इसलिए वह बीच-बीच में टॉर्च को जलाता-बुझाता रहा। वैसे भी आँखें अँधेरे में देखने में अभ्यस्त हो जाती हैं। सुरंग में उसे कुछ तो मिला नहीं। मगर रास्ते में उसे कुछ पुराने सिक्के मिले, जो उसने जेब में भर लिए थे। जैसे वह रस्सी के सहारे नीचे उतरा था, उसी प्रकार वह उसके बाहर आ गया।

इसके थोड़े दिन बाद ही उसने सुना कि वह महल किसी विशेष काम के लिए सरकार द्वारा उपयोग में लाया जानेवाला है और वहाँ सख्त पहरा बैठा दिया गया है।

उसके एक मामा उसके घर के पास वहीं रहते थे और पुरोहित का काम किया करते थे। वे थे तो निर्धन मगर ज्योतिष और तंत्र-मंत्र में भी विशेष रुचि रखते थे। उसने उन्हें वह किताब और सिक्के दिखाए, तो उनकी आँखें चमक उठीं। वे सिक्के उन दुर्लभ सिक्कों में से थे, जिनसे त्रिपुरा राजघराने के इतिहास के संबंध में नवीन जानकारी मिलनी थी और वे सोने के सिक्कों से भी ज्यादा कीमती थे।

वह उसे साथ लेकर रक स्थानीय विधायक के पास गए। उसने उसे शाबाशी दी।

कुछ दिनों बाद उसने सुना कि उन सिक्कों को सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया गया है। बाद में उसे पता चला कि उस विधायक ने उन सिक्कों और किताब को अपना बताकर सरकार से काफी बड़ी रकम ऐंठ ली थी। उस विधायक ने उसपर यही कृपा की कि उनकी अनुशंसा पर उसका नामांकन एक सरकारी विद्यालय में हो गया था और वजीफा भी मिलने लगा था। इससे उसके घरवाले निश्चिंत थे कि अब उसका जंगलों-पहाड़ों में घूमना-भटकना बंद हो जाएगा और उसे भी लगा कि वह अच्छी तरह पढ़-लिखकर अपनी माँ के सपनों को पूरा कर सकेगा। उधर उस किताब का पहले बँगला में और बाद में अंग्रेजी में अनुवाद छपा, तो इसकी धूम मच गई थी। बाद में उसने सुना कि वह किताब और सिक्के म्यूजियम में सुरक्षित रख दिए गए हैं।

माँ के देहांत को कुछ ही समय हुए थे कि पिता ने अपनी वृद्धावस्था और लंबे-चौड़े परिवार की परवाह न करते हुए एक बांग्लादेशी कन्या से शादी कर ली थी। इसी के साथ जैसे सारा कुछ बिखर गया था। सभी भाइयों ने मिलकर उनका बहिष्कार सा कर दिया था और वह बड़ी ही उपेक्षा और तंगहाली में मर गए थे। वह पढ़ने में तेज था और उसे विद्यालय से वजीफा मिलता था, वह अपनी पढ़ाई पूरी कर सका था। वैसे उसकी भी अपने दादा के समान संगीत में रुचि थी। मगर उसके भाई इसके सख्त खिलाफ थे और इसलिए वह संगीत की विधिवत् शिक्षा नहीं ले पाया था। बाद में उसके भाई ने उसका डिप्लोमा इंजीनियरिंग में दाखिला करा दिया। डिप्लोमा की पढ़ाई पूरी कर वह उदयपुर में गोमती नदी के किनारे स्थित हाइड्रो इलेक्ट्रिक पॉवर प्लांट में अस्थायी नौकरी

में आ गया था। इसके अगले ही साल उसने प्रतियोगिता परीक्षा पास कर दिल्ली में एक अच्छी नौकरी और वेतन पाकर वहीं चला गया था। वहीं माधवी से उसकी भेंट हुई थी।

माधवी से उसकी भेंट इत्तफाक से ही हुई थी। दरअसल कुछ लफंगे उसके पीछे पड़ गए थे, जिससे उसने मुक्ति दिलाई थी। वह उसके साहस से प्रभावित हुई थी और उसका फोन नंबर ले लिया था। बाद में परिचय परवान चढ़ा, तो प्रेम में तब्दील हो गया और फिर वह उससे शादी कर वहीं दिल्ली का होकर रह गया था।

''अरे रात के दो बज रहे हैं और तुम अभी तक जाग रहे हो।'' माधवी अचानक उठकर बोली, ''अब क्या सोच रहे हो?''

''नहीं, कुछ खास नहीं।'' अपने आदत के अनुरूप उसने संक्षिप्त सा जवाब दिया और मुँह घुमाकर लेट गया।

अगले दिन उनका उज्जयंत महल जाने का कार्यक्रम था।

वे महल के, जो अब विधानसभा भवन था, के परिसर के बाहर लॉन की घास पर बैठे थे।

''तुम रात ठीक से सोए नहीं।'' माधवी उससे पूछ रही थी, ''मैं देख रही हूँ कि तुम यहाँ आकर कुछ ज्यादा ही भावुक हो रहे हो।''

''अपनी जन्मभूमि को देखकर कौन भावुक नहीं होता।'' वह बोला, ''यह महल तुम देख रही हो न, वह हमारे पूर्वजों की निशानी है। मगर उसपर अब हमारा कोई हक नहीं है। यह एक तरह से अच्छा ही है कि उसपर अब जन-सामान्य का हक है। यह मेरे दादाजी का भी सपना था कि त्रिपुरा में लोकतंत्र हो। इसी के लिए वे इसी महल से बेदखल किए गए थे।''

''यह तो अच्छी बात रही कि उन्होंने समय की आवाज सुनी और उसमें अपना सुर मिलाया।''

''मेरे एक दादा, जो गीत-संगीत में रुचि रखते थे और फिल्म जगत् के जाने-माने व्यक्तित्व भी हुए, उन्हें भी उनके गीत-संगीत के शौक के वजह से इस महल से बेदखल कर दिया गया था और वे फिर बंबई के होकर रह गए थे।''

''जीवन ऐसे ही चलता है। मनुष्य ऐसे ही आगे बढ़ता है, और अपनी बेहतरी की ओर अग्रसरित होता है।'' माधवी बोली, ''जैसे कि तुम भी अब दिल्ली में प्रवास करने लगे हो, एक बेहतर जीवन जीने लगे हो। इसी की तो सभी की आकांक्षा रहती है न।''

देवजीत आँख मूँदकर लॉन की घास पर लेट गया था। मानो वह अपने पूर्वजों के अतीत को, इतिहास को याद कर रहा हो। माधवी उसके बालों में उँगलियाँ फिरा रही थी। उधर क्षितिज में सूर्य तेजी से पश्चिम की ओर ढलता जा रहा था। अचानक देवजीत उठ खड़ा हुआ और बोला, ''चलो यहाँ से। मुझे घुटन सी हो रही है।''

वह भी उठ खड़ी हुई।

''जहाँ तुम पहली नौकरी करते थे, मैं वहाँ जाना चाहूँगी। जरा मैं भी तो देखूँ कि वह कैसी जगह है।''

''वह तो उदयपुर में गोमती नदी के किनारे है।'' वह हँसकर बोला, ''वहाँ जाकर क्या करोगी। कल हम त्रिपुरसुंदरी माता मंदिर जाएँगे। वह भारत का एक महत्त्वपूर्ण मंदिर है। वहाँ तुम्हें अच्छा लगेगा।''

अगले दिन वह टैक्सी कर उदयपुर स्थित माता मंदिर पहुँच गए थे।

इस समय मंदिर का कपाट बंद था। शायद अंदर विशेष पूजा चल रही थी, जिसके बाद दर्शनार्थियों के लिए मंदिर का दरवाजा खुलता। सो वे मंदिर के पीछे स्थित कल्याण-सागर तालाब की ओर बढ़ गए। तालाब में स्थित बड़ी-बड़ी मछलियों को देख माधवी विस्मित रह गई। कुछ लोग मछलियों के लिए दाना डाल रहे थे। वे दोनों वहीं तालाब के समीप सीढ़ियों पर बैठ गए।

''शिव-पार्वती की कथा तुमने शायद सुनी होगी। पुराणों में ऐसा वर्णन है कि दक्ष-कन्या सती का दाहिना पैर यहाँ गिरा था, इसलिए यहाँ भी शक्ति पीठ का निर्माण हो गया। यहाँ अठारह भुजाओंवाली माता दुर्गा का मंदिर है।'' देवजीत बता रहा था, ''कभी उदयपुर ही त्रिपुरा की राजधानी हुआ करती थी। मगर कूकी नागाओं की लूटपाट से परेशान राजा यहाँ से अपनी राजधानी उठाकर अगरतला ले आए। वैसे एक कारण और बताते हैं कि राजा ब्रिटिश सत्ता से नजदीकियाँ चाहता था और इसलिए बंगाल के ठीक बगल में वे अपनी राजधानी ले आए।''

अचानक तालाब के पास हलचल हुई। पता चला कि मंदिर का कपाट खुल गया है। वहाँ बैठे लोग उठकर मंदिर की ओर बढ़ चले थे। उन्होंने भी उठकर मंदिर का रुख कर लिया। मंदिर में दर्शन कर वे बाहर निकल आए।

''चलो एक बड़ा काम हो गया।'' माधवी बोली, ''हमें कई जगह घूमना था। लेकिन घर में ही मिलने-जुलने में बहुत सारा समय निकल गया। कल तुम्हारे घर की 'गरिया पूजा' में शामिल होना है। मैं उस दिन कहीं घर से बाहर नहीं जाऊँगी। अब अगली बार आने पर ही त्रिपुरा के दर्शनीय स्थल देखना संभव हो सकेगा।''

''गरिया पूजा का अनुष्ठान तो सात दिनों तक चलता रहता है। यह प्रत्येक गाँव में मनाया जाता है। 'गरिया' हमारे यहाँ का प्रमुख त्योहार है। इसमें मूलत: देवी गौरी अर्थात् पार्वती की ही पूजा की जाती है। इस अवसर पर किया जानेवाला 'गरिया नृत्य' मूलत: सामूहिक नृत्य है, जिसमें गाँव के सभी युवा भाग लेते हैं। उन्हें गाँव के प्रत्येक घर में जाकर यह नृत्य प्रस्तुत करना होता है। इस अवसर पर गीत गाए जाते हैं और पारंपरिक वाद्य यंत्र ढोल, बाँसुरी, सारिंदा आदि बजाए जाते हैं। सारिंदा को तुम आधुनिक वायलिन का पूर्व रूप मान सकती हो। सारिंदा को अन्य जगहों में प्रचलित सारंगी का एक रूप कह सकते हैं।

''मैंने तुम्हें बताया था ना कि मेरे दादा के एक भाई सारिंदा बजाने में बहुत निपुण थे। संयोगवश वे रवींद्रनाथ टैगोर के संपर्क में आ गए थे। अपने इसी सारिंदा की कला साधने के कारण उन्हें त्रिपुरा राजघराने से बहिष्कृत कर दिया गया था। बाद में वे कलकत्ता और फिर मुंबई के फिल्म-नगरी में अपना संगीत देते विख्यात संगीत निर्देशक बन गए। उनके एक बेटे ने भी अच्छा नाम कमाया। वे लोग वहीं मुंबई में बस गए। मेरे दादा ने भी उनका अनुकरण करना चाहा था, मगर वे कलकत्ता और मुंबई का चक्कर काटते रह गए, मगर बात बन नहीं पाई।''

''फिल्म-नगरी का चक्कर ऐसा ही है।'' माधवी बोली, ''किसी

को आसमान पर उठा देती है, तो किसी को पाताल की अतल गहराइयों में फेंक देती है।''

अगरतला के मार्केट में वह देवजीत के साथ घूमते हुए अभिभूत थी। यहाँ के पारंपरिक परिधान, बेंत और बाँस के बने फर्नीचर व अन्य सामग्री को देख वह आश्चर्यचकित थी। वह सोच रही थी कि दिल्ली वापस जाते समय वह इन्हें खरीदकर ट्रेन में बुक करा लेती तो कितना अच्छा रहता। रात में वे एक होटल में भोजन कर वापस घर आ गए थे। अगले दिन ही 'गरिया' पूजा थी। सभी इसी की तैयारी में लगे थे। देवजीत की भाभी ने उसे पारंपरिक परिधान और आभूषण पहना दिए थे, जिसमें वह बिल्कुल अलग दिख रही थी।

''तुम ध्यान से देखोगी तो 'गरिया' भी मणिपुरी की तरह का शास्त्रीय नृत्य ही है। इसके स्टेप्स और मुद्राएँ हमें दैनिक कार्य-व्यवहार की अनेक बातें सिखा जाती हैं। धान की बुवाई के लिए पहाड़ के जंगलों को काटकर समतल बनाकर उसमें खेती की जाती है, जिसे 'झूम खेती' कहते हैं। इस समय अच्छी फसल की आशा में यह त्योहार मनाया जाता है, जिसमें सभी भाग लेते हैं।''

''यह नृत्य-संगीत सभी को शोहरत और पैसा कहाँ दिला पाता है।'' वह बोली थी, ''यह तो सिर्फ कुछ भाग्यवानों अथवा पहुँचवालों को ही मिल पाता है।''

''बिल्कुल ठीक कह रही हो तुम। तभी तो मेरे पिता और भाइयों को भी इससे अरुचि हो गई थी। मैंने भी गीत-संगीत में हाथ आजमाना चाहा। मगर उन्होंने इससे सख्ती से मना कर दिया। बाद में मैंने डिप्लोमा किया और जब ढंग की एक नौकरी पा ली, तो सभी संतुष्ट हुए। मगर नौकरी का चक्कर ऐसा कि मुझे दिल्ली जाना पड़ गया। मेरे भाइयों ने लगभग जबर्दस्ती वहाँ भेजा, जबकि उस समय अगरतला से दिल्ली जाना कितना कठिन था। तब अगरतला से सैकड़ों मील दूर कुमारघाट तक ही ट्रेन आती थी। वहीं से छोटी लाइनवाली ट्रेन पकड़कर पहले गुवाहाटी पहुँचो, फिर वहाँ से दिल्ली की ट्रेन पकड़नी पड़ती थी। उस समय ट्रेन में आरक्षण भी सरलता से नहीं मिलता था। उन दिनों अगरतला से दिल्ली की यात्रा एक सजा थी। मगर अब ट्रेन की बड़ी लाइन बिछ जाने से कितना सुगम हो गया है। अगरतला से दिल्ली जाने के लिए अनेक ट्रेनें हैं, जिनसे यात्रा काफी सुगम हो गई है। अब लगता है कि वाकई हम शेष भारत से जुड़े हैं।''

''माधवी बहू! सच कहो तो यह परेशानी स्वाधीनता मिलने के बाद ही शुरू हुई।'' देवजीत के बड़े भाई अचानक कमरे में प्रकट हो गए। वह उनकी बात सुन रहे थे। वह आगे बोले, ''स्वाधीनता पूर्व समय में ऐसा नहीं था। तब अगरतला से बांग्लादेश के चटगाँव के रास्ते कलकत्ता जाना काफी आसान था। मगर समय, परिस्थिति और राजनीति जो न करा दे, कम ही है। यह अच्छा हुआ कि सुविधा मिली तो तुम लोग यहाँ आ गए। अपनी परंपरा और संस्कृति को जानना-समझना बहुत जरूरी है।''

''आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं भय्या वह भावुक होकर बोली, ''इसलिए तो हम यहाँ आपका आशीर्वाद लेने आए हैं। दस दिन कैसे बीत गए, हम पता भी नहीं चला। कल दिल्ली के लिए हमारी ट्रेन है। इसलिए हमें वापस लौटना है। मगर हम आपसे वादा करते हैं कि हम हमेशा यहाँ आते-जाते रहेंगे, ताकि हम अपनी मिट्टी-पानी से, अपनी जड़ों से जुड़े रह सकें।''

''मुझे यह सुनकर बहुत खुशी हुई, माधवी। हमें तो सिर्फ तुम लोगों की खुशी चाहिए।'' वे बोले, ''और इसलिए तुमने जो बेंत के सामान और फर्नीचर पसंद किए थे, उसे मैंने ट्रेन में बुक करा दिया है।''

उसने आगे बढ़कर उनके चरण स्पर्श कर लिये।

घर के बाहर आँगन में ढोल की तीव्र आवाज आने लगी थी। इसी के साथ बाँसुरी, सारिंदा आदि के सुमधुर स्वर भी वातावरण में अपनी मिठास घोल रहे थे। काकबरक भाषा में युवक गीत गा रहे थे, जबकि युवतियाँ सामूहिक रूप से पारंपरिक नृत्य कर रही थीं। घर के बाहर वह देवजीत के साथ निकलकर 'गरिया' नृत्य देखने में तल्लीन थी।

आज जैसे उसका एक मकसद पूर्ण हुआ था।

क्वार्टर नं. बी १५२, एच.पी.सी. टाउनशिप,
पो. पंचग्राम, असम-७८८८०२
दूरभाष : ०९४०१३७४७४४

इस अंक के चित्रकार

श्री डी.के. पुरोहित

२४ अप्रैल, १९७२ में जनमे चित्रकार बालकृष्ण पुरोहित की रचनाएँ एवं रेखांकन प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'कमलेश्वर साहित्य सम्मान' एवं कलेक्टर से जर्नलिज्म में पुरस्कार। संप्रति 'दैनिक भास्कर' में उप-संपादक।

संपर्क : २८३, शास्त्री नगर, शास्त्री सर्कल के पास,
जोधपुर (राजस्थान)
दूरभाष : ९७८३४१४०७९

छायावाद : भारतबोध की कविता

• हेमंत कुकरेती

छायावादी काव्यधारा का एक प्रमुख पक्ष राष्ट्रबोध की अभिव्यक्ति है। इस दौर की कविता जहाँ खड़ी बोली की पहली उत्कृष्ट प्रस्तुति है, वहीं दूसरी ओर छायावाद में ही मुक्त छंद का हिंदी कविता में पहली बार इस्तेमाल किया गया। इस मायने में छायावाद कविता को गद्य के नजदीक ले जाने की शुरुआती कोशिश भी है। छायावादी काव्य सामूहिक मुक्ति का बयान है। देश को गुलामी से मुक्त होना है। संस्कृति को रूढ़ियों से मुक्त करना है। स्त्री पुरुषवादी वर्चस्व से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष कर रही है। वंचित जन शोषण से मुक्त होने के लिए संघर्षरत हैं। जो पीछे रह गए थे, वे अज्ञानता और अशिक्षा से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यही भारतबोध है। महीन कलात्मक कविता होने के बावजूद छायावादी काव्य में व्यक्त देशराग आसानी से समझ आता है।

भाषा के धरातल पर भी रस, छंद, अलंकारों की जंजीरों से छूटने की लड़ाई कवि लड़ रहे हैं। कई मायनों में छायावाद प्रगतिवाद से ज्यादा प्रगतिशील और प्रयोगवाद से अधिक प्रयोगशील है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने जिस कविता को संभव किया, उसका महत्त्व आलोचकों ने बाद में पहचाना। इस धरातल पर भी इन प्रतिभाशाली कवियों को लड़ना पड़ा। छायावाद के पक्ष में इन कवियों ने अपनी काव्य-पुस्तकों की भूमिका के रूप में या स्वतंत्र किताब की शक्ल में जो गद्य लिखा, वह अद्‌भुत है। वह एक प्रकार से छायावादी युग की आत्मकथात्मक जीवनी है।

यह प्रचारित किया जाता है कि भारतीयों में अंग्रेजों के आने के बाद राष्ट्रबोध आया। राष्ट्रबोध भारतीय मानस में पहले से मौजूद था। इतना अवश्य हुआ कि वह समग्र भारत के बोध में बदल गया। सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह था तो राजनीतिक धरातल पर यह कविता ताकतवर के खिलाफ कमजोर का विद्रोह का घोषणा-पत्र प्रस्तावित कर रही थी। यानी भारतबोध की काव्यात्मक प्रस्तुति सबसे प्रखर रूप में छायावादी कविता में मिलती है। रोमान की विद्रोहात्मक कविता होने के कारण छायावाद स्वाभाविक तौर पर देशराग की कविता है। दो महायुद्धों के बीच लिखी गई इस कविता के केंद्र में मौजूद आजाद होने की प्रबल इच्छा और उसे पूरा करने का संकल्प दिखाई देता है। यह अंग्रेजी की रोमांटिक काव्यधारा की नकल नहीं है। छायावादी कविता के मूल में स्वच्छंच्दतावादी चेतना है। इसका विद्रोही स्वभाव विशुद्ध भारतीय है। स्वच्छंदतावादी भावों से युक्त छायावादी कविता अपने समय और समाज की जरूरतों का रचनात्मक परिणाम है।

वरिष्ठ रचनाकार। अब तक पाँच कविता-संग्रह प्रकाशित। भारत-भूषण सम्मान, कृति सम्मान, केदार सम्मान से सम्मानित। कविताएँ देसी-विदेशी भाषाओं में अनूदित। संप्रति श्यामलाल कॉलेज (दि.वि.वि.) से संबद्ध। 'साहित्य अमृत' (मासिक) के संयुक्त संपादक।

देश और देश की तत्कालीन आवश्यकताएँ छायावादी कविता में मौजूद हैं। इस प्रकृतिपरक काव्य में भारत को शोभित करनेवाली प्रकृति के जीवंत चित्र कवियों ने निर्मित किए हैं। वह भी देशराग का नैसर्गिक परिणाम है। इनमें गुलामी की काली रात बीत रही है। नवजागरणकालीन चेतना जनमानस में फैल रही है। आशा से परिपूर्ण उषा का उदय हो रहा है। जयशंकर प्रसाद के नाटकों के नाट्यगीत अधिक स्पष्टता के साथ नए भारत के उदय का उद्‌घोष करते हैं—'अरुण यह मधुमय देश हमारा', यह वह देश है, जहाँ अनजान क्षितिज को भी सहारा मिलता है। अनजान भी जहाँ स्थायी ठिकाना पा जाते हैं।

इस राष्ट्रीय जागरण का विकास उत्तर-छायावादी दौर में भी हुआ। माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा—

मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेंक;
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ पर जाएँ वीर अनेक।

स्वतंत्रता की यह संवेदना और भारतबोध छायावाद के समानांतर चलनेवाली राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा की केंद्रीय प्रवृत्ति है। छायावादी कवियों ने देशबोध को कई रूपों में प्रस्तावित किया है। कहीं पर वह कठिन वर्तमान से जूझने के लिए देश के प्राचीन गौरव को याद करते हैं और कहीं पर देश के प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति अपने गहन अनुराग को रेखांकित करते हैं। कहीं पर अपने देश से प्रेम करनेवाला कवि राष्ट्रवासियों की दुर्दशा से पीड़ित होकर क्रांति का आह्वान करता है। गुलामी और गरीबी की चक्की में पिसते हुए किसान की दयनीय दशा देखकर निराला जिस बादल-राग को गाते हैं, वह असल में देश-राग ही है—

तुझे बुलाता कृषक अधीर
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मास ही है आधार।

माखनलाल चतुर्वेदी सीधे आजादी के जनांदोलन से जुड़कर 'कैदी और कोकिला' में कह उठते हैं—

क्या देख न सकती जंजीरों का गहना,
हथकड़ियाँ क्यों, यह ब्रिटिश राज्य का गहना
कोल्हू का चर्रक चूँ, जीवन की तान।
मिट्टी से लिखे अंगुलियों ने क्या गान?
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जुआ,
खाली करता हूँ, ब्रिटिश राज्य का कुआँ।

छायावाद के अंतिम दौर में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने लिखा—

है बलिवेदी, सखे प्रज्वलित माँग रही ईंधन क्षण-क्षण
आओ युवक लगा दो तो तुम अपने यौवन का ईंधन।
भस्मसात् हो जाने दो ये प्रबल उमंगें जीवन की,
अरे सुलगने दो बलिदेवी, चढ़ने दो बलि जीवन की।

जयशंकर प्रसाद को दार्शनिक कवि कहा जाता है। ऐसा कवि जो वर्तमान से सीधे टकराने की बजाय इतिहास या पुराण में शरण लेता है। लेकिन ऐसा नहीं है। प्रसाद की कविता 'बीती विभावरी जाग री' ठेठ वर्तमान की कविता है। यहाँ मामूली कहे जानेवाले प्राणी नवजागरणकालीन उषा की ऊष्मा से भरकर आजादी के संघर्ष में अपना योगदान देने के लिए तत्पर हैं। नन्हे खग (पक्षी) और दूसरों पर निर्भर लतिका (लता) क्रमशः मामूली व्यक्ति और नारी का प्रतीकार्थ देते हैं। असल में राष्ट्र को दासता के चंगुल से छुड़ाने के लिए हर कोई अपना योगदान देना चाहता है।

प्रसाद ने अपनी एक अन्य रचना 'अब जागो जीवन के प्रभात' में प्रभात को नए युग का सवेरा और जागने के भाव को नवजागरण से जोड़ दिया है। छायावाद के प्रतिभाशाली कवियों ने जो काव्य-आंदोलन किया, उससे हिंदी कविता अपने समय की विश्व कविता के समकक्ष आ गई। इन कवियों ने आते ही उसे ५० वर्ष आगे कर दिया। इसलिए छायावाद को आधुनिक काल का पहला स्वर्ण काव्य कहते हैं। जयशंकर प्रसाद अपने विशिष्ट आह्वान-गीत 'बीती विभावरी जाग री' में नवजागरणकालीन चेतना को आगे बढ़ाते हुए अज्ञानता और पराधीनता का प्रतिरोध रचते हुए सोए हुए लोगों को जगाने का उपक्रम करते हैं। इस रचना में कवि ने समाज के सबसे नीचे पायदान पर खड़े साधारण मनुष्य को भी नए संदर्भ में समझा और उसकी ताकत को रेखांकित किया है। प्रसाद के देशगानों में अभिव्यक्त वीरभाव के मूल में भारतबोध है। उसके माध्यम से यह पता चलता है कि छायावादी रचनाकार अपने समय के आजादी के संघर्ष में किस तरह से अपनी भूमिकाएँ निभा रहे थे। यह गुलामी से मुक्ति होने की संवेदना है—

असंख्य कीर्ति रश्मियाँ
विकीर्ण दिव्य दाह-सी
सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी
अराति सैन्य सिंधु में सुवडवाग्नि से जलो!
प्रवीर हो जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

राष्ट्र और राष्ट्रीयचेतना छायावादी कवियों के यहाँ कई रूपों में मिलती है। निराला अपनी कविताओं 'बादल राग', 'राम की शक्ति पूजा', 'दलित जन पर करो करुणा' और 'जागो फिर एक बार' में इसी संवेदना को व्यक्त करते हैं। निराला के यहाँ विरक्ति या पराजय भाव बिल्कुल नहीं है। उनकी आवाज वीरता के ताप से ऊष्मित है। उनकी उद्‌बोधनात्मक कविता 'जागो फिर एक बार' में अद्‌भुत ओज है। समूचे राष्ट्र का जीवन संकट में है। ऐसे में कवि देश के गौरवशाली अतीत का स्मरण कराता है। निराला ने विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से समझाया है कि भारतवासी वीरों की संतान हैं। उनका विरोध साम्राज्यवादी अंग्रेजों के शासन तक सीमित नहीं है। वह उस मानसिकता के खिलाफ भी है, जो हर बात पर पश्चिम की उक्तियों को मंत्र की तरह उगलते रहते हैं। निराला 'गीता' का स्मरण करते हुए कर्म करने को कहते हैं। यह निष्काम कर्म की शिक्षा है। विद्रोही चेतना के इस कवि ने भाषा और अनुभूति दोनों धरातलों पर शोषण और अन्याय के प्रति तीव्र असंतोष व्यक्त किया है—

तोड़ो-तोड़ो तोड़ो कारा
पत्थर की निकलो
फिर गंगाजल धारा
गृह-गृह की पार्वती
पुनः सत्य सुंदर शिव को सँवारती

यहाँ पर अपराजेय भाव की अभिव्यक्ति और उदात्त मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का संघर्ष एक साथ देखा जा सकता है। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में राम और रावण का युद्ध एक प्रकार से सामूहिक आजादी के लिए युद्ध है। सीता यानी आजादी का अपहरण शक्तिशाली रावण ने कर लिया है। ऐसे कठिन समय में राम वनवासियों और हाशिये पर फेंक दिए गए मामूली लोगों की शक्ति पहचानकर जो संग्राम करते हैं, उसके मूल में राष्ट्र की नई परिकल्पना है। विवशता, शंका, आत्मविश्वासहीनता के साथ आस्था, उत्साह, संयम इत्यादि विरोधी भाव बार-बार राम के मन में घिरते हैं। रावण शक्ति का सुपरपॉवर

निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में राम और रावण का युद्ध एक प्रकार से सामूहिक आजादी के लिए युद्ध है। सीता यानी आजादी का अपहरण, शक्तिशाली रावण ने कर लिया है। ऐसे कठिन समय में राम वनवासियों और हाशिये पर फेंक दिए गए मामूली लोगों की शक्ति पहचानकर जो संग्राम करते हैं, उसके मूल में राष्ट्र की नई परिकल्पना है। विवशता, शंका, आत्मविश्वासहीनता के साथ आस्था, उत्साह, संयम इत्यादि विरोधी भाव बार-बार राम के मन में घिरते हैं।

स्ट्रक्चर है। उसके प्रखर तेज के सामने लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव सभी निस्तेज हो जाते हैं—

लौटे युगदल, राक्षस पदतल, पृथ्वी टलमल
विंद्य महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।
वानर-वाहिनी खिन्न लख निज-पाति-चरण-चिह्न
चल रही शिविर की ओर स्थविर-दल ज्यों विभिन्न
प्रशामित है वातावरण, नमित-मुख कमल
लक्ष्मण चिंता पल पीछे वानर वीर सकल।

स्पष्ट है कि खिन्नता और चिंता से भरा हताशा का माहौल है। उम्मीद की कोई किरण नजर नहीं आ रही है। निराला ऐसे में बिखरे हुए, निराशा से घिरे हुए सभी मनुष्यों को संगठित होने का संदेश देते हैं। यह समाज के हाशिये पर पिसती हुई सकारात्मक जनशक्तियों को एकाग्र होकर लड़ने की सही दिशा को रेखांकित करना है। शत्रु शक्ति को अपने वश में कर चुका है। उससे अकेले पार नहीं पाया जा सकता, क्योंकि मुक्ति केवल सीता की नहीं होनी! हनुमान, विभीषण इत्यादि को भी तिरष्कार, अन्याय, शोषण, निष्कासन और अत्याचार से मुक्त होना है। राम के पास जीतने की संभावना है, केवल भय से मुक्त होकर लड़ना है।

'आह यह धरती कितना देती है' और 'फैला है शस्य श्यामला धरती का मैला आँचल' कहनेवाले पंत के यहाँ भी जन्मभूमि के प्रति कृतज्ञता का गहरा भाव है। छायावादी सुकुमार भावों के कवि पंत ने एक ऐसे देश का सपना देखा है, जो स्वप्नलोक से उतरकर पूरा होना चाहता है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'प्रथम-रश्मि' संभावित आजादी की पहली किरण है। वहाँ बाल-विहगी एक मायने में स्तब्ध दबी-कुचली और असमय घोंट दी गई आवाजों का प्रतिनिधित्व करती है। कवि को उसमें नवजागरणकालीन चेतना दिखाई देती है। इस तरह यह कविता जन-जागरण और राष्ट्रबोध से युक्त स्वागत गीत बन जाती है। पंत जैसे कवियों का प्रकृति प्रेम दरअसल देशप्रेम ही है। वह जिस प्रकृति को प्रेम कर रहे हैं, वह इसी देश की मिट्टी से उपजी है। उन्होंने यह समझ पैदा की है कि देश के प्रति प्रेम जतलाने के लिए आह्वान-गीत गाने जरूरी नहीं हैं। वह तो अतिरेकी होकर रचनाशीलताविहीन एक प्रकार की राजनीतिक नारेबाजी होगी।

पंत के प्रकृति-प्रेम में निहित देश-प्रेम को आचार्य शुक्ल से बेहतर और कौन पहचानेगा? इस प्रसंग में शुक्लजी ने ठीक पहचाना कि 'यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु-पक्षी, लता, पेड़-पौधे, पर्वत, नदी-निर्झर सबसे प्रेम होगा।' आचार्य शुक्ल पंत के प्रकृति-साहचर्य को देश-प्रेम के संदर्भ में देखते हैं। विशेष बात यह है कि पंत कई दूसरे कवियों की तरह काल्पनिक प्रकृति-प्रदेश में पलायन नहीं करते। दैनिक जीवन की लड़ाइयों से भागकर पंत प्राकृतिक मनोलोक में खुद को नहीं छुपाते! महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रकृति पंत को समाज से दूर नहीं करती बल्कि उनकी सामाजिकता का विस्तार करती है। जैसे पहले कहा कि प्रकृति उनके काव्यार्थ को सघन करती है। ठीक उसी प्रकार यह उनके रचनात्मक व्यक्तित्व का विस्तार भी करती है।

यह निसर्ग ही है, जो कवि को निजी आजादी के साथ-साथ सबकी मुक्ति की चिंता से जोड़ता है। यह जरूर कहा जा सकता है कि पंत के यहाँ प्रकृति के सुंदर चित्र अधिक हैं, लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि उनके यहाँ केवल सुकोमल प्रकृति-चित्रण ही है। प्रकृति के माध्यम से वह अपने समय के कठोर यथार्थ को भी व्यक्त करते हैं।

छायावाद के चरम पर पहुँचने के बाद महादेवी वर्मा उस बड़े आंदोलन में पंत, प्रसाद, निराला, के बाद शामिल हुईं। उनके यहाँ भी नए भारत की मुक्त स्त्री का स्वप्न मौजूद है। स्त्री-जीवन की चिंता, पीड़ा और विश्व की 'शाश्वत व्यथा' के संश्लेषण को 'डी कोड' करने बाद ही पता चलता है कि महादेवी के यहाँ करुणा कष्ट से मुक्ति का प्रत्यक्ष स्वर है। फैशनेबल दिखावटी विद्रोह ढूँढ़नेवाले यहाँ हमेशा निराश होंगे। क्योंकि वे अप्रिय और गलत को नकारने के बाद एक संवेदनशील मन में उपजनेवाले भय, असुरक्षा और आतंक को नहीं समझ सकते। महादेवी के लिए स्त्री-मुक्ति के मायने पुरुष से मुक्ति नहीं है। उनके यहाँ पुरुषवादी ज्यादतियों से मुक्ति की गहरी समझ है। प्रभाकर श्रोत्रिय ने ठीक पहचाना है कि महादेवी इस आतंक से, इस अँधेरे से निकलने के लिए एक तल्ख बेचैनी से छटपटाती हैं—

घोर तम छाया चारों ओर
घटाएँ घिर आईं घनघोर
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वत मूल
कौन पहुँचा देगा उस पार?

एक स्त्री के द्वारा महसूस की गई स्त्री की वास्तविक असुरक्षा, भय और पारंपरिक उत्पीड़न महादेवी से ज्यादा किसने झेले होंगे? उन्होंने निजी दुख को उस हद तक सहा, जहाँ वह दवा बन गया। आत्मगत शैली में महादेवी ने अपने बहाने समूचे स्त्री-संसार का सच सामने रखा है।

कह सकते हैं कि छायावाद में व्यक्त भारतबोध विशुद्ध स्वदेशी राष्ट्रबोध है। साम्राज्यवादी शोषण और अन्याय के कारण असंगठित संघर्ष-समूह संगठित हो गए। यानी पश्चिम की प्रेरणा से नहीं, उसके दबाव से भारतवादी सोच निर्मित हुई। यह भारतवादी दृष्टि और उससे विकसित दृष्टिकोण सामाजिक-सांस्कृतिक संकीर्णताओं से बहुत हद तक मुक्त थी। छायावाद इस बोध का रचनात्मक प्रारूप है। यह कविता आयातित वादों में नहीं लिखी गई, बल्कि इसमें उस समय और समाज की आवाजें हैं, जो लोकतंत्रात्मक गणतंत्र के रूप में भारत को देखती है।

साअ

ए-३/५०, पश्चिम विहार
नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ९८१८५४०१८७

घर-घर दंगल

• गोपाल चतुर्वेदी

हमें अपनी अज्ञानता पर गर्व है। वह तो भला हो हमारे बेटे का, जिन्होंने हमें गूगल ज्ञान के मार्फत बताया कि कुश्ती या 'रैसलिंग' का जन्म भारत में नहीं हुआ है। वरना हमें विश्वास था कि कुश्ती की शुरुआत देशी है। यह पुरातन खेल है, जिसका इतिहास पंद्रह साल पहले की 'केव पेंटिंग्स' में समाहित है। कोई जैकब नामक पहलवान भगवान से भी कुश्ती में भिड़ लिये थे। यों होमर से लेकर रामायण, महाभारत तक कुश्ती का जिक्र है। ऐसे हमारी लोककथाओं में भगवान से किसी पहलवान की भिड़ंत का विवरण तो नहीं है। हो तो कैसे हो? भगवान अदृश्य जो ठहरे। पर भीम द्वारा जरासंघ को कुश्ती में हराने का संदर्भ महाभारत में जरूर उपलब्ध है। भीम अपने समय के जाने-माने मल्ल थे। हमें तो अब भी लगता है कि महाभारत के युद्ध का कोई औचित्य नहीं है। भीम और दुर्योधन की कुश्ती करवा देते। जो जीतता, वही इंद्रप्रस्थ पर राज करता। जहाँ तक कृष्ण की गीता का प्रश्न है, वह दंगल के रैफरी होते और वहीं गीता का ज्ञान दे सकते थे।

यों तो पारंपरिक दंगल के स्थान पर फ्री स्टाइल कुश्ती १९०४ से ओलंपिक की शोभा है। भारतीय पहलवानों ने वहाँ बाद में मेडल जीतकर देश में दंगल की लोकप्रियता में खासी अभिवृद्धि दर्ज की है। पहले सीमित अखाड़े और उतने ही कुश्ती के गुरु होते। अब घर-घर में अखाड़ा है, कुश्ती है, दंगल है। यों घर के सदस्य इस तथ्य को नकारते हैं। फिर जैसे पड़ोसी का राज वह उगलते हैं, पड़ोसी भी उनकी दंगल प्रवृत्ति की सार्वजनिक घोषणा करता है, ''हालाँकि किसी गुरु का शिष्य नहीं है, पर दंगल में उसका जोड़ नहीं है। कल ही स्कूटर वाले से बिना बात किराए के मीटर को लेकर भिड़ लिया। उसकी शिकायत थी कि मीटर तेज चलता है। वह तो गनीमत रही कि लोगों ने बीच-बचाव करके मारपीट की नौबत बचा दी। नहीं तो शर्तिया पुलिस केस बनता!''

उनके घर में अकसर हलचल मची ही रहती है। लगता है कि पति-पत्नी की कुंडली में शर्तिया 'मांगलिक' ग्रह खूब मिलते हैं। किसी पंडित ने इन्हें 'मांगलिक' समझकर मिला दिया। शादी करवाने के चक्कर में पैसे बनाए होंगे पंडित ने। वह भी अपने अधकचरे ज्ञान का, कमाने को, बखूबी प्रयोग करते हैं। लिहाजा, घर में पति के दफ्तर जाने के पहले और लौटने के बाद खूब झाँय-झाँय मची रहती है। इसे अपवाद ही कहेंगे कि घर में कभी अमन-चैन का माहौल हो। पड़ोसी का आकलन है कि इस गृहयुद्ध में न पुलिस कुछ कर सकती है न फौज। उलटे उनके अनवरत संघर्ष को वह भी देखें तो पलायन करने में ही अपनी खैर जानें। क्या पता, वह भी इसी संघर्ष की टोल के हों?

यों तो पारंपरिक काल और गृहयुद्ध में एक ही अंतर है। एक में शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन है, दूसरे में ताकतवर फेफड़े की क्षमता का। कोई सामान्य इसान इतना चिल्लाए तो वह खाँसना-कराहना शुरू कर दे। वाक्-युद्ध में दोनों आसमान उठाए रहते हैं। जैसे उनके गले में लाउड-स्पीकर 'फिट' है। वह यह भूलते हैं कि उनकी चीख-चिल्लाहट मोहल्ले की शांति की शत्रु है। उनके लिए आपसी रार का शोर उतना ही सामान्य है, जितना सुबह उठकर आदतन चाय पीना। इसे हम शाब्दिक हिंसा की उपलब्धि मानते हैं कि चीख-चिल्लाहट ही उतनी प्रबल हो कि मारपीट की जरूरत ही नहीं पड़े। एक की बात दूसरे को इतनी खले कि जवाब देने में यदि वह डैंचरधारी है तो उसका करीने से सजा डैंचर ही उसके हाथ में आ जाए। पर यह भी सच है कि शाब्दिक हिंसा का उत्तर नहीं सूझता तो कमजोर पक्ष हाथापाई पर उतर आता है। यह हाथापाई कभी कभी अस्पताल के जरिए पुलिस की केस डायरी की वारदात तक बन जाती है।

ऐसा हमारे देखते-देखते मोहल्ले में ही श्री और श्रीमती शर्मा के साथ हुआ। दोनों का वाक्-युद्ध पूरे मोहल्ले की चर्चा का विषय था। एक बार नाश्ते पर संघर्ष प्रारंभ हुआ। हर मोहल्ले में कुछ 'खुफिया' ऐसे हैं, जो हर घर की खबर रखते हैं। उनमें से एक ने सूचित किया कि शर्माजी की चाँद सफाचट हो चुकी है और उसको ढकने के लिए वह बालोंवाली टोपी प्रयुक्त कर दूसरों को भ्रम में रखे हैं। हुआ यह कि शाम को श्रीमती शर्मा ने जुबान तीर चलाकर शर्माजी को निरुत्तर किया था। रात के भोजन तक सब सामान्य हो चुका था, पर श्रीमती शर्मा याददाश्त में पक्की हैं। उन्होंने शाम की जीत के बाद भी शर्माजी को क्षमादान नहीं दिया था। टोपी उतारकर शर्माजी उसे अपने ही पास रखते थे कि यदि कोई आपात-स्थिति आए तो वह सफाचट सिर के स्थान पर बालदार नजर आएँ। श्रीमती शर्मा ने अपनी खुन्नस में उनकी टोपी छिपा दी। सुबह-सुबह टोपी को नियत स्थान पर न पाकर शर्माजी झल्लाए, पर उन्होंने सोचा कि चाय पीकर आराम से उसकी खोज की जाएगी।

उन्होंने अपनी समझ से हर संभव स्थान पर, यानी बिस्तर पर, उसके नीचे तथा आसपास टोपी की तलाश की। पर वहाँ होती तो मिलती, वह तो उनके कपड़ों की अलमारी में किसी ने जान-बूझकर छिपा दी थी। उन्होंने दफ्तर की तैयारी में श्रीमती शर्मा से गुमशुदा टोपी का जिक्र किया यह कहते कि 'बिना विग' वह दफ्तर कैसे जाएँगे? श्रीमती शर्मा ने चुप्पी साध ली और ऐसे बैठी रहीं, जैसे उन्हें टोपी और उसके खोने से कुछ लेना-देना नहीं है। इधर शर्माजी मन-ही-मन चिंताग्रस्त थे कि दफ्तर जाने का ही नहीं, उनकी सामाजिक छवि का भी सवाल है।

छुट्टी बचाने वह दफ्तर चले भी जाते, यदि वहाँ आशा न होती। आशा उनकी महिला-मित्र है। वह भी शादीशुदा है, शर्माजी के समान। दोनों अपनी वैवाहिक स्थिति का रोना रोकर कैंटीन में हिल-मिल के लंच ही नहीं खाते, साथ-साथ इंडिया गेट तक टहलते भी पाए गए हैं। पत्नी की चुप्पी से शर्माजी का शक गहरा गया कि टोपी-वारदात में श्रीमती शर्मा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कौन कहे, उन्हीं ने कहीं गायब कर दी हो? उन्होंने दबी जुबान अपनी पत्नी से प्रार्थना की कि टोपी खोजने में उनकी मदद करें। श्रीमती शर्मा उनका नाश्ता और लंच बनाने में बिना किसी उत्तर के लगी रहीं।

एक तो दफ्तर न जाने से आशा से भेंट न होने का दु:ख, दूसरे असली सिर दिखा तो जग-हँसाई का भय। उन्हें धीरे-धीरे गुस्सा आने लगा, अपनी स्थिति पर। नाश्ता करते-करते उन्होंने फिर श्रीमती शर्मा पर सीधा आरोप लगाया, ''घर में हमीं दोनों हैं। या तो तुमने छिपाई है टोपी या फिर हमने कहीं फेंक दी है। हमने ऐसा कुछ नहीं किया है, इसलिए शक की सुई तुम्हारी ही तरफ घूमती है। अब भी बता दो, प्लीज, टोपी कहाँ है?''

श्रीमती शर्मा बुत बनी बैठी रहीं। यकायक शर्माजी अपने आपे के बाहर हो गए। पहले उन्होंने हाथ का कप फर्श पर पटका, फिर उठकर श्रीमती शर्मा का गला पकड़ा। वह भी इस अनपेक्षित आक्रमण से धराशायी हो गई। उनका चश्मा भी आँख से उतरकर गिरा। पर टूटा नहीं। कई चश्मे इनसान के समान बेशर्म भी होते हैं। ''कहीं टोपी तुमने कपड़ों की अलमारी में तो नहीं रख दी।'' उनका बोल फूटा।

सीधा गिरने से उनका सिर फर्श से टकराया था। उसमें खून झलक रहा था। शर्माजी ने अपनी टोपी पहनी, फिर पत्नी की चोट का निरीक्षण किया। खून देखकर वह कुछ सकपकाए। कहीं यह बवाली महिला चल न बसे? वह डरे कि उन पर गैर-इरादतन हत्या का आरोप न लगे। उन्होंने तुरंत टैक्सी बुलाई और श्रीमती के साथ अस्पताल रवाना हुए। वहाँ डॉक्टर ने थाने को फोन कर पुलिस बुलवाई, क्योंकि शर्माजी सिर के खून की वजह बताने की जगह हकलाने लगे। पत्नी की मरहम-पट्टी करवाकर उसे उन्होंने घर रवाना किया और वह थाने हाजिर हुए।

तब से वह रोज थाने जाते हैं। हर बार थानेदार साहब की वसूली के शिकार होते हैं। पत्नी से मिन्नत-माफी माँगकर उन्होंने यह बयान भी दर्ज करवा दिया है कि ''वह यकायक चक्कर खाकर गिर पड़ी थीं। शर्माजी ने तो उनकी जान बचाई।'' तब से शर्माजी घर और थाने, दोनों में, जबरन वसूली का कार्यक्रम चालू है। उधर थानेदार केस नहीं बंद कर रहा है, इधर पत्नी रोज नई फरमाइश कर उनकी जेब पर डाका डालने पर उतारू है। कई बार वह आशा के सामने इस शोषण का रोना रो चुके हैं। वह भी उनसे हमदर्दी जताने में पीछे नहीं है। इस त्रासदी से, अब दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर पीड़ा को कम करने के प्रयास में जुटे हैं। फिलहाल प्रेम की पेंगें बढ़ाने के लिए सुरक्षित स्थान की तलाश जारी है।

इधर पारिवारिक दंगल एक आम दुर्घटना है, जैसे लोग लाल बत्ती के बावजूद निकल लें। देखने में आया है, निष्ठावान पुत्र वह तभी तक है जब तक माता-पिता पर उसकी आर्थिक निर्भरता है। एक बार नौकरी लगी और पिता-माता समय के साथ सेवा-निवृत्त हुए, तब से व्यवहार बदलता है। अब भी कुछ गनीमत है। बूढ़े ने इतना पैसा कमाया है। सब बैंक में जमा है। 'आना तो उसी के पास है', सोचकर थोड़ा-बहुत लिहाज है। दो फ्लैट भी हैं। एक में बूढ़े-बुढ़िया खुद रहते हैं, दूसरे का किराया आता है। बेटा भी अपनी पत्नी के साथ माँ-बाप के यहाँ रहकर किराया बचा रहा है। आयु के बढ़ते माता-पिता कुछ बीमार रहने लगे हैं। वह मन-ही-मन बुजुर्गवार को कोसता है। वक्त-बेवक्त उन्हें अस्पताल ढोता है। उस श्रवणकुमार के मन में कभी-कभी यह खयाल भी आता है कि बूढ़ा इतना सता रहा है, कंबख्त टैं क्यों नहीं बोलता है? यों न माँ ने, न पिता ने उससे अपनी वसीयत की चर्चा की है, पर वह आश्वस्त है। दो बहनों का विवाह हो चुका है। एकमात्र वारिस वे है जब से उसकी बहनों को पिता की बीमारी की खबर लगी है, वे भी अकसर फोन करती रहती हैं और कभी-कभार टपक भी पड़ती हैं। आते वक्त उनका खूब स्वागत होता है और जाते वक्त रो-धोकर विदाई। एक बहन के दो पुत्र हैं, दूसरी के एक बेटा और एक बेटी। दोनों का 'हम दो, हमारे दो' का आदर्श परिवार है। नाना-नानी को इनसे बेहद लगाव है।

एक वकील पिता के बचपन के साथी हैं। वसीयत उन्हीं ने बनाई है। आधुनिक श्रवणकुमार 'चाचा' से मिलते रहते हैं, पर वसीयत का जिक्र नहीं होता है। अचानक एक दिन पिता को दिल का दौरा पड़ता है और उनका प्राणांत हो जाता है। समाचार की त्रासद गाज गिरते ही घर के बेटी-दामाद पहली फ्लाइट पकड़कर पधारते हैं। स्थानीय रिश्तेदारों का ताँता तो लगना-ही-लगना है। वकील साहब एक प्रकार से घर के सदस्य जैसे हैं। उनका आना-जाना तो होता ही होता है। घर की दोनों बेटियाँ रुक जाती हैं, माँ को साथ और सांत्वना देने के लिए।

उनके पति तेरहवीं तक, फिर आने के लिए, अपने-अपने शहर लौटते हैं। सब अपनी-अपनी व्यस्तताओं में गुम हैं। जब खून के रिश्ते तक लोभ और लालच पर निर्भर हैं तो बाद के बने संबंध कैसे सगे हों? पति की मृत्यु के बाद का सारा खर्चा पत्नी के जिम्मे है। श्रवणकुमार ने तेरहवीं का सारा प्रबंध अपने परिचित 'केटरर' को सौंप दिया है, इस निर्देश के साथ कि बिल वह बीस परसेंट बढ़ाकर दे और अतिरिक्त राशि उसे सौंप दी जाए। भुगतान करने को तो माँ है ही। खर्चे के अनुमान से श्रवणकुमार की बहनों का माथा ठनकता है। उनकी माँ को कहीं लूटा तो नहीं जा रहा है? वह अपने भरोसेमंद भाई के केटरर की ज्यादती को

बताती हैं। वह आश्वस्त करता है कि कीमत गुणवत्ता के कारण है। पिता के श्राद्ध में क्यों कंजूसी हो?

तेरहवीं के बाद वकील चाचा, परिवार को एकत्र कर, वसीयत को सार्वजनिक करते हैं। बैंक का जितना जमा या फिक्स डिपोजिट है, उसके चार हिस्से होंगे। एक बेटे को और बाकी दो बहनों और उनकी माँ को। फ्लैट का किराया यथावत् माँ के पास आता रहेगा और आवासीय पलैट भी उन्हीं के नाम रहेगा। श्रवणकुमार वसीयत से स्तब्ध हैं। बूढ़ा जाते-जाते चोट कर गया। उसकी बहनों को आभास रहा होगा, तभी बार-बार फेरे करती थीं बीमारी के दौरान। इतनी सेवा के बाद उसे क्या मिला—न फ्लैट की मिल्कियत, न किराए की। आमदनी है तो उसकी माँ की। जो कदम उठा सकता था क्रोध में, वह उसने उठाए। बहनों से अन-बोलाचाली हो गई, जीजाओं से चिढ़। गुस्सा तो माँ पर भी आया। इस प्रकार की वसीयत का विचार उन्हीं का रहा होगा या फिर उन्होंने पति की हाँ में हाँ मिलाई होगी। यह भी सच है कि पिता को अपनी बेटियों से बेहद स्नेह था। फिर भी, माँ इन्हें नाइनसाफी की वसीयत से रोकने में पूरी तरह सक्षम थी, पर चुप रहीं। यह दंगल तो बिना हो-हल्ला और हिंसा के संपन्न हो गया, पर कुछ पारिवारिक दंगलों में मार-पीट भी हो जाती है। संयुक्त परिवारों के विघटन के बाद क्या अब परिवारों की बारी है? कौन कहे, धीरे-धीरे 'हम दो, हमारे दो' में यह प्रदूषण फैले? फिलहाल यह एक अपवाद है, पर कब तक? कुछ ज्ञानियों की मान्यता है कि समय के साथ मनुष्य-निर्मित मूल्य भी बदलते हैं। वह आशावादी हैं। उनकी मान्यता है कि उन्नीसवीं सदी के जीवन-मूल्यों में इक्कसीवीं सदी में कुछ-न-कुछ बदलाव तो होना ही होना। समय न जाने कितने परिवर्तनों का मूक साक्षी है, हम दंगल-युग के मुखर। पर उसका अंत भी वक्त के साथ निश्चित है। आजकल तो परिवारों में फ्री स्टाइल कुश्ती है। न पिता को पुत्र बख्शते हैं, न भाई को भाई। कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र इकाई के समान जीवन बमुश्किल ही बिता पाता है। किसी-न-किसी पर निर्भरता एक आयु के बाद अनिवार्य है। इसीलिए संबंधों की होने और निभाने की रवायत है। माँ-बाप ही पाल-पोस के बच्चों को बड़ा करते हैं। खून के रिश्तों का सहारा स्वाभाविक है। युवा सोच में क्या यह प्रौढ़ता आएगी? विद्वानों को भरोसा है कि ऐसा होकर रहेगा।

किसी 'क्राइसिस' या क्रांति के दौरान उलट-फेर और अराजकता होनी ही होनी है। पर उसके बाद अमन-चैन भी लौटना है। यही रिश्तों के साथ है। संबंध आज परिवर्तन के चक्रव्यूह में फँसे हैं। उसकी पेचीदगी से दो-दो हाथ कर कभी-न-कभी निकलेंगे और फिर अधिक प्रभावी और टिकाऊ होंगे। कौन कहे, फिर रिश्तों का मंगल-युग भी आकर रहे? पर वर्तमान की बात करें तो दंगल ही दगल है परिवारों में। यही दुखद प्रवृत्ति दुनियाभर में व्याप्त है। रिश्तों का बढ़ता क्षरण शायद हमने यूरोप-अमेरिका से ही आयात किया है। यों रूस भी इससे अछूता नहीं है। यह संसार के इतिहास में परिवार का क्षरण-अध्याय है। समय के साथ-साथ इसमें परिवर्तन की संभावना है। क्या युवा पीढ़ी तात्कालिक लोभ-लालचों से ऊपर उठ पाएगी?

साअ
९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

रेवा तोरे रेत कनों में रमता मन

● नर्मदा प्रसाद सिसोदिया

सुपरिचित ललित-निबंधकार। चार कविता-संग्रह (साक्षरता, पर्यावरण, रेडक्रॉस पर आधारित) तथा हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में निबंध तथा यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित। नर्मदा के घाटों एवं सतपुड़ा पहाड़ का भ्रमण। कई स्थानीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

यह अहसास तो हिया में रुमुक-झुमुक रहा है। भीतर-भीतर एक लहराव है। हाँ, बारिश की बूँदों के टिपका-टिपका टपा-टप, टपा-टप पड़ते ही धूली फूली नहीं समाई थी। सुरसुरी ने बादल की थैली की सरपूँद जो उसकारी कि सूत के तार सिरज उठे। फिर झरझराहट भरा झंझावात जो चला कि चौगान भर आई। हाँ, तो तरबतर होने का मन हुआ तो उघाड़े-पुघाड़े होकर बहते सोता में खेलना कितना आनंददायक था! हाँ, जी बहती हुई पतली सी धार से छने हुए रेत कनों का पुल्ला बाँध लेना, फिर पाल से पानी के उतरते ही बहती रेत को पसा-पसा में भर-भरकर फिर पुल्ला रोकने का बचपन का वह खेल आँखों में रमा हुआ है—

रेवा के उथले जल पर दोपहर में धुपकली की रंग-रेखाएँ उतरते ही रेवा का रूप तो मन मोह लेता है और साँझ उतरते ही गोधूली की धूप घाट पर रँगोली माँड़ती है। भुनसारे में रेत कनों में काँस का कूचा लेकर रेवा की धार में कसेंड़ी चोघीचट चमचमाती है। रेत के घोरे पर बैठे बच्चे चिल-बिल कर रहे हैं। हाँ, पैरों को गीली रेत में धाँसकर पंजे के ऊपर तक रेत को गदेली से दबाकर धीरे से पैरों को हटाते हुए घरौंदे बना रहे हैं। पोली आकृति को कुरेदकर गहरा करते जाते हैं। इसी घरौंदे के सामने खेल-खेल में सड़क-पुल, सुरंग, बाँध, मालगोदाम, भवन बनाते हुए प्रकृति के बीच नन्हे हाथ कैसे रमे हुए हैं!

तो नर्मदा के दक्षिण तट पर है यह होशंगाबाद का पोस्ट ऑफिस घाट। और नजदीक में है हर्बल पार्क। हाँ, माई की बगिया। यहाँ से बागली नदी तक कोमल-कोमल रेत का बिछौना है। रंग-बिरंगी सतरंगी है जी। यही भाव जेहन में है, सो धीरे-धीरे पायती-पायती कगरिया से लचकते-लदकते उतरा हूँ माई की तलहटी में। तरी है सो ओल चढ़ आई है मखमली छुअन से, पगथली में सिहरन भर आई है। टुहुक है कि निगाह भर देख रहा हूँ कि ढिक पर हर्बल पार्क में रेतीली माटी की तासीर में ही वृक्षों को पुस्ताई मिली है। सो अब इन वृक्षों ने भैराट रूप ले लिया है। कुछ वृक्षों की छाया तो तरी में उतर आई है। हाँ, रेत मिलमाँ माटी उलात से तरबतर हो जाती है तो उतनी ही फुरती से बतर भी आ जाती है। किनारे के छोटे-छोटे नाने-नाने गोपटाओं को पालने-पोसने में माई तो मगन है। और जी हाँ, माई के रेत के सुनहरे कण, भूरकण, मटमैले कण, धौले-धौले कण के सुर से सुर मिल जाते ही तुरतई हजारों रूपों का विस्तार होता है।

ओ हो! जी और ये हजारों रूपों से आवेष्ठित है दूर निगाह तक फैला हुआ जुगला का रेत टापू। नर्मदा ने अपने आँचल में कैसे-कैसे छिपाया है कि जुगला के दोनों ओर से बहती है माई। कैसा-कैसा! वात्सल्य है माई का। जुगला का यह आदरास्पद रूप तो आँखों में टुकली सजाता रहता है। माई ने कैसी जमा कर रखी है इतनी सारी रेत। शायद सारी नदियों में रेत चुक जाएगी, तब यह गुप्त बुखारी आड़े दिनों में काम उरकाएगी। बाबरी घाट के उत्तर तट और दक्षिण तट से मैंने पैदल चलकर किनारे से खूब निहारा है। नर्मदा के बीचमबीच में कई मीलों तक सुनहरी एकदम धुली हुई स्वच्छ महीन रेत सिगासिग भरी हुई है। दो हजार अठारह तक मैंने कितने ही बार इन रेत के थापों को निहारा है। कल-कल करती निरमल धाराएँ तो जुगला को थपथमाती हुई प्रवहमान हैं।

और कुछ नानी सी धाराएँ ठुमुक रही हैं। इनके बीच से मैंने ठुमा भर रेत उठाकर निहारा जी, कितने रंगों में, आकारों में, प्रकारों से सजी सबरी है प्रकारांतर से। छोटे-छोटे शंख-सीपी हैं। छन्ना से छनकर मोटी-पतली बजरी तो किनारे में छूटी हुई है। कीड़े-मकोड़ों ने किरकिन्ना मांडे हैं। तो रेत पर सरसराती लिपियाँ हैं। तो ये कहीं-कहीं उछली सी कहीं बिछली सी। पर गीली रेत में खोज के छापे उरेहे हैं। कहीं पानी से भरे हुए हैं गीली रेत के खोज। हाँ, स्वच्छ छने जल में है यह प्रतिकृति। और उमगती उथली धारा के प्रवाह में सरसती रेत से पाँव-पाँव चलने की सुखानुभूति तो साँसों में सरगम भरती रहती है।

और मेरी साँसों में संपट नहीं बँध पा रही थी, जब मैंने पूरी समझ की आँखों से कोई आधा कोस फैले हुए रेत के पाट से विस्तारित तवा नदी को देखा। यह स्थान है बांद्राभान। आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जी। सोच रहा था, इतना लंबा-चौड़ा पाटवाला तवा नर्मदा में कैसे समाया होगा? थोड़ा चिंतन चला। हाँ, हिया से उत्तर फूटा जी, 'हाँ, नर्मदा की गंभीरता में तवा का उथलापन समाहित हो गया।' पर तवा के उथले-चौड़े पाट में बस रेत ही रेत भरी हुई है। नर्मदा से मिलते-मिलते रायपुर और चपलासर गाँव के बीच नीचे तली की खूब गहराई तक अपार रेत भरी हुई है। हाँ, अक्षय रेत का अद्‌भुत-अद्‌भुत भंडार। तो बरसात में जगबोला के समय तवा उपहारस्वरूप इसी रेत खजाने से

नर्मदा का खोला भरता है। मैं अब सोच में पड़ गया हूँ कि लोक ने इसके उथलेपन और फैले हुए पाट के कारण तवा नामकरण किया है। तो यह उथला है पर! कितना उदार है कि बांद्राभान में विशाल रेत भंडार के साथ नर्मदा में विलीन हो जाता है, नर्मदामय हो जाता है। तो बांद्राभान के दक्षिण तट पर तवा से मथी-मथाई रेता का विशाल क्षेत्र है। हाँ, इसी रेत के बिछोने पर स्व. श्री अनिल माधव दवे के संयोजन में नदी महोत्सव आयोजित हुए हैं। मंथन हुआ है। मथते-मथाते हैं माथा-पच्ची होती है पर! समाज के सुर-से-सुर जुड़ते ही नहीं। तो हम देखते हैं सहायक नदी तवा अपना स्व अहं विसर्जित करते हुए नर्मदा से जुड़ती है।

नदियों से जुड़ने का महाभाव तो मेरे हिया में बचपन से है। हाँ, जी हरहराती हिलोर उठती है—तो इसी संगम स्थल बांद्राभान से कोई छह किलोमीटर ऊपर दक्षिण में तवा के विस्तृत पाट पर एक किलोमीटर लंबा पुल है। मैंने ७ अगस्त, २०१२ के जगबोला में तवा की वनस्पति को धुलते देखा था। और संयोगत: २०१३ में बाबई में पदस्थापना होने पर होशंगाबाद से बाबई जाते समय तवा के एक किलोमीटर लंबे पुल को बस से पार करते हुए जाना होता था। समय का चक्र चलता है जी, ७ अगस्त, २०१२ के बाद तवा और नर्मदा में पूर आई ही नहीं। पर २०१२ से २०१८ तक के इन छह वर्षों में तवा की रेत का रूप देखते हैं तो गहरा अवसाद उपजता है। इस अवधि में रेत का खूब दोहन हुआ है। खदानें उलीची जा रही हैं। ऊबड़-खाबड़ हो रहा है चौड़ा-चकला पाट। पुल के दोनों ओर की उस मनोहारी रूपराशि पर जैसे काजल उरेह दिया हो। हाँ, जी, वनस्पतियाँ छछल आई हैं। तवा नदी का फैला हुआ विस्तृत पाट कॅजी, काई, छारी से आच्छादित है। तो कॅजी-काई जमते-जमाते कछार हो जाना है। रुपहली रेत तो पुल के दोनों ओर अब है ही नहीं। पुल के आर-पार बड़े-बड़े रेत के भीमकाय ढेर बरसात के पहले लगाए हैं। तवा के होशंगाबाद की ओर के तट पर भवानी कुंज है। और तवा के बाबई की ओर के तट पर माखन कुंज है आँखों में। तो भवानी प्रसाद मिश्र और माखनलाल चतुर्वेदी, ये दोनों आज जीवित होते तो क्या कहते? शायद यही कि नदी अपना पेट चीरकर ही भला किसी-न-किसी का पेट भर रही है। तवा के पुल से सरसराती बस निकलते ही कारूआँ सुनते हैं कि कूलती-कँजारती नदी की कारुणिक कुहेलिका भर है। नदी की छाती को चीरते हुए रेत के डंफरट्रक भी तवा के पुल से धड़धड़ाते भोपाल जाते हैं। पर नदी की छाती में थोड़ी ठंडक तो आई है कि आज २१ दिसंबर, २०१८ के दैनिक भास्कर में समाचार छपा है, 'बाबई माखननगर में १७ ओवर लोड ट्रक डंफर पकड़े हैं। तौल काँटों ने बताया कि तादाद से ज्यादा रेत भरी थी।' जुर्माना लगाना नैतिकता है। पिछले दिनों रेत पर खूब राजनीति हुई, पर बेचारी नैतिकता कुआँ-खाई के बीचोबीच पिस रही है। भोली-भाली जनता तो सड़क किनारे डंफरों से बुरबुराती रेत में फिसलती रहती है। डंफरों की दुर्घटना के दर्द से नर्मदा माई की छाती में लपट उठती है। रेत चोरी के चुरफंदे से माई को चुरचुरा लगा रहता है। और माई यह भी देख रही है कि रेत भराई में जेसीबी मशीनें चल रही हैं। तो मजूर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। माई का जी 'कल-कल' करता है। ओ हो! जी माई का 'कस' निकल रहा है और वे मालदार तो खनखनाते कलदार बटोर रहे हैं। सिलक जोड़ रहे हैं। और हम सुबक रहे हैं, आँखें छलछला आई तो हिया से हूक सिरज आई—

तवा की ढी पे कुकुड़-मुकुड़ बैठे, टुकुर-टुकुर देखें डोकरा डोकरी।
जे.सी.बी. चल रई न मिले मजूरी, उघारी भई टूटी सी छानी छपरी॥

और इन्हीं टूटी सी छानी में बैठे मजूरी करनेवालों के द्वारे पर जब नर्मदा परिक्रमावासी रात्रि विश्राम के लिए सहारा चाहते हैं, तब बड़े ही आदर-सम्मान के साथ नर्मदा परिक्रमावासियों की सेवा करते नहीं अघाते। मैंने १० जनवरी से १६ जनवरी, २०१७ तक नर्मदा सेवा यात्रा के दौरान दुधी के संगम से होशंगाबाद तक पैदल यात्रा करते हुए जाना और १८ जनवरी, २०१८ से बस द्वारा २२ दिन में नर्मदा संपूर्ण परिक्रमा करते हुए सजूगर आँखों से लोक के महाभाव को देखा कि 'नर्मदा मैया, तेरी हो रई जय जय कार' की गूँज का शब्दातीत उछाह है। यह कहना समाचीन है कि नर्मदा की देह में पगडंडी, गोया, गढवाट, गुठान, घाट, पूजा-पाठ, मेला-ढेला, अलाव-चौपाल, गीत-बाद्य और खेती बाड़ी में अदम्य लय है। लोक कह उठता है, 'सुन्ने की दोई बनी रे कगरिया, हीरा लाल जड़े री माई।' तो कह सकते हैं दुर्लभ जिजीविषा है माई की। इधर गढवाट की धूलि में सिर भराई करते नर्मदा दर्शन के लिए कुटुंब-कुनवा संग गाते-बजाते जा रहे हैं, हिया से चौसर धार फूटती है—

नर्मदा मैया तेरे चरणों की धूल,
जा रेता धूली मोहे प्यारी लगे।
उड़-उड़ धूल मोरे माथे लगे,
नमन करू भरपूर॥

मन तो रेवा की रंग धूलि में रमना चाहता है, बस इतना ही है कि फूल पखरी का नमन है और यह नमन घाटी में व्याप्त है तो मिलने का उछाह भी है। हाँ जी, सतपुड़ा से निकलनेवाली सहायक नदी-शक्कर, दुधी, मोरन, गंजाल हथेड़ रेत और पानी की झिर नर्मदा में छोड़ती हैं। तो नर्मदा में इन सहायक नदियों से रेत बहकर आती है। पर यह जानें कि रेत का सृजन कैसे होता है। सहायक नदियों में रेत कैसे आती है?

ओ हो! जी रेत के सृजन का वह प्राकृतिक स्वरूप के दर्शन करते

हुए मैं तो अभिभूत हूँ। मेरी सेवानिवृत्ति जनवरी २०१६ से तीन वर्ष पूर्व ही पचमढ़ी के चौराबाबा से नीचे के 'नादिया' गाँव में चुनाव ड्यूटी लगी थी, तब सतपुड़ा पहाड़ की उन अलौकिक शंक्वाकार श्रेणियाँ को देखा तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। हवा, पानी, धूप के प्रभाव से चट्टानें घिसघिसकर रेत कण बिखेर रही हैं। यही कारण है कि पहाड़ की श्रेणियाँ शंक्वाकार हो गई हैं। हजारों वर्षों से रेत का कितना सृजन हुआ होगा तो नोनी सी, सलोनी सी एक दिल निखालिस रेत लेकर पंचमढ़ी, क्षेत्र के नाने-नाने सोता बरसात में सरसते हैं, फिर नाले वेदरा में रेत छोड़ते हैं। और ये नाले बेदरे देनवा में रेत छोड़ते हैं, और देनवा तवा का भंडार भरती है।

और इधर सिवनी मालवा के पास सतपुड़ा पहाड़ के बूढ़ीमाई के जंगल में १९ फरवरी, २०१० को पैदल चला हूँ। तो देखा अडूली गुत्थम-गुत्था होती चट्टानों के पिघलने से शिलाजीत की बूँदें टपकती हैं और उपकार है चट्टानों का कि चटक धूप में चिटककर खिर-खिर कर सोने के कनों का रूप ले लेती हैं। जंगल की जूनी ग्वाड़ी, कोदूबाली ग्वाड़ी मग्गरपाटी, जामुन पाटी में फैली रेत बरसात के दिनों में सोनापानी, डुलारा, ठूँठा आम नाला, चीरा पत्थर नाला, भूरा पानी नाला, मग्गरपानी नाला, त्रिशूल पानी नाला जैसे नाले बहाकर ले जाते हैं। बूढ़ीमाई के दक्षिण में मोरन नदी में बैतूल जिले की दून नदी बहाकर छोड़ती है रेत। और काजल नदी भी मोरन को उपहार देती है। और ये मोरन भी गंजाल नदी को रेत की भेंट प्रदान करती है। और गंजाल भी सारी रेत साथ लेकर गोदागाँव गगेसरी घाट पर नर्मदामय हो जाती है। रेत कनों का यह लालित्य मैंने लोखरतलाई गाँव से बूढ़ीमाई के पहाड़ होते हुए हथेड़ नदी के गोलनडो और मानाटेकर तक देखा है। और सतपुड़ा पहाड़ से निकलती हुई अनेक नदियों की तासीर से रेत के परिवहन को जाना है। चट्टानों के घिसने-टूटने की प्रक्रिया को गुना है। प्राकृतिक गतिविधि चलती रहती है, प्रकृति की रेत सृजन-लीला के वे क्षण तो अद्‌भुत-अद्‌भुत रहते हैं। हाँ जी, क्या बताऊँ? नम हैं आँखें तो थोड़ा गुनगुनाऊँ—

सतपुड़ा तपे सपरे तबई शिला-शिला, खिरे-खिरे, झुरे-झुरे, थोरी-थोरी,
रूमुक-झुमुक रेला चले रे उढ़ेलें, झोरा-झोरी रेनु की झारी-झारी।

रेत कनों की मृदुल स्मृतियों की सरणियाँ तो अब झुरती रहती हैं। हाँ, मामा के गाँव काथड़ी से बैलगाड़ी से नर्मदा के गोदागाँव गगेसरी घाट से नाव से उत्तर तट उतरे थे तो खूब जल में भींगकर रेतकनों में लोट लगाने का वह किशोर वय आनंद है आँखों में तो अपने गाँव रतवाड़ा से टिगारिया घाट जाने की पगडंडियाँ बिसूरती ही नहीं। हथेड़ नदी को उलाककर जाने की उलात है तासीर में और जैसे कल ही तो यात्रा पर गया हूँ, इसी भाव से रेवा के आँवलीघाट, भिलाड़िया घाट, बाबरी घाट मेरे हिया में रमे हुए हैं। और भोली सी हुलस तो बाबली हुई जा रही हैं—बालमन की स्मृतियाँ मलकनी मारती हैं, गोद में लेने को। तो दस-बारह बरस की कच्ची उमर में उमगती तवा नदी को मैंने देखा था। हमारे गाँव रतवाड़ा सोनखेड़ी से कृष्णा बाई हमारी भानजी के विवाह में सीहोर जिले के नांदनेर गाँव बैलगाड़ी से ममीरा लेकर गए थे। तवा के कच्चे पुल से हमारी बैलगाड़ी पार उतरी थी। बैलगाड़ी से उतरकर चमकती चिलचिलाती रेत की मसर से पैर धँसते-धँसाते चले थे। वह साफ-सुथरी रेत का मनोहारी रूप आँखों में टुहुक भरता रहता है। हाँ जी, फिर तवा की ढिक से बैलगाड़ी में बैठकर नर्मदा के ढाना घाट पहुँचे। यहाँ की मखमली रेत पर हमारी बैलगाड़ी छूटी। पल्लेपार से नाव आने तक नर्मदा के रेतकनों पर खेलने-कूदने का आनंद तो बस आँखों-आँखों में ही है। और खेल-खेल में थोड़ी-थोड़ी रेत उलीची तो उसकारते ही नानी सी झिरिया में झिर फूट पड़ी थी। जरई में रेत की कारीगरी से पानी छन गया था। ओक से मीठे जल को सुड़क लेने के उस निष्कपट महाभाव में रमने की मलमली आती है। स्तुत्य है कि झिरिया में रेवा माई का दुलार ही तो था।

और अब तो रेत उलीचते-उलीचते हाथ-पाँव थरथरा जाएँ, पर पानी का थाव नहीं मिलता। यदा-कदा धारा फूट पड़ी तो कूलती-कँजारती ही क्षणभर में अलोप हो जाती। ओ हो! अरे, कहाँ चला गया वह रेत का फैला हुआ पाट। होशंगाबाद में नर्मदा के इस पोस्ट ऑफिस घाट पर आँखें गड़ाकर देख रहा हूँ। रेत का वह छह वर्ष पूर्व का विस्तारित फैलाव तो अब झाड़ी झुरमुट से अँटा-अँटाया है, काँस-कुंदा दोंगली, छुरिया जमीन तलाश रही हैं। किनारे पर केल मुछेल की फुनगी सरसने को है। अरे! जी अब तो गुड़माडू जड़ें तो रेत कनों पर आच्छादित है, सो माई के गहना गुरियाँ-सीपी-शंख गढ़नेवाले जल जीव तो हिरा गए हैं। हाँ, मलकती धाराएँ अब उमलती जा रही हैं, सो रेत का वह मनोहारी रूप कहाँ है? बस कीचा-काई से सना हुआ है पाट का जल। हम देख रहे हैं कि आव की रेत तो अखेटी कर ली। और अब 'आँखों का तारा' जुगला की अकूत रेत अमेठने की आवभगत कर रहे हैं। सिगासिग रेत से भरे जुगला के थापों की सिग मुंडी करने की जुगत में हैं। बची-खुची रेत निकालने के लिए तनातनी मची हुई है। तो तमतमाते हैं तमगेधारी, आँखें तरेरते हैं कि रेत भी पानी के पैकेट की तरह पैकिंग पैकेट में बिकने लगे। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं।' यह खेल ही तो है। और इधर बच्चे खेल-खेल में गीली रेत में घरौंदे के सामने सड़क पुल, माल, भवन बना रहे थे। बच्चों का तो खेल था, पर सच्चाई यही है कि इन विकास के नवनिर्माणों की आपाधापी को हम सब सजग आँखों से देख ही रहे हैं, कैसी होड़ा-होड़ी मची हुई है कि रेत भंडारों का दोहन हो रहा है। हाँ, राजस्व, रोजगार, रोकड़ी का रुमुक-झुमुक रेला चल रहा है। रेत रिरया रही है। हिचकोले खाते-खाते पोस्ट ऑफिस घाट की तरी से निकल रहा हूँ, देख-देख हिलकियाँ आई हैं तो लटालूम बुँदिया लरक आईं—

रेवा तोरे रेत कनों में रमता मन।
कैसे बचाएँ मैया, ये तेरे रेता कन?

ऑफिसर रेसीडेंसी, कंचन नगर,
एस.पी.एम. गेट नं.-४ के सामने,
रसूलिया, होशंगाबाद (म.प्र.)
दूरभाष : ९९२६५४४१५७

महल और झोंपड़ी

मूल : **चिंता दीक्षितुलु**

अनुवाद : **बालशौरि रेड्डी**

तेलुगु भाषा के सुप्रतिष्ठित लेखक चिंता दीक्षितुलु बाल-मनोविज्ञान के ज्ञाता होने के कारण शिशु-साहित्य की रचना में एक परंपरा बनाई है। जीवन का अधिकांश समय अध्यापन-कार्य में व्यतीत करते हुए उन्होंने अनेक बालोपयोगी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। उनके शिशु-पात्रों में 'सूरी-सीती वेंकी' को आंध्रवासी कभी भूल नहीं सकते। वर्तमान समाज की शिक्षिता नारी पर उनकी लिखी हास्यरसपूर्ण 'वटीरावु कथलु' आधुनिक नारी-जीवन की अद्‌भुत व्याख्याएँ हैं। 'एकादशी' उनका प्रथम कहानी-संग्रह है। 'गोदावरी नव्विंदि' (गोदावरी हँस पड़ी) उनकी प्रसिद्ध कहानी है। पंडित नेहरू की 'विश्वइतिहास की झलक' का उन्होंने तेलुगु-रूपांतर किया है। उनका कहानी-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे पाठशाला-निरीक्षक रहे। यहाँ उनकी एक चर्चित कहानी दे रहे हैं।

उस गली में एक बहुत बड़ा महल है! उस रास्ते से जानेवाले लोग सिर उठाकर महल की ओर देखने लगते हैं तो फिर झुकाने का नाम नहीं लेते। चकित होकर ही रह जाते हैं।

वे सब उस महल के सौंदर्य को देखते हैं या इसमें बसनेवाले धन-देवता को देखते हैं अथवा इसमें रहनेवालों की कल्पना में लीन हो जाते हैं—यह कहना कठिन है।

उस महल के चारों ओर इसी का आसरा लेकर और कई मकान बने हुए हैं। उनमें दुतल्ले मकान भी हैं, झोंपड़ियाँ और पर्णशालाएँ भी हैं! उस भवन की बगल में रामचंद्रजी का एक मंदिर है। वह ऊँची अट्टालिका गगन-मंडल से मंदिर की ओर गुस्ताखी से देखती हुई दिखाई देती है। ऐसा मालूम होता है कि उस अट्टालिका दृश्य को देख संकोचवश रामचंद्रजी एक कोने में दुबककर बैठे हुए हैं।

उस महल का निर्माण धन-संपत्ति ने किया। पर झोंपड़ियों और पर्णशालाओं आदि का निर्माण आन और इज्जत से हुआ। मंदिर का निर्माण भक्ति के परिणामस्वरूप हुआ।

उस महल के आश्रय में अनेक लोग हैं, जो सदा रुपयों की झनझनाहट में मग्न दिखाई देते हैं। उन रुपयों की झनझनाहट में उन्हें बगल के रामचंद्रजी के मंदिर में होनेवाला घंटा-घड़ियालों, शंख तथा तुरियों का नाद सुनाई नहीं देता। बगल के कुटीरों में रहनेवाले शुभ्र हृदयों के परिमल की तो वे सुगंध भी सूँघ नहीं पाते हैं।

इस अट्टालिका में घोंसला बनाने के लिए एक भी गौरैया नहीं आती। उस महल की छत पर आराम करने के लिए एक कबूतर तक नहीं फटकता। गाय भी उस भवन के सामने नहीं ठहरती।

किंतु इधर उन झोंपड़ियों में कुछ मानव निवास कर रहे हैं। उन झोंपड़ियों के छज्जों में कुछ गौरैये अपने नीड़ बनाए हुए हैं। उन झोंपड़ियों के पार्श्व में उगे हुए पेड़ों पर तोते वार्त्तालाप करते हैं। नीचे मेमने शौक से खेलते हैं।

वहाँ पर मनुष्य, पशु-पक्षी सभी बिना भेदभाव के निवास कर रहे हैं।

मंदिर में जब से श्रीरामचंद्र की मूर्ति प्रतिष्ठित हुई है, तब से प्रतिदिन रामचंद्र की चरण-सेवा करने उन झोंपड़ियों के मनुष्य उस मंदिर में इकट्ठे होते हैं।

रामचंद्रजी के दर्शन के माध्यम से धनदेवी लक्ष्मी की उपासना करने और वरदान-स्वरूप लक्ष्मीजी की प्रसन्नता प्राप्त करने के हेतु महल के लोग फूल-फल, वस्त्र इत्यादि रिश्वतें भगवान् को भेंट करने प्रतिदिन प्रातःकाल वहाँ पर पहुँच जाते हैं।

मंदिर के आलों में कबूतरों ने अपने नीड़ बनाए। मंदिर के सामने स्थित धान के बालों का गौरैये स्वेच्छापूर्वक उपभोग कर रहे हैं। मंदिर के गोपुरों पर तोते विश्राम करने बैठ जाते हैं और आत्मबोध पाते हैं। उस रास्ते से जानेवाली गाएँ मंदिर के सामने रुककर पलकों से नमस्कार कर आगे बढ़ती हैं। मंदिर की छत्रच्छाया में गौरैये सुख-शांति का असीम अनुभव करती हैं।

रामचंद्रजी के स्वर का अनुकरण करने में असफल तोतों को देख वे मुसकरा उठते हैं। उनके वसंतोत्सव के अवसर पर तूर्यनादों के साथ अपने स्वर मिलाकर कोयल उस उत्सव में अपूर्व शोभा का वातावरण

पैदा करती है।

भवन के निवासी बाजार से देवता की अर्चना के लिए जो फूल खरीदकर लाते हैं, उन्हें अपनी चोटियों में धारण करते हैं, झोंपड़ियों के आगे खिले हुए फूल रामचंद्रजी की देह का संपर्क प्राप्त कर पवित्र हो जाते हैं और फिर झोंपड़ियों के लोगों की चोटियों में गूँथे जाते हैं।

इसी भाँति समय बीतता जा रहा है। कुछ दिनों के बाद संक्रांति-पर्व आया। लोग प्रतिदिन रामचंद्रजी के उत्सव मनाने लगे। उन उत्सवों को देख पशु-पक्षी, मनुष्य—सभी वर्गों के लोग संतोष पा रहे थे। संक्रांति-पर्व के दिन सभी झोंपड़ियाँ सजाई गईं। झोंपड़ियों के सामने तरह-तरह के चौक पूरे गए, जो उस स्थान की शोभा बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए। महल भी अलंकृत हुआ। लेकिन मंदिर की तुलना में महल का अलंकार अस्वाभाविक व नकली जँचता था।

मंदिर दिव्य प्रकाश से दमक उठा। रामचंद्रजी का हृदय भक्तों की प्रार्थनाओं के परिणामस्वरूप महा समुद्र की उत्ताल तरंगों की तरह आनंद से भर उठा। उनके फैलाए हुए हाथों में जाकर असंख्य लोग दिव्य सुख का अनुभव कर सकते हैं। उस भगवान् के आलिंगन में समस्त लोक सिमट सकते हैं। उस आलिंगन की परिधि अनंत है। कल्पनातीत आनंद उस आलिंगन में समाया हुआ है और वह आनंद नया जीवन प्रदान कर सकता है। वैसा भव्य आलिंगन उस दिन रामचंद्रजी की अपार कृपा के कारण ही प्राप्त हुआ है।

झोंपड़ियों के लोग उस आलिंगन में फँस गए। तोते, गाय इत्यादि सभी भक्त आलिंगन का भोज पाकर सुख का अनुभव कर रहे हैं। लेकिन महल के लोग रामचंद्र के आलिंगन के सुख का तनिक भी अनुभव नहीं कर पाए। रामचंद्र के अलंकार मात्र को देख वे मुग्ध हुए।

मंदिर के सामने भी संक्रांति के निमित्त चौक पूरा गया था। इस पूरे हुए चौक में मंदिर के सामने विशाल रथ, घंटियों से सजे रथ तथा झंडियों से सजाए हुए रथ, सभी कलाओं से प्रकाशमान हैं। रथ फूलों से सजाए जाने के कारण अमित शोभा को प्राप्त हो रहा है। हल्दी और कुमकुम उन रथों की पावनता का परिचय दे रहे हैं। ऐसा लगता है, मानो उस पर रामचंद्रजी आसन लगाकर बैठे हुए हों। उस ऊँची अट्टालिका के सामने भी चौकापूरन है। रथ, सरोवर, कछुए, साँप, कुम्हड़े इत्यादि तरह-तरह के रँगीले चौके पूरे हुए हैं। उन पूरे हुए चौकों पर फूल हैं। वे सब ऐसे दिखाई दे रहे हैं, मानो ऊँघ रहे हों।

अत्यंत वैभव के साथ अलंकृत हुए अपने अलंकार को देख बगल की झोंपड़ियों की सजावट को भी उन्हीं आँखों से देखकर महल हँस पड़ा। झोंपड़ियाँ भी अपनी सजावट को देख ऊँचे महल के अलंकार को न देख सकने की हालत में मंदिर की तरफ झुककर प्रतिकार-स्वरूप हँस पड़ीं। इस पर क्रोधित हो महल ने पूछा, ''मुझे देख तुम क्यों हँस रही हो?''

झोंपड़ियों ने जवाब दिया, ''तुम्हारी हँसी के प्रतिकार में हम भी हँस रही हैं।''

महल ने छाती फैलाकर गर्व से कहा, ''मेरी मंजिलें विशाल हैं। उनमें सुंदर कला से पूर्ण स्तंभ हैं। महल की दीवारों पर के चित्र-विभिन्न रंगों से पुलकित होते दिखाई पड़ते हैं। महल के शिखर पर के गोपुर, लता इत्यादि अलंकारों से किरीट जैसी शोभा पा रहे हैं। समस्त सौंदर्य मुझमें समाया हुआ है। इन सबसे अधिक मेरी ऊँचाई है, जिसे तुम लोग आँख उठाकर भी देख नहीं पाओगी। अब मेरी हँसी का कारण तुम लोगों की समझ में आ गया न?''

झोंपड़ियों ने जवाब दिया, ''ओह, तुम अपनी उस उन्नति को देखकर शायद हँस रहे हो। किंतु उन मंजिलों का मिलान हमारे साहस के कारण ही हो सका है। कला से शोभित वे स्तंभ हमारे कौशल को ही प्रकट कर रहे हैं। प्राचीरों पर के वे चित्र हमारी सहनशीलता के उदाहरण हैं। तुम्हारे मुकुट को हमने ही प्रदान किया। तुम्हारी उन्नति हमारे द्वारा ही हुई है।''

''तुम्हारे साहस, कौशल व सहनशीलता को मैंने उचित मूल्य देकर खरीदा है। इसलिए अब उसकी बड़ाई तुम्हें नहीं करनी चाहिए।''

''हमारे कौशल तुच्छ धन से नहीं तुल सकते!''

इस वार्त्तालाप को सुन मंदिर हँस पड़ा। उस हँसी को सुन झोंपड़ियों ने शर्म के मारे सिर झुकाए।

उस हँसी को सुन महल अपार आनंदित हुआ।

बहुत समय बीत गया।

झोंपड़ियों के स्थान पर एक जंगल उगा। उस वन में फल, फूल, घास और पौधे फैल गए। सदाबहार फूलों के पेड़ों पर अब तितलियाँ, भ्रमर मँडराते और खेलते रहते हैं। फलों के वृक्षों पर अपने नीड़ बनाकर तरह-तरह के उनके फल खाकर गान करते रहते हैं। घास-फूस में छोटे-छोटे कीड़े, पक्षी निवास कर रहे हैं। वह समस्त जंगल सदा कलरव व कोलाहल द्वारा शोभायमान रहता है।

मंदिर की जगह एक पीपल का पेड़ उग आया है। वह वृक्ष आस-पास के समस्त प्राणियों को ठंडी छाया प्रदान करता रहता है। उस पेड़ के तने पर, शाखाओं और पत्तों पर पक्षी तथा अन्य प्राणी रहते हैं। उस वृक्ष के पत्तों की ध्वनि समस्त प्राणियों को थपकियाँ-सी देती रहती है।

बड़े महल के स्थान पर अब पत्थर के टीले हैं। उन टीलों के चारों तरफ कँटीली झाड़ियाँ उगी हैं, उनमें साँपों की बाँबियाँ हैं। रात्रि के समय उन टीलों पर उल्लू बोलते दिखाई देते हैं।

पीपल का पेड़ उन टीलों पर भी अपने फल गिराकर पेड़ उगाना चाहता है, लेकिन वे जानवर उन अंकुरों को उगने नहीं देते।

सा.अ.

('तेलुगु की लोकप्रिय कहानियाँ' पुस्तक से साभार)

संगीत और योग

• रेनू गुप्ता

ध्वनियों का वह समूह, जो हमारे अंत:करण को अंतरात्मा से जोड़कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है, 'संगीत' कहलाता है। यहाँ मुक्ति से तात्पर्य है जीवन के झंझावात से निकलकर, आकाशतत्त्व की ओर उड़ान। ऐसी उड़ान, जो स्वर्गिक आनंद का अनुभव कराती है और परमब्रह्म का दर्शन कराती है।

संगीत के जन्म को लेकर ऐतिहासिक परिदृश्य कुछ इस प्रकार है—

जिस समय सारी सृष्टि अंधकार के गर्भ में छिपी हुई थी, मानव व पशु जीवन में कोई अंतर नहीं था। उसी समय एक आश्चर्यचकित कर देनेवाले नाद ने समूची सृष्टि को गुंजारित कर दिया। यही 'अनहरद' नाद संगीत सृष्टि का मूलाधर है। हमारे वेद, शास्त्र एवं उपनिषद् आदि ग्रंथों का अस्तित्व इसी अनहद नाद पर अवलंबित है। यह अनहद नाद ईश्वर की वाणी से निसृत माना गया है। जिसको हमारे आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए ऋषि-मुनियों ने सुना और ग्रहण किया। 'भारतीय चिंतनधारा की एक बड़ी मौलिक विशेषता यह रही है कि सभी विद्याओं, कलाओं, शास्त्रों आदि का अंतिम लक्ष्य आत्मानुभूति माना गया है।' भारतीय परंपरा में संगीत कला को भी कला रूप में न मानकर उसे पूजा एवं तपस्या के रूप में स्वीकारा गया है। नाद को ब्रह्म का रूप मान योगी और महर्षियों ने इसे निर्गुण ब्रह्म का सगुण रूप कहा है। परात्पर ब्रह्म की अनुभूति प्रणव की साधना से अथवा नाद की उपासना से ही सिद्ध होती है। संगीत की शक्ति में दैवीय गुण स्वीकारे गए हैं—

नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देव: स्वात्मन: पर:।
नानुसन्धे परापूजान हि तृप्ते: परं सुखम्॥

अर्थात् नाद से बड़ा कोई मंत्र नहीं, आत्मा से बड़ा कोई देव नहीं, नाद के अनुसंधन से बड़ी कोई पूजा नहीं तथा तृप्ति से बड़ा कोई सुख नहीं है।

संगीत व योग दोनों की ही उत्पत्ति सामवेद से मानी गई है। योग का अर्थ है, जोड़ना। किन्हीं दो वस्तुओं के मिलन को योग कहा जाता है। आत्मा एवं शरीर को एकीकृत करनेवाली संयमन की क्रिया योग है। किंतु योग की क्रिया अत्यंत कठिन है। सर्व सामान्यजन योग साधना नहीं कर सकते, कोई बिरला व्यक्ति ही योग साधना में सफल हो पाता है। योगीजन अपार कष्ट उठाकर अनेक कठिन साधनाओं के उपरांत अनहद नाद की सिद्धि प्राप्त करते हैं—

शास्त्रीय व उपशास्त्रीय गायन की कलाकारा, जो सहसवान रामपुर व बनारस घराने से संबंध रखती हैं। संप्रति पं. राजन साजन मिश्रजी से विभिन्न गायन विद्याओं को समझने में प्रयासरत। पिछले २० वर्षों से दिल्ली विश्वविद्यालय में संगीत की शिक्षिका हैं तथा पी-एच.डी. की उपाधि हेतु शोधरत।

योगश्चित्त वृत्ति: निरोध:।

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। परंतु हम देखते हैं कि योग साधना में मात्र योग साधक की ही चित्त वृत्तियों का निरोध होता है, जबकि संगीत साधना में साधक अर्थात् संगीतज्ञ एवं श्रोता दोनों की चित्त वृत्तियों का निरोध होता है। संगीत श्रवण में श्रोता की तल्लीनता ही इसका प्रमाण कहा जा सकता है।

पं. ओंकार नाथ ठाकुर योग और संगीत की साधना में साम्य देखते हैं। उनके अनुसार—''योग साधना में नाद की इस परम महत्ता को देखते हुए योग सिद्धांत का संगीत के साथ प्रगाढ़ संबंध है इसकी सहज ही प्रतीति होती है। हाँ, दोनों में केवल एक स्थूल अंतर अवश्य है, और वह यह है कि योग में केवल अनहद नाद उपास्य है और संगीत में केवल आहतनाद का प्रयोग होता है।''

तत्रास्थितौ यत्नों ऽभ्यास:।

महर्षि पतंजलि के अनुसार—''चित्त की स्थिरता प्राप्ति के लिए किया गया यत्न अभ्यास है। संगीत अभ्यास द्वारा संगीत सिद्धि के साथ-साथ चित्त की स्थिरता भी आती है। संगीत सृजन के समय संगीतज्ञ का चित्त स्थिर होकर नाद ब्रह्म से तदाकर हो जाता है।''

मनुष्य की वाणी नाद का ही स्वरूप है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में जो गति होती है, वह 'ताल' को अभिव्यक्त करती है। नाद का अनुसंधान नाभि (मंद्र सप्तक), हृदय (मध्य सप्तक) एवं मस्तिष्क (तार सप्तक) से माना गया है। स्वर ध्यान, रियाज एवं शास्त्र शुद्ध पद्धति द्वारा नाद ब्रह्म की उपासना कर अंतर्मन में गहराई तक उतरना संगीत का मुख्य लक्ष्य है। जहाँ संगीत में स्वरों की शुद्धता पर जोर दिया जाता है वहीं योगशास्त्र में आसन व मुद्राओं पर जोर दिया जाता है। दोनों में स्वर और मुद्रा की उत्कृष्टता ही आनंद एवं स्वास्थ्य का लक्ष्य पूरित करती है।

देखा जाए तो दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

संगीत कला में गायन तथा वादन के अभ्यास हेतु एक लंबी अवधि तक एक ही मुद्रा में बैठना आवश्यक होता है। देखा गया है कि योग साधना करनेवाले योगी स्वयं को एक विशेष आसन में स्थापित करते हैं। इसे हम 'पद्मासन' कहते हैं। इसमें स्वयं की ऊर्जा का स्वयं ही भोग किया जाता है। हस्त मुद्रा में अँगूठे व तर्जनी अंगुली के गोलाकार मिलान द्वारा आंतरिक ऊर्जा को (जो उँगलियों के पोरों से बाहर जा सकती है) पुन: भीतर ही प्रवाहित किया जाता है।

पद्मासन के अंतर्गत एक साधारण मानव व संगीतज्ञ के लिए पैरों की साधारण स्थिति (चौकड़ी) का भी योग है। इस स्थिति में भी पैरों की अंगुलियों व देह के साथ पैरों के चक्रीय स्पर्श से देह की विशुद्ध ऊर्जा देह में ही रहती है तथा एक संगीतज्ञ इस ऊर्जा से अपने स्फूर्त मनस का बारंबार पोषण कर सकता है। संगीत में इस आसन से रीढ़ की हड्डी सीधी रहती है व नाभि से मस्तक तक 'अकार' (ध्वनि) शुद्ध रूप में यात्रा व कंपन कर सकता है। इससे सुर को साधने में सहायता मिलती है। योग शास्त्र में संगीत साधकों के लिए उपयोगी कई आसन व क्रियाएँ बताई गई हैं—शरीर संचालन, मक्रासन, प्राणायाम, ध्यान प्रार्थना आसन, पवन मुक्तासन, कपाल भाती, योग मुद्रा, ताड़ासन, भुजंग आसन, पश्चिमोतानासन, सर्पासन, सिंह आसन।

पुरातन काल से योग एवं संगीत के विज्ञान एवं दर्शन का गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा विकास किया गया है। योग शिक्षाओं को प्रभावी, सत्य और संपूर्ण होने के लिए, गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से ही आना चाहिए। संगीत में भी इस परंपरा का विशेष महत्त्व है। भारत में वैदिक काल से चली आ रही यह पद्धति अनुशासित, नियमित एवं संयत जीवन जीने का मार्ग सिखाती है।

सूफी इनायत खाँ के अनुसार—''भारतीय संगीत का उद्देश्य मनुष्य की बुद्धि एवं आत्मा को प्रशिक्षित करना है, क्योंकि ध्यान लगाने के लिए संगीत ही सबसे अच्छा रास्ता है। जब किसी व्यक्ति को किसी वस्तु पर ध्यान लगाने के लिए कहा जाए तो केवल ध्यान केंद्रित करने के प्रयत्न मात्र से ही उसका चित्त अस्थिर हो जाता है। पर संगीत आत्मा को आकर्षित करता है, चित्त को एकाग्र करता है।''

चित्त की एकाग्र होने की अवस्था ही योग की अवस्था मानी जाती है, अत: संगीत और योग में साम्य दृष्टिगोचर होता है।

५०, बैंक एन्क्लेव
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ९८१०८३८७२४

उनींदी आँखें

कविता

• बी.डी. बजाज

मेरे इर्द-गिर्द घोर-सन्नाटा है, बिजली भी गुल है
नींद भी बन गई है दुश्मन
धीमे-धीमे आ रही याद मुझे
वे खट्टी-मीठी स्मृतियाँ माँजी की
कुछ कर जातीं उदास
कुछ याद आता समय-समय का परिहास
एक चलचित्र घूम जाता मेरे जहन में
बचपन के साथी हो जाते रूबरू
राजनीति के दुष्चक्र में
जब विस्थापित कर दिए गए थे हम लोग
घोर संकट में कटे वे दिन
सँजोए सपनों को मिला विराम
कत्लोगारत का माहौल बना था
आजादी मना रहे थे जब स्थायी बाशिंदे इस देश के
खिला रहे थे मिठाइयाँ एक-दूसरे को
हम बुझाने को आग पेट की घूम रहे थे दरबदर
कुछ काम ढूँढ़ने, किसी नए आधार की तलाश में
फिर आया समय बासठ-पैंसठ और बहत्तर के युद्धों का
भूलकर अपनी दुश्चिंताएँ
देशभक्ति के महायज्ञ में
अपनी भी आहुति डालने
घुल-मिल गए ये जब जनजीवन में, सेवाकार्यों में
कैसे भूल सकते हम आपातकाल को
दुश्वारियाँ कदम-कदम पर
बंदी बना दिए गए थे जननेता
जनतंत्र का उड़ाया जा रहा था मजाक
लो आ गई लाइट, पंखा चल गया अकस्मात्
निकला स्मृतियों के गुंजल से मैं
सो गया गहरी नींद में
भूल गया अपना भूतकाल।

ए-८३ गुजराँवाला टाउन
दिल्ली-११०००९
दूरभाष : ९८९९२६३०३०

द्रोपा भाभी

● लवलेश दत्त

''द्रोपा खत्म हो गई।'' सुबह आँख खोलते ही माँ ने बताया, ''सुबह तीन बजे के करीब खत्म हुई। लोगों की भीड़ लगी है। तुम भी हो आना, मैं तो देख आई।'' जब तक मैं बिस्तर से उठता, माँ ने मुझसे कह दिया। दैनिक क्रियाओं से निवृत्ति पा मैं अपने घर से तीसरे घर में जा पहुँचा, जहाँ द्रोपा भाभी चिरनिद्रा में लीन थीं। उनके मृत चेहरे को एकटक देखना मुश्किल हो रहा था। दीर्घ कालीन बीमारी, दुःख, कुंठा और मानसिक वेदना के थपेड़ों ने उनके चेहरे को इतना कुरूप कर दिया था कि मैंने एक पल देखने के बाद तुरंत मुँह फेर लिया और अंतिम यात्रा का समय पता कर मैं घर लौट आया।

न जाने क्यों द्रोपा भाभी की मृत्यु से मन में एक शांति का अनुभव हो रहा था। ऐसा लग रहा था कि वह भाग्यशाली रही, जो कुछ समय में ही इस संसार को छोड़कर चली गई, वरना ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो जीवित रहने के लिए मृत्यु से भी भयानक दुःख झेल रहे हैं। दैनिक क्रियाएँ भी बिस्तर पर करने को मजबूर हैं। परजीवियों की तरह सदैव दूसरों की आस लगाए रहते हैं। ऐसे लोगों की देखभाल करनेवाले भी उनका मलमूत्र साफ करते-करते उकता जाते हैं और उनके मरने की कामना करने लगते हैं। द्रोपा भाभी के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ, लेकिन उन्होंने बहुत लंबे समय तक अपनी देखभाल नहीं करवाई। लगभग पंद्रह-बीस दिन पहले तक वे पूरी गली में लँगड़ाते हुए चक्कर काटती हुई दिखाई देती रही थीं। लेकिन एक दिन उन्होंने ऐसा बिस्तर पकड़ा कि फिर उनकी मिट्टी ही उस बिस्तर से उठी।

चौदह साल की द्रौपदी तीस साल के ओमप्रकाश के साथ इसी घर में बहू बनकर आई थी। नई नवेली साँवली दुलहन द्रौपदी खूब गोलमटोल थी। मोटे-मोटे हाथ और गोलगोल गालोंवाली द्रौपदी के चेहरे पर बालों की घुँघराली लटें लटकती थीं। उसकी एक झलक देखकर दुबारा उसे गौर से देखने कि लिए नजर न उठे, ऐसा हो ही नहीं सकता था। यही कारण था, जो एक शादी में द्रौपदी के गाँव गई ओमप्रकाश की माताजी का मन उस पक्के रंगवाली द्रौपदी पर आ गया। द्रौपदी के माता-पिता होते तो शायद दुगुनी उम्र के लड़के से द्रौपदी का विवाह न होता, लेकिन चाचा-चाची ने अपने सिर का बोझ उतारने के लिए बिना कोई न-नुकुर करते हुए ओमप्रकाश से द्रोपदी का रिश्ता पक्का कर दिया। सुना तो यह भी गया था कि ओमप्रकाश का चाल-चलन ठीक न होने के कारण उसकी शादी नहीं हो रही थी, सो उनकी माताजी ने पाँच-सात चाँदी के सिक्के द्रौपदी की चाची के हाथ में पकड़ा दिए। जहाँ दो वक्त का चूल्हा

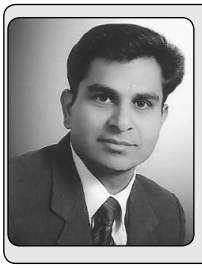

सुपरिचित कथाकार। अब तक 'भावत्रयी', 'तमन्ना', 'सपना', 'श्यामा' (कहानी-संग्रह) तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी रामपुर से कहानी वाचन एवं प्रसारण। लखनऊ में 'बोल्ट अवार्ड', 'विद्यासागर सम्मान', 'साहित्यश्री सम्मान'।

जलाने के लिए भी न जाने कितना यत्न करना पड़ता था, वहाँ सात चाँदी के सिक्कों के वजन से किसका ईमान नहीं डोल जाता। परिणामतः द्रौपदी ओमप्रकाश की हो गई। पहली ही रात द्रौपदी को इस बात का अहसास उस समय हो गया, जब ओमप्रकाश अपने अर्धविक्षिप्त भाई हरिओम को अपने बिस्तर में चिपकाए लेटा था। वह समझ गई कि ओमप्रकाश की शादी अब तक क्यों नहीं हुई। उसने अपने नसीब को बहुत कोसा, लेकिन अब क्या हो सकता था। नसीब भी सबका साथ कहाँ देता है। नसीब को अपने पक्ष में करने के लिए लोग न जाने कितनी तरह की घूस देते हैं, लेकिन फिर भी नसीब को मनाना आसान नहीं होता।

द्रौपदी की अगली सुबह का आरंभ उसके नए नामकरण से हुआ, जब सास ने उसे 'द्रोपा' कहकर पुकारा और देर तक सोने के लिए कोसा। सास की कर्कश आवाज ने किशोरी द्रोपा की गहरी नींद को ऐसी ठोकर लगाई कि उसके बाद उसे वैसी गहरी नींद मृत्यु से पहले शायद कभी नसीब नहीं हुई। नींद से उसका बहुत याराना था। खाया-पिया और बिस्तर पर लोट गई। चाची भी कई बार उसकी नींद के लिए कोसती थी और अकसर पानी डालकर या लात जमाकर उसे उठा देती थी। वह अधमुँदी पलकें लिये घर के कामों में लग जाती। सास की आवाज सुनकर वह हड़बड़ाकर उठी और कमरे से बाहर निकलते समय ओमप्रकाश की खाट पर नजर दौड़ाकर तुरंत उधर से नजर हटा ली क्योंकि ओमप्रकाश और उसका भाई आपत्तिजनक स्थिति में बेसुध पड़े थे। बिस्तर से नीचे पड़ी आधी रजाई उसने ओमप्रकाश के ऊपर डाल दी और कमरे से बाहर निकल आई। सुबह की हल्की-हल्की रोशनी आँगन में लगे पेड़ पर पड़ने लगी थी। पेड़ पर चिड़ियों की चहचहाट से पूरा घर भरा हुआ था और गोबर-मिट्टी से लिपा कच्चा आँगन चिड़ियों के टूटे पंखों, बीट और पत्तों से भरा था। पूरे घर को झाड़ू लगाकर साफ करके, नहा-धोकर वह बैठी ही थी कि सास ने उसे ओमप्रकाश को उठाने के लिए कहा। वह डरते-सहमते कमरे में गई, लेकिन वहाँ की स्थिति कुछ और थी, सो बिना कुछ कहे ही बाहर आकर सास के पास बैठकर सुबकने

लगी। सास को समझते देर न लगी। उसने द्रोपा से सिर्फ इतना कहा कि 'क्या किया जाए, अब तुझे ही ओमी को सुधारना है। मैं तो हार गई।' यह कहकर सास कमरे में गई और गाली-गलौच करते हुए ओमप्रकाश को बाहर घसीटकर ले आई। आँखें नीची किए ओमप्रकाश अपना अंडरवियर सँभालता हुआ सीधे शौचालय में घुस गया। उस दिन के बाद यह दृश्य अकसर उस घर में दिखाई देने लगा। द्रोपा ने भी अपनी किस्मत से समझौता कर लिया। आखिर लड़ने से उसे मिलता भी क्या? ओमप्रकाश एक दुकान पर काम करने लगा था। द्रोपा का दैनिक कार्य एक-सा था। सुबह उठकर घर की झाड़ू-बुहारी और रसोई। ससुराल वालों का चार समय का खाना दस लोगों के बराबर था, लिहाजा उसका पूरा-पूरा दिन रसोई में ही बीत जाता। समय अपनी गति पकड़कर बीतने लगा।

ओमप्रकाश के मँझले भाई विजय की नौकरी पक्की हो चुकी थी। वह अपनी पत्नी के साथ उसी घर में था, लेकिन उसकी रसोई अलग थी। विजय के अब तक तीन लड़कियाँ और एक लड़का हो चुका था। द्रोपा अपनी देवरानी से लगभग दस साल छोटी थी। विजय की बहू पेट से थी। उस दिन सुबह-सुबह सास दाई को बुला लाई। दाई के आने के लगभग दो घंटे बाद घर में किलकारी गूँज उठी। विजय की बहू ने चौथी लड़की को जन्म दिया था। चौथी बेटी सुनकर सास का दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया, लेकिन अपने कमरे में बैठी द्रोपा नवजात की किलकारी सुन पुलक उठी और देवरानी के कमरे की ओर लपकी कि चौखट पर खड़ी सास ने हाथ पकड़ लिया, 'न री···द्रोपा···अभी तो तेरी गोद नहीं भरी है, अभी तू लड़की की सूरत मत देख···नई नवेलियों को पहले-पहल लड़के की सूरत देखनी चाहिए, जिससे पैलोठी का लड़का हो।' बेचारी द्रोपा मन मसोसकर अपने कमरे में आ गई, हालाँकि उसका मन बहुत था कि देवरानी से मिले और नन्हीं कली को अपनी गोद में उठाए। चाची के सभी बच्चे उसने गोद में खिलाए थे। पर सास के हुकुम के आगे वह मजबूर थी। अपने कमरे में आकर उसने सास के वाक्यों पर गौर किया कि पैलोठी का लड़का हो···वह सोचकर लजा गई और अपने बच्चे को अपनी गोद में लेने की कल्पना से उसका साँवला चेहरा खिल गया। इतने में ओमप्रकाश भी दुकान से आ गया और 'रोटी दे' कहकर हाथ-मुँह धोने चला गया। वह रसोई में जाकर थाली सजाने लगी। ओमप्रकाश के सामने थाली रखकर उसने कहा, 'लल्ली आई है···' 'हूँ···पता है, अम्माँ कह रही थी कि तू लल्ला पैदा करना···' आँखें बंद करे रोटी के बड़े-बड़े कौर चबाते हुए ओमप्रकाश ने कहा। 'क्या है···हठो भी···' कहते हुए द्रोपा शरमा गई और उसने दो रोटियाँ ओमप्रकाश की थाली में बढ़ा दीं।

घर में नामकरण की तैयारियाँ हो रही थीं। पंडितजी आनेवाले थे। घर में चार लोग जुड़ेंगे। नाइन पूरे मुहल्ले में बुलावा दे आई। सास का मिजाज भी अब सामान्य हो चुका था। लड़की होने को लेकर चार-छह दिन बहुत नाराजगी जताई, लेकिन उसके बाद नवजात लाड़ली को गोद में लिए ही बैठी रहतीं। जलपान से लेकर खाना-पीना, पान-सुपारी सबकी व्यवस्था द्रोपा ने ही की। पंडितजी के पीछे-पीछे गली-मुहल्ले की औरतें भी आ गईं। उधर नामकरण के मंत्र शुरू हुए और इधर द्रोपा ने ढोलक बजाकर ऐसा गाना-बजाना किया कि पूरी गली ही नहीं, मुहल्ले की औरतें द्रोपा की मुरीद हो गईं। सास भी फूली नहीं समा रही थी। आज नाचती-गाती द्रोपा सबके मन को मोह रही थी। उसका साँवला रंग भी उसकी कला के आगे फीका पड़ने लगा था। विजय के दोस्त-यार भी दावत में शामिल होने के लिए आए हुए थे। उन्हीं में प्रेमशंकर भी था। बाहर बैठक में से उसने घुँघराले बालोंवाली द्रोपा को ठुमके लगाते देखा तो उसके मन के सरोवर में भी तरंगें उठने लगीं। 'एक बार द्रोपा भाभी को और देखूँ' यह सोचकर अंदर औरतों में चला गया और द्रोपा भाभी की दस रुपए से न्योछावर करके नाइन के हाथों में थमा दिया। साथ ही 'जियो भाभी जियो क्या नाचती हो···दिल ही ले बैठीं मेरी भाभी' कहता हुआ बैठक में वापस आ गया। यह घटना सबकी नजरों में सामान्य देवर-भाभी की चुहलबाजी थी, लेकिन प्रेमशंकर और द्रोपा के लिए यह सामान्य घटना नहीं थी।

उस दिन के बाद अकसर प्रेमशंकर घर आने लगा और द्रोपा से बातें भी करने लगा। सास अब लाडली को गोद में उठाए पूरे मुहल्ले में घूमती फिरती। देवरानी भी घर का काम करने लगी थी। सो द्रोपा को जेठानी बनने का सुख मिल रहा था। वह अकसर अपने कमरे में खाली रहती। ओमप्रकाश को खाना खिलाकर फिर अपने कमरे में आ बैठती। ऐसे में उसे प्रेमशंकर से बात करने का अवसर भी मिलने लगा। प्रेमशंकर पाँच-दस मिनट विजय के साथ बैठक में बैठकर सीधे अंदर आ जाता और द्रोपा भाभी के कमरे में घुस जाता। पति के प्यार से वंचित द्रोपा प्रेमशंकर की ओर आकर्षित हो गई। दोनों में क्या बातें होतीं, किसी को कुछ पता नहीं। हाँ, इतना अवश्य था कि ओमप्रकाश जब प्रेमशंकर को अपने कमरे में देखता तो खुद ही बाहर चला जाता। द्रोपा और प्रेमशंकर के संबंध के बारे में पूरी गली और फिर पूरे मुहल्ले में तरह-तरह की बातें उड़ने लगीं। लेकिन घर में प्रेमशंकर के आने और द्रोपा के कमरे में घंटों बैठने पर किसी को कोई आपत्ति नहीं हुई; यह सिलसिला सालों चलता रहा।

कुछ साल बाद विजय की बहू के पैर फिर भारी हुए। यह खबर लगते ही द्रोपा के तन-बदन में आग लग गई। एक वह है, जिसकी शादी के सात साल हो चुके थे, बच्चा होना तो दूर, उसका पति आजतक उसके साथ एक बिस्तर पर भी नहीं सोया था और दूसरी विजय की बहू है, जो छठी बार फिर पेट से है। मन की कलुषता धीरे-धीरे उसकी वाणी में आने लगी थी। विजय की बहू का बढ़ता पेट देखकर उसकी आँखों में चिनगारियाँ छूटने लगतीं और उसके सामने पड़ते ही वह झट अपने कमरे में घुस जाती।

इस बार जब दाई आई तो वह कमरे में ही पड़ी रही। बच्चे की किलकारी ने इस बार उसके शरीर में लाखों शूल चुभो दिए। सास ने थाली बजाई और लड्डू गोपाल के आने की सूचना दी। इस खबर ने मानो द्रोपा के कानों में पिघला सीसा उड़ेल दिया हो। सास ने कमरे के बाहर से ही द्रोपा को आवाज लगाई, 'अरी ओ द्रोपा, विजय के लल्ला को गोद में ले ले। हो सकता है, इस साल तेरे भी बच्चा हो जाए···लल्ला न सही लल्ली ही सही···कुछ तो पैदा कर, क्या निरबंसिया ही रहेगी।'

यह सुनकर ईर्ष्या और कुंठा की मारी द्रोपा को सैकड़ों साँप डसने लगे। वह अत्यंत आवेश में आ गई। उसे सास और ओमप्रकाश पर बहुत गुस्सा आ रहा था। वह बिजली की तरह लपककर आँगन में आ गई और सास पर चीख पड़ी, 'मैं निरबंसिया रहूँगी, शर्म नहीं आती अम्माजी यह बात कहते हुए···अरे अपने लौंडे को देखो, जिसे हाथ रखने की तमीज नहीं। वह क्या बच्चा पैदा करेगा? उसे कुछ आता ही नहीं। अरे वह तो···' इसके बाद उसने जो कहा, वह सबने सुना। सुनकर अपने कानों को अपनी हथेली से ढक लिया और कुछ दिन बाद भूल भी गए, लेकिन सास को ऐसी ठेस लगी कि शाम तक खाट पकड़ ली।

इस बार नामकरण खूब जोर-शोर से हुआ। होता भी क्यों न, दूसरा लड़का जो हुआ था। गाना-बजाना भी हुआ। द्रोपा नाची-गाई भी, लेकिन अब उसके नाचने में वह लचक और गाने में वह कसक नहीं थी। सब खुश थे, लेकिन सास और द्रोपा के मन खट्टे हो चुके थे। दोनों ने लोक-लाज के लिए पूरे कार्यक्रम में हिस्सा तो लिया, लेकिन भारी मन से। केवल लोगों को दिखाने के लिए। मेहमान जाते-न-जाते द्रोपा अपने कमरे में घुस गई। रातभर रोती रही और अपने नसीब को कोसती रही।

कुछ दिनों के बाद विजय अपने परिवार को लेकर हरिद्वार जाने की तैयारी करने लगा। छोटी बेटी के साथ बेटे का मुंडन भी हो जाएगा। इस आशा से माँ को भी साथ ले गया। द्रोपा घर में ही रुकी। ओमप्रकाश के दुकान जाने के बाद वह कमरे में बैठी ही थी कि प्रेमशंकर आ गया। प्रेमशंकर से अपने मन की सारी वेदना कहते-कहते वह फूट पड़ी और खूब रोई, इतना रोई की प्रेमशंकर उसे अपनी बाँहों में भरने को मजबूर हो गया। उसने उसे मुश्किल से चुप कराया और समझाया, लेकिन दोनों के शरीरों की गरमी आग में बदल चुकी थी और उस आग को शांत किया जाना अनिवार्य हो चला था। उसके बाद प्रेमशंकर तब तक प्रतिदिन आता रहा, जब तक परिवार के सारे लोग वापस नहीं आ गए।

उस दिन सुबह द्रोपा उठी ही थी कि उलटी और चक्कर के मारे उसका बुरा हाल हो रहा था। सास ने उलटी की आवाज सुनी तो एक पल को दौड़ी खुशी की लहर शंका में बदल गई। सास के माथे पर आईं सलवटें द्रोपा के चरित्र की सलवटों को पहचान गईं, क्योंकि वह ओमप्रकाश की मानसिक मंदता और पौरुषहीनता से परिचित थीं। लेकिन बदनामी के भय और परिवार में खुशी की लहर के कारण वह चुप्पी साध गई और यह राज उसके चेहरे की झुर्रियों में कहीं खो गया। उलटी की आवाज पर देवरानी ने झट आकर द्रोपा को गले से लगा लिया। द्रोपा भी खुशी के मारे फूली नहीं समा रही थी। समय का पहिया घूमता रहा और वह दिन आ गया, जब द्रोपा की गोद में भी नन्ही कली आ चुकी थी। ओमप्रकाश को लोग बाप बनने की बधाई दे रहे थे। दावत में शामिल होने आया प्रेमशंकर आज सास को बहुत खटक रहा था, लेकिन वह कर भी क्या सकती थी। उसकी किसी भी चिढ़ या ईर्ष्या से बड़ी बहू की गोद हरी होने की खुशी कहीं ज्यादा थी।

अब द्रोपा की सारी चिंताएँ मिट चुकी थीं। वह अपनी बच्ची के चेहरे को देख-देख इठलाती थी। उस नवजात के भावी जीवन के लिए हजारों सपने सजाती थी और रह-रहकर उसके गाल और माथा चूमती। उस दिन अपनी लाड़ली को नहला-धुलाकर अपने बगल में लिटाए लोरी गुनगुनाते-गुनगुनाते उसे नींद आ गई और वह भी ऐसी, जो बचपन में आया करती थी। नींद में उसे पता ही नहीं चला कि कब उसका गोलमटोल और मांसल हाथ उस दुधमुँही के मुँह और नाक पर आ गया, और दम घुटने से नवजात कन्या सारे सपने बटोरकर छू हो गई। जब द्रोपा उठी तो कलेजे के हजारों-लाखों टुकड़े हो गए। उससे रोया भी नहीं जा रहा था। बार-बार अपना माथा दीवार से मारती, अपने आपको कोसती और बाल नोचती रही, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ, जिसके जन्म पर जश्न मनाए थे, अब उसी नवजात के मातम की पीड़ा भला कैसे सही जाती? इधर उस नवजात की मिट्टी उठी और उधर सास ने भी आँखें मूँद लीं।

समय के तीव्र प्रवाह में द्रोपा के शरीर का मांस ही नहीं सूख गया बल्कि उसके चेहरे का आकर्षण भी जाता रहा। उसका साँवला स्निग्ध चेहरा रूखा हो चला था। बालों की लटें भी अब पहले जैसी नहीं रहीं। लटें तो थीं, लेकिन दुख और पीड़ा के दो पाटों के बीच में आकर वे अब घुँघराली नहीं रह गई थीं, सीधी और रूखी हो चुकी थीं। उसकी वाणी कर्कश हो गई थी। विजय की बच्चों को ही नहीं, गली-मुहल्ले के बच्चों को भी हर समय डाँटती और फटकारती रहती थी। इतनी गहरी वेदना ने उसे निर्मोही बना दिया था। ऊपर से अब प्रेमशंकर ने भी आना बंद कर दिया था। इन्हीं दिनों विजय की बड़ी लड़की का विवाह तय हो गया। वह विवाह की तैयारी को घूरकर और ईर्ष्यालु दृष्टि से देखती, किंतु परिवार के कारण वह उन सबमें बेमन से शामिल हो रही थी। विजय के दूर का रिश्तेदार फत्तू शहर में रहने आया हुआ था। शादीवाले घर में पचास काम होते हैं। उन्हें निपटाने के लिए जितने हाथ हों, उतने कम, इसलिए फत्तू शादी में हाथ बँटाने के बहाने कुछ दिनों के लिए विजय के घर आकर ठहर गया। यों तो दिनभर काम में निकल जाता, लेकिन रात में भोजन के बाद जब आँगन में औरतों की मजलिस लगती तो फत्तू उनके बीच बैठी द्रोपा से छेड़खानी करता रहता। पहले-पहल तो द्रोपा को उससे चिढ़ हुई, लेकिन धीरे-धीरे फत्तू की छेड़खानी द्रोपा के शुष्क चेहरे पर मुसकान बिखरने लगी।

शादीवाले दिन पहले तो द्रोपा ने बड़ी सादी-सी साड़ी पहनी, लेकिन जब फत्तू ने उसे टोका और कहा कि वह हरीवाली साड़ी में ज्यादा अच्छी लगती है तो पहले तो दिखावे के लिए उसने एक-दो बार मना किया, लेकिन जब मेहमान इकट्ठा हुए तो उसने हरी साड़ी पहन ही ली। फत्तू ने उसे देखते ही चुटकी ली, 'वाह भाभी, इस साड़ी में तो कातिल लग रही हो···' 'धत्त' कहकर उसने फत्तू की बाँह में नोच लिया। उसका नोचना था कि दोनों के शरीर तरंगित हो उठे। द्रोपा के शुष्क मन की बंजर धरती एक

बार फिर उर्वर हो उठी। शादी एक-दूसरे को कनखियों से देखते, चुहल व छेड़खानी करते निपट गई और उसके साथ ही निपट गई द्रोपा की जिंदगी की उदासी। अब उसे फत्तू का साथ मिल चुका था।

फत्तू तो उसी घर में रहता। दिनभर यहाँ-वहाँ आवारगर्दी करता घूमता और मौका पाकर द्रोपा के कमरे में घुस जाता। एक दिन फत्तू एक बड़ा-सा डिब्बा लिये घर में प्रविष्ट हुआ कि बच्चे खुशी के मारे चिल्ला पड़े, 'फत्तू चाचा टी.वी. ले आए'। उस दिन से घर में आए दिन वी.सी.आर. चलता और रात-रात भर फिल्में देखी जातीं। पूरा घर जब घुप्प अंधकार में बैठा फिल्में देख रहा होता, फत्तू और द्रोपा की अलग कहानी चल रही होती। एक दिन अचानक पता चला कि फत्तू कहीं बाहर चला गया। बहुत दिन बीतने के बाद भी जब फत्तू नहीं लौटा तो द्रोपा की बेचैनी बढ़ने लगी। उसके चेहरे पर चिंता की रेखाएँ और झुर्रियाँ अब साफ दिखाई देने लगी थीं। उसके चेहरे और शरीर से लगने लगा था कि कोई ऐसा गम है, जो उसे अंदर-ही-अंदर खाए जा रहा है। उसका पति ओमप्रकाश तो किसी दीन का नहीं बचा था, केवल खाना, सोना और पान चबाना ही उसका काम रह गया था। उसे द्रोपा के सुख-दु:ख से पहले ही कोई मतलब नहीं था, अब तो शरीर भी क्षीण हो चला था। दिनभर दुकान पर खपने के बाद रात में खाना खाकर दुनिया से बेखबर होकर सो जाता। द्रोपा अपना दर्द कहे भी तो किससे?

एक दिन द्रोपा सुबह नहीं उठी तो विजय की पत्नी रामवती उसके कमरे में गई। देखा द्रोपा का शरीर बुखार से तप रहा है और वह ऊल-जलूल कुछ बड़बड़ा रही है। रामवती और उसके बच्चों ने उसकी खूब सेवा की, जिससे वह रामवती और उसके बच्चों के प्रति स्नेह से भर उठी और उनके प्रति जो ईर्ष्या उसके मन में थी, बुखार के उतरते-उतरते वह भी खत्म हो गई। इसी बीच उसने रामवती को बताया कि 'उसने थोड़े-थोड़े करके कुछ पैसे इकट्ठे किए थे, जो उसने फत्तू को दिए थे कि वह अपनी कंपनी में रुपए जमा करके उन्हें दुगुना करके वापस करेगा। उसने यह भी बताया था कि रुपए जमा करनेवाले हर आदमी को कंपनी ईनाम में एक टी.वी. दे रही है। जब वह टी.वी. लाया तो उसे लगा कि फत्तू सच बोल रह है। उसने कुछ और पैसे फत्तू को दिए, लेकिन उन्हें लेने के बाद वह वापस नहीं लौटा।' इतना कहकर द्रोपा फूट-फूटकर रोने लगी। रामवती के प्रेम और आत्मीयता ने द्रोपा के घावों पर मरहम का काम किया और वह कुछ ही समय में ठीक हो गई।

अब द्रोपा अपने देवर के बच्चों के साथ हँसी-खुशी से रहने लगी थी। बच्चे भी दौड़-दौड़कर उसका काम करते। लेकिन उसके नसीब में खुशियाँ बहुत समय तक नहीं रहीं। एक दिन दुकान से ओमप्रकाश नहीं आया बल्कि उनका मृत शरीर आया, जिसे देखकर द्रोपा की हालत खराब हो गई। कपड़े सुखाने छत पर गई द्रोपा छत से जल्दी-जल्दी उतरते समय सीढ़ियों से गिर गई। इधर ओमप्रकाश की लाश धरती पर पड़ी थी और वह बिस्तर पर। ओमप्रकाश का क्रियाकर्म और द्रोपा का इलाज सबकुछ विजय और रामवती ने किया, लेकिन इलाज में न जाने कौन-सी चूक हो गई कि उसके पैर की हड्डी ठीक से न जुड़ सकी और हमेशा के लिए लँगड़ाकर चलने लगी।

बाहर के शोर से मैं द्रोपा भाभी के जीवन से बाहर आया। देखा, द्रोपा भाभी की अंतिम यात्रा आरंभ हो रही थी। जब उनका शव मेरे घर के सामने से गुजरा तो उन्हें अंतिम प्रणाम कर मैं उनकी अंतिम यात्रा में शामिल हो गया।

साअ
शिवछाँह, १६५-ब, बुखारपुरा,
पुराना शहर, बरेली-२४३००५ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४१२३४५६७९

पीपल का पेड़

कविता

• राजेंद्र पटोरिया

पीपल का पुराना
फैला हुआ पेड़,
इसने देखी हैं कई पीढ़ियाँ
आँधी-तूफान
गरमी, सर्दी, बरसात
सहते आ रहा है
झेलता है संकट
बाँटता है खुशियाँ,
इसकी छाँव में
लगते हैं खोमचे
हथठेलेवाले
बेचते हैं सामान
मोची सुधारता है जूता
साइकिलवाला
बनाता है पंचर
प्याऊवाला
पिलाता है पानी
पक्षियों को
देता है पनाह
चारों ओर वातावरण
रहता है ठंडा
लोग चबूतरे पर
चैन से सो जाते हैं
इसे गर्व नहीं है
सिर्फ सेवक की तरह
खड़ा है सुख बाँटने।
स्मार्टसिटी, सौंदर्यीकरण
के जुनून में
काटा गया यह महावृक्ष
इसके बलिदान को
लोगों के सुख को
किसी ने नहीं की
समझने की कोशिश,
सरकारी नारे
कितने हैं खोखले—
'पर्यावरण बचाओ, देश बचाओ!
पेड़ बचाओ, हरियाली लाओ!
पेड़ लगाओ, कर्तव्य निभाओ!
रहेगी हरियाली, आएगी खुशहाली!'
क्या हरे-भरे वृक्ष काटकर
सौंदर्यीकरण हो सकता है?

साअ
आजाद चौक, सदर
नागपुर-४४०००१
दूरभाष : ०९४२१७७९९०६

बड़ा लेखक बनने के सरल उपाय

● **अश्विनी कुमार दुबे**

किसी भी क्षेत्र में बड़ा होने के लिए कठिन और सरल उपाय होते हैं। समझदार लोग सरल उपाय अपनाते हैं और शेष लोग मेहनत-मशक्कत करते हुए आगे बढ़ते हैं। दूसरी तरह के उपाय कठिन होते हैं और उनमें समय भी बहुत नष्ट होता है। इस प्रकार आजकल किसी भी क्षेत्र में त्वरित सफलता पाने के लिए सरल उपाय अपनाने का चलन लोकप्रिय है। वह बात अलग है कि कभी-कभी सरल उपाय अपनाने के चक्कर में आदमी औंधे मुँह गिर पड़ता है। इस बात से ज्यादा डरने की जरूरत नहीं है, क्योंकि जब ऐसी स्थिति आती है, तब उससे उबरने के लिए भी सरल उपाय उपलब्ध रहते हैं। जब हर क्षेत्र में सफलता के लिए सरल उपाय अपनाने का दौर चल रहा है, तब लेखन का क्षेत्र इससे अछूता कैसे रह सकता है? यहाँ भी बड़ा लेखक बनने के सरल उपाय चलन में आ गए हैं, जिन्हें अपनाते हुए बड़े लेखकों की भीड़ बढ़ती चली जा रही है। जब सफलता की गंगा इतनी नजदीक बह रही हो, तब क्यों न उसमें लगे हाथ हाथ धो लिये जाएँ।

जब आपने साहित्य के क्षेत्र में बड़ा बनने के लिए सोच ही लिया है और प्रतिभा आपके पास धेले भर की नहीं है, तब नई कविता का क्षेत्र आपके लिए बहुत ठीक रहेगा। आप मनुष्य हैं तो सोचते जरूर होंगे, बस इतना आपके लिए पर्याप्त है। कवि बनने के लिए जरूरी है कि आप सोचिए और खूब सोचिए। क्या सोचिए? यह किसने पूछा? कुछ भी सोचिए, लेकिन सोचिए जरूर! जब आप लगातार ऊल-जुलूल कुछ भी सोचते रहेंगे तो आपके दिमाग में भब्बड़-सी मच जाएगी, समझिए कि आप अब कवि बनने लग गए हैं। अब इन विचारों के जंजाल को आप एक तरफ से अपनी डायरी में लिखना प्रारंभ कर दीजिए। यहाँ किसी अनुशासन और विधान आदि की जरूरत नहीं है। आप तो बस लिखते जाइए टेढ़े-मेढ़े किसी भी क्रम में। स्थानीय कवि-गोष्ठियों और सम्मेलनों में सम्मिलित होते हुए आपको स्वयं लगेगा कि शहर में आपके जैसे बहुत सारे लोग यही खटकरम कर रहे हैं और वे स्थापित कवि कहे जाते हैं। धीरे-धीरे आप भी वहाँ स्थापित होने लगेंगे। कभी-कभी आपको लग सकता है कि यार, जो मैं लिख रहा हूँ तथा दूसरे लोग कविता के नाम पर कुछ

सुपरिचित व्यंग्य लेखक एवं उपन्यासकार। 'घूँघट के पट खोल', 'शहर बंद है', 'अटैची संस्कृति', 'अपने-अपने लोकतंत्र', 'फ्रेम से बड़ी तसवीर', 'कदंब का पेड़' (व्यंग्य-संग्रह), 'जाने-अनजाने दुःख' (उपन्यास)। उत्कृष्ट लेखन के लिए भारतेंदु पुरस्कार, अखिल भारतीय अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार प्राप्त।

भी लिख रहे हैं, वह समझ में क्यों नहीं आता? इस झंझट में आपको पड़ने की कतई जरूरत नहीं है। तथाकथित नई कविता की यही तो विशेषता है कि वह कवि तो कवि, कवि के बाप के भी समझ में नहीं आती। आपको कवि बनना है कि नहीं? यदि सचमुच आपको कवि बनना है तो कविता को समझने की कोशिश कतई मत करिए। जैसे आपको अपनी कविता समझ में नहीं आती, वैसे यहाँ किसी को किसी की कविता समझ में नहीं आती, परंतु सब कवि हैं और कई तो महाकवि! आपको भी महाकवि बनना है न? तो लिखते रहिए ऐसे ही, जैसे लिख रहे हैं। लगातार! अब तक आपकी डायरी भर गई होगी? भर गई है। बधाई!

बड़े ही हर्ष की बात है यह। अब इस डायरी को किसी अच्छे टाइपिस्ट को देकर टाइप करा डालिए। लो, तैयार हो गया आपका पहला काव्य-संग्रह! प्रकाशन? इसकी फिक्र बिल्कुल मत करिए। ढूँढ़िए आपके आसपास कई प्रकाशक अपनी दुकान खोले बैठे होंगे। वरना आपके कवि मित्र कब काम आएँगे? वे इस दिशा में जरूर आपकी मदद करेंगे। सस्ते में छपा देंगे आपका कविता-संग्रह वहीं से, जहाँ से उन्होंने अपने कई कविता-संग्रह छपवाए हैं। थोड़ा-बहुत मोलतोल करना पड़ेगा, परंतु आपका कविता-संग्रह छप जाएगा। वाजिब दामों में। अब आपको अपने प्रथम काव्य संकलन का लोकार्पण समारोह कराना है। कराइए, शौक से कराइए। जैसा बजट, वैसा कार्यक्रम। मुख्य अतिथि को दिल्ली से बुलवाइए। वहाँ कई लोग इसी फिराक में बैठे हैं कि उन्हें कोई बुलाए। हवाई मार्ग से आने की बात कहेंगे, परंतु आपके लगातार आग्रह करने पर यह सोचते हुए कि किसी और को न बुला ले, वे तृतीय श्रेणी के मार्ग व्यय पर आपके

शहर में आ जाएँगे और आपने पीने-पिलाने की उचित व्यवस्था कर दी तो वे मंच से आपको मुक्तिबोध से बड़ा कवि सिद्ध कर देंगे। इस प्रकार पूरे शहर में आप कवि के रूप में खासे चर्चित हो जाएँगे।

अब तो आप स्थापित कवि हैं। आपका एक कविता-संग्रह प्रकाशित है। आपने कई समीक्षक मित्रों को उसकी प्रतियाँ भेजकर यत्र-तत्र उसकी बढ़िया समीक्षाएँ भी छपवा ली हैं। शहर में कोई भी साहित्यकार आता है तो आप उसे अपना प्रथम काव्य संकलन 'सप्रेम भेंट' करना नहीं भूलते। इन दिनों आपको लगता है कि कवि तो मैं हो ही गया हूँ, अब गद्य की विधाओं पर भी कुछ उपकार कर दिया जाए। इस संदर्भ में मेरा सुझाव है कि कहानियाँ इन दिनों खूब छप रही हैं। कहानी पर आपके द्वारा हाथ साफ करना आपके लिए ज्यादा उपयुक्त रहेगा। पर कहानी लिखी कैसे जाए? वेरी सिंपल! यह बहुत सरल सी बात है। आखिर हम आपको सरल उपाय बताने के लिए ही तो यह लेख लिख रहे हैं। आप अखबार पढ़ते हैं न? जरूर पढ़ते हैं। बस हो गया काम! अखबार में आप रोज चोरी, डकैती, बलात्कार, हत्या और जाने कैसे-कैसे सच्चे समाचार पढ़ते रहते हैं। ये समाचार ही तो आपके लिए कहानियाँ हैं। आप उन सभी महत्त्वपूर्ण समाचारों की कटिंग अपने पास सुरक्षित रखिए। फिर उठाइए एक-एक घटना को। क्रमशः उस समाचार में आपको पात्रों को फिट करना है बस! हो गई कहानी।

आजकल छप रही ढेरों कहानियों में सिवाय सूचनाओं के और क्या है? भाषा, संवेदना, विचार, दर्शन, शैली और किस्सागोई की अब कोई जरूरत नहीं। ये अतीत की बातें हैं। आप अतीत के चक्कर में बिल्कुल मत पड़ना, वह लंबा रास्ता है, कठिन और उबाऊ भी। आपको नया कहानीकार बनना है कि नहीं? बनना है तो प्रचलित और लोकप्रिय सरल उपाय अपनाइए और फटाफट प्रतिष्ठित कथाकार बन जाइए। पत्रिकाओं में अपनी कहानियाँ छपाने के गुर आप जानते ही हैं। संपादक भले ही गधा टाइप कोई भी हो, परंतु आप उसे युगप्रवर्तक कहिए। यत्र-तत्र उसे कार्यक्रमों में मुख्य अतिथि बनाकर बुलाते रहिए, वह लगातार अपनी पत्रिका में आपकी कहानियाँ छापता रहेगा। पत्रिकाओं में छपते रहने का दूसरा सरल उपाय है, पत्रिकाओं को अपने संस्थान या विभाग, जहाँ आप नौकरी करते हैं या अफसर हैं, वहाँ से फुल पेज के विज्ञापन यदा-कदा दिलाते रहिए। संपादक आपकी घटिया कहानी को बढ़िया बताकर जरूर छापेगा। इस प्रकार कम समय में आप बड़े कहानीकार बन जाएँगे। दर्जनभर कहानियाँ हो जाएँ तो उनका एक संकलन छपा डालिए। इस प्रकार पहले आप कवि हुए, अब कहानीकार भी हो गए। शहर की साहित्यिक बिरादरी आपको भलीभाँति जानने लगी है।

शहर में व्यंग्यकारों की लंबी जमात देकर आपका मन भी व्यंग्य लिखने के लिए अकुलाने लगता है तो व्यंग्य भी लिखना शुरू कर दीजिए। यहाँ भी आपको कोई दिक्कत नहीं आएगी। आजकल व्यंग्य का मतलब है, किसी भी घटना, समाचार या नेताओं की बयानबाजी पर त्वरित टिप्पणी। आज कोई घटना घटी, कल व्यंग्यकार ने उस पर व्यंग्य लिखा और परसों अखबार के कॉलम में छप गया, ऐसा आप नहीं कर सकते क्या? जरूर कर सकते हैं। आप स्थापित कवि हैं। नामी कथाकार हैं। भाषा में थोड़ा खिलंदड़ापन पैदा करिए और टिप्पणियाँ करना प्रारंभ कर दीजिए। इस प्रकार आपके व्यंग्य भी अखबारी कॉलमों में छपने लगेंगे। आजकल व्यंग्यकार इतने सजग रहते हैं कि उन्हें पूर्वानुमान रहता है कि किस घटना पर पक्ष और विपक्ष की क्या प्रतिक्रिया रहेगी। उन्हें यह पता होता है कि इस घटना पर किस प्रकार के बयान आनेवाले हैं। व्यंग्यकार अपना कॉलम पहले लिख मारते हैं, घटना पर पक्ष-विपक्ष के बयान बाद में आते हैं। इस प्रकार व्यंग्यकार बनने के भी मैंने आपको सरल उपाय बता दिए।

इधर आपके मन में अब कुलबुलाहट होने लगी है कि हो जाए कोई पुरस्कार अपने नाम भी। यह कोई बड़ी बात नहीं है। जब आपने कविता को साध लिया। कथाकार आप हो ही गए। व्यंग्यकार के रूप में भी लोग अब आपका नाम लेने लगे हैं, फिर पुरस्कार समिति वालों को पटाना कौन सी बड़ी बात है? यह तो आपके बाएँ हाथ का काम है। बाएँ से याद आया, आप कुछ दिनों के लिए वामपंथी हो जाइए न! विचारधारा वाले, जनवादी, प्रगतिशील टाइप कुछ भी। इसके लिए आपको करना कुछ नहीं है। यह भी आपको जानने की जरूरत नहीं है कि विचारधारा क्या है? आपको बस संगठन ज्वॉइन करना है। मेंबर भर बनना है आपको, अपने शहर की जनवादी या प्रगतिशील लेखक संघ की स्थानीय इकाई का। अब आप विचारधारा वाले लेखक हो गए, बिना विचारधारा को जाने। साहित्य के क्षेत्र में पुरस्कार चीन्ह-चीन्ह कर दिए जाते हैं। पुरस्कार समिति में लोग वामपंथी हैं तो वे अपनी विचारधारा वाले घटिया लेखक को भी समिति का बड़ा पुरस्कार अवश्य देंगे। यहाँ कृति पर नहीं, कृतिकार के स्वभाव, सेवा और भविष्य में उसके द्वारा मिलनेवाले लाभों को देखते हुए पुरस्कार दिए जाते हैं। इस शैली को आपके द्वारा साधना कौन सी बड़ी बात है? आदान-प्रदान की संस्कृति से आप भलीभाँति परिचित हैं ही। गैर-वामपंथी समितियों के पुरस्कार भी इसी शैली को अपनाने से मिलते हैं। तो जब जैसा मौका आप देखें, उसी अनुरूप अपने आपको ढाल लीजिए, फिर साहित्य के क्षेत्र में बड़े पुरस्कार प्राप्त करने से आपको कोई नहीं रोक सकता।

कवि, कहानीकार, व्यंग्यकार सब तो हो गए आप। साहित्य के कुछ बड़े पुरस्कार भी आपने हथिया लिये। अब आपकी उम्र भी हो चली होगी। निश्चित है, युवा तो आप होंगे नहीं, अधेड़ हो चले होंगे। साहित्य में पकी हुई उम्र का बड़ा महत्त्व है। इस उम्र में पहुँचकर हर लेखक किसी भी कार्यक्रम में अध्यक्ष और मुख्य अतिथि बनने का जुगाड़ जमाने लगाता है। आप भी जमाइए। आखिर हर कार्यक्रम में आयोजकों को अध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि की दरकार रहती ही है। शहर के बड़े नामों में अब आपका नाम शुमार हो गया है। उम्र भी आपकी अध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि बनने लायक हो गई है। अब तक

शहर में आपके कुछ चेले-चपाटे जरूर बन गए होंगे। उन्हें समय-समय पर आप जरूरी ज्ञान देते रहिए। वे हर समिति में आपके नाम की सिफारिश करना नहीं भूलेंगे। पहले आप किसी भी कार्यक्रम में अध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि बनने के लिए नखरा करिए। अपनी व्यस्तता का रोना रोइए, फिर समितिवालों के विनम्र और बार-बार के आग्रह को स्वीकार कर कार्यक्रम में जाना सहर्ष स्वीकार कर लीजिए।

अब आप सचमुच बड़े लेखक हो गए हैं। बड़े लेखक की साहित्य जगत् में चर्चा भी होनी चाहिए। चर्चित होने के लिए आपको संस्मरण लिखने पड़ेंगे। यहाँ कई लेखक ऐसे हैं, जिनके लेखन कार्य से उन्हें कोई नहीं जानता, परंतु उनके संस्मरण प्रकाशित होते ही वे रातोरात चर्चा में आ गए। आपने एक लंबा जीवन साहित्य में गुजारा है। निश्चित है, आपके संबंध, संपर्क, दोस्तियाँ, मनमुटाव और आपके कठिन संघर्षों की दास्तान आपके पास है। उसे लिख डालिए। अब समय आ गया है, संस्मरण या आत्मकथा टाइप कुछ लिखने का। लिख डालिए। मत चूको चौहान। यहाँ 'सत्य के प्रयोग' जैसा कुछ भूलकर भी आप मत लिखिएगा। मनगढ़ंत बातें, रसदार किस्से और कुछ भी विवादास्पद लिख मारिए, यही यहाँ सार्थक लेखन माना जाता है।

लो, अब आप चर्चित लेखक भी बन गए। ये सरल उपाय आपके बहुत काम आए। आगे और लोगों के लिए भी ये उपयोगी सिद्ध होंगे। आमीन!

५२५-आर, महालक्ष्मीनगर
इंदौर-१०
दूरभाष : ९४२५१६७००३

अटारी पर अभिनंदन

कविता

• श्रीधर द्विवेदी

वर्ष दो हजार उन्नीस
मार्च का पहला दिन,
अटारी बॉर्डर पर
गाल पे तिरंगा
भाल पे तिरंगा
हाथ में तिरंगा
हृदय में तिरंगा
हर ओर तिरंगा,
अपार जन समुद्र
आकुल निमग्न हो
अभिनंदन प्रतीक्षारत।

यह दृश्य था निराला
जय हिंद का नजारा
आँखों में हर्षाश्रु
कुछ लोग थे करुणाश्रु,
कुछ लेकर टीका-पुष्प
कुछ अभिनंदन चित्र
कुछ लगा रहे थे घोष
विजय का उद्घोष
आतंक के प्रति रोष
बस एक ही संतोष
वायुवीर आज लौट रहा था।

हर सीने में आग
सकुशल वापसी की चाह
इंद्रदेव का उछाह
पूरे देश में उत्साह,
जाति-धर्म-भाषा
उत्तर-दक्षिण का भेद
हो गया पूर्णतः लुप्त
ईर्ष्या-द्वेष सब विलुप्त
हर गाँव हर गली हर मोड़
भारत माता की जय
कहीं दीवाली कहीं होली कहीं लोहड़ी,
हर जीभ पर बस एक यही स्वर
कब लौटेगा मेरे देश का शूरवीर?

हर कंठ से उठती बस एक ही बोली
अभिनंदन-अभिनंदन!
दोपहर को आना था
फिर शाम की बात हुई
अब तो बीटिंग रिट्रीट भी बीत गई
गाड़ियाँ आती रहीं जाती रहीं
लोगों की धड़कनें बढ़ती रहीं
पाकिस्तान नाटक करता रहा
शेर का वीडियो बनाता रहा
सियासी लोग उठापटक करते रहे
पर जनता अटारी पर डटी रही।

आखिरकार नौ बजने को आया
जब शेर नजर आया
शानदार मूँछें
सीना तानकर मंद-मंद मुसकराया,
साथियों ने उसे सर-आँखों पर बिठाया
पूरा भारत खुशी के सागर में तैर गया
पाक षड्यंत्र के तानेबाने बुनता रहा
अटारी अपने अंतस्तल में
अटल की पूर्व लाहौर यात्रा
अभिनंदन की अमिट यशोगाथा
स्वर्णाक्षरों में अंकित करता रहा।

ऐसे हुआ फागुनी एक मार्च का पटाक्षेप
वायुवीर अभिनंदन के अदम्य पराक्रम
प्रत्युत्पन्नमति की पराकाष्ठा
इतिहास भावी पीढ़ियों के लिए
वीरगाथा लिखता रहा।

चिकित्सा विषय पर हिंदी में लिखनेवाले प्रतिनिधि लेखक। नई दिल्ली स्थित जामिया हमदर्द के 'हमदर्द इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज एंड रिसर्च' में डीन व प्राचार्य पद पर कार्यरत। 'हृदयवाणी' (काव्य-संग्रह), 'तंबाकू चित्रावली' प्रकाशित।

हमदर्द इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस ऐंड रिसर्च
एसोसिएटेड हकीम अब्दुल हमीद सेंटेनरी हॉस्पीटल
जामिया हमदर्द (हमदर्द यूनिवर्सिटी)
नई दिल्ली-११००६२
दूरभाष : ९८१८९२९६५९

निराशा में आशा की किरण

• अंजू अग्रवाल

नवोदित लेखिक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। कविता कोश में ७० से अधिक कविताएँ संकलित। संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के राजनीतिक विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत।

साजिश

सामनेवाली बिल्डिंग से चाँद
हर रोज झाँकता था
कुछ सितारों को चूमकर
पलभर में गायब हो जाता था।
मेरी माँ भी
मेरे ख्वाबों में आकर
मुझे चूमकर
रोज भाग जाती है।
मैं उसे अपने
पुराने दीवानखाने में ढूँढ़ती हूँ
जहाँ उसके हाथ की तसवीर
अभी भी लटकी है।
उसके सामनेवाले बेडरूम में
मकड़ियों ने कब्जा कर लिया है
उनके पकड़े रहने के बाद भी
घड़ी आज भी
टिक-टिक-टिक कर रही है।
बगलवाले रसोईघर में
कबाड़ी से ली
बड़ी सी कलमकारी की कढ़ाई
काली पड़ने के बाद भी
शोभा बढ़ा रही है।
पपड़ी लगी दीवार पर
दादी की तसवीर के ऊपर
चंदन की माला
अधटूटी सी लटकी
मेरी पोती को
आकर्षित कर रही है।
टॉयलेट के उस पार
की सीढ़ियों में सन्नाटा है
जहाँ पर
महीनों से चढ़ी धूल
चप्पलों से झड़ने के इंतजार में
किसी साजिश का
शिकार हो रही है शायद!

सकारात्मक सोच

रात के अँधेरे में
अपने बिस्तर से दूर
जब उन पीली बत्तियों को
जगमगाते हुए देखती हूँ
तो ऐसा लगता है कि
नाकामयाब कोशिशों में
उम्मीद की किरण
जगमगा रही है
निराशा में आशा की किरण
दिखाई दे रही है
मानो कह रही हो
मत हो निराश हम हैं ना,
आगे बढ़ो, चले आओ
पत्ते हटाओ, डालियाँ हटाओ
कदम बढ़ाओ, मिट्टी में पैर
धँस भी जाएँ तो भी न रुकना
आगे बढ़ना, हम हैं ना।
चले आओ,
वो बिजली के टावर
दूर चलती गाड़ियाँ
जिंदगी के चलते रहने का
एहसास करा रही हैं
रुकने ना पाओ, चले आओ।
नीला आसमान और
उसमें चमकते सितारे
वो रोज चाँद का निकलना
और सुबह होते डूब जाना
जता रहे हैं, जिंदगी रुकती नहीं।
निराशा को मत आने दो
आशावान बनो
कितनी सुंदर लगती हैं
वो पीली-नीली बत्तियाँ!
दाईं तरफ पीली-लाल
बाईं तरफ पीली-पीली
उस सामने वाली बिल्डिंग में
लगता है वहाँ भी कोई
बालकनी में बैठकर
मेरी तरह मेरे घर की
जगमगाती हुई बत्तियों को
देख रहा है
जैसे मैं उसकी बत्तियों को
देख रही हूँ।
दोनों एक-दूसरे के मन में
आशा जगा रहे हैं
आनेवाले कल की
वह कल, जो आज से
खूबसूरत होगा।
जिंदगी रुकती नहीं
बढ़े चलो, बढ़े चलो।
जब मन
अपनों से उदास होता है
तो पेड़ पौधे भी
अपनापन दिखाते नजर आते हैं।
लगता है, फूल हमसे
बातें करना चाह रहे हैं
पत्तियाँ हमारी तरफ
झुकी सी नजर आती हैं
सड़क की पार्किंग में
खड़ी गाड़ियाँ
मानो कह रही हों,
आओ बैठो,
मुझमें बैठ जाओ
जहाँ जाना चाहते हो
वहाँ ले चलें,
उदास मत हो, हम हैं न।
सड़क पर पड़ा
मिट्टी का ढेर
और उसमें छोटे-छोटे कंकर
मानो खिलखिलाकर
हँस रहे हों और बुला रहे हों,
आओ, हम घर-घर खेलें
वो बिजली के खंबे
तैयार हैं जगमगाने को
जरा सी आहट दो
और जगमगा उठेंगे
मत होओ उदास,
ऐसा कहते प्रतीत होंगे।
जिंदगी रुकती नहीं
चलते रहो, चलते रहो।
आनेवाला कल,
आज से खूबसूरत होगा
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

सा.अ.
एसोसिएट प्रोफेसर
महाराजा अग्रसेन कॉलेज,
वसुंधरा एन्क्लेव, दिल्ली-९६

नकली गहने

मूल : **गी.द. मोपासाँ**

अनुवाद : **बालकृष्ण काबरा 'एतेश'**

गी.द. मोपासाँ (१८५०-१८९३), पूरा नाम हेनरी रेने एल्बर्ट गी.द. मोपासाँ। १९वीं सदी के महान् और लोकप्रिय फ्रांसीसी लेखक। तीन सौ कहानियाँ, छह उपन्यास, एक कविता-संग्रह और तीन यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित। लेखन में सहज-सरल प्रवाह, बढ़िया क्लाइमेक्स और अर्थपूर्ण निष्कर्ष। समाज से विमुख रहनेवाले मोपासाँ को ध्यान, एकांत और अवकाश पसंद थे।

लैंटिन जब अपने ब्यूरो सहायक प्रमुख के घर आयोजित पार्टी में था, उसकी मुलाकात एक युवा लड़की से हुई। उसे उस लड़की से बेशुमार प्यार हो गया।

वह कई वर्ष पहले दिवंगत हो चुके प्रांतीय टैक्स कलेक्टर की बेटी थी। पिता की मृत्यु के बाद वह और उसकी माँ रहने को पेरिस आ गईं। उसकी माँ ने अपने पड़ोस के परिवारों से जान-पहचान बढ़ाई। उसे आशा थी कि इस तरह वह अपनी बेटी के लिए जीवनसाथी खोज सकेगी।

उनकी आय साधारण थी। वे इज्जतदार, सुशील और शांतिप्रिय थीं। युवा लड़की पूर्णत: भली थी। किसी भी समझदार युवक का यह स्वप्न हो सकता है कि वह अपनी खुशियों के लिए अपना जीवन उसके हाथों सौंप दे। उसके सरल सौंदर्य में सम्मोहित करनेवाली दिव्यता थी। उसके होंठों पर निरंतर खेलनेवाली उसकी अबूझ मुसकान उसके सुंदर और पवित्र मन की पहचान थी। हर ओर उसकी प्रशंसा ही सुनाई देती थी। लोग कहते हुए नहीं थकते थे—'वह व्यक्ति कितना खुशनसीब होगा, जो उसका प्यार पा सकेगा! उसे उससे बेहतर पत्नी मिल ही नहीं सकती।'

लैंटिन तब इंटीरियर विभाग में चीफ क्लर्क था और उसे साढ़े तीन हजार फ्रैंक का सामान्य वेतन मिलता था। इससे वह वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारी उठा सकता था। उसने इस अनुपम युवा लड़की के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा तो उसकी ओर से यह मान लिया गया।

वह उसके साथ इतना खुश था, जिसका बयान नहीं किया जा सकता। उस लड़की ने गृहस्थी और इसके खर्च को बखूबी सँभाला और उनका जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा। उसने अपने पति की छोटी-से-छोटी जरूरत का अच्छे से ध्यान रखा, उसे खुश रखा और प्यार किया। वह इतनी मोहक थी कि विवाह के छह वर्ष बाद लैंटिन को लगा कि वह अपनी पत्नी को अपने हनीमून के दिनों से भी अधिक प्यार करने लगा है।

लैंटिन को केवल उसकी दो बातें ठीक नहीं लगीं—एक तो उसका थिएटर प्रेम और दूसरा नकली गहनों के प्रति उसका आकर्षण। उसकी सहेलियाँ (कुछ छोटे अधिकारियों की पत्नियाँ) बहुधा नए नाटकों की प्रथम प्रस्तुतियों के समय थिएटर में उसके लिए बॉक्स आरक्षित करा देतीं और उसके पति को भी उसके साथ जाने के लिए बाध्य होना पड़ता, चाहे वह ऐसे मनोरंजक कार्यक्रमों में जाना चाहे या नहीं। ये कार्यक्रम दिनभर के ऑफिस के बाद उसे बहुत ही उबाऊ लगते।

कुछ समय बाद लैंटिन ने अपनी पत्नी से अनुरोध किया कि वह थिएटर जाने के लिए अपने पहचान की किसी महिला से विनती करे कि वह उसके साथ जाए और वापस घर आने तक उसका साथ दे। आरंभ में उसने इस उपाय का विरोध किया, किंतु काफी अनुनय-विनय के बाद वह अपने पति की खुशी के लिए ऐसा करने को राजी हो गई।

थिएटर के प्रति अपने प्रेम के साथ-साथ अब गहनों के प्रति भी उसकी इच्छा उमड़ पड़ी। उसकी वेशभूषा तो पहले की ही तरह अच्छी, सादगीपूर्ण और शालीन थी, किंतु अब उसने अपने कानों में स्फटिक युक्त बड़ी बालियाँ पहनना शुरू कर दिया, जिनकी चमक ऐसी थी, मानो वे असली हीरे की हों। अपने गले में उसने नकली मोतियों का हार और हाथों में नकली सोने के कंगन पहने। उसकी कंघी में काँच के रत्न जड़े हुए थे।

उसका पति उसे प्राय: उलाहना देता, ''प्रिये, यदि तुम असली गहने नहीं खरीद सकती हो तो तुम्हें केवल अपने सौंदर्य और शालीनता के गहनों से सजा होना चाहिए—ये एक स्त्री के नायाब गहने हैं।''

किंतु मधुर मुसकान लिये वह कहती, ''मैं क्या करूँ, मुझे गहनों का बड़ा शौक है। केवल यही मेरी कमजोरी है। हम अपना स्वभाव तो नहीं बदल सकते।''

वह अपनी उँगलियों में मोती का हार लेकर इस तरह घुमाती कि उसमें लगे मणि चमचमाने लगते। वह अपने पति को मनाने के अंदाज में कहती, ''देखो! क्या यह सुंदर नहीं है? कोई भी यकीन करेगा कि यह असली है!''

लैंटिन फिर मुसकराते हुए जवाब देता, ''प्रिये, तुम्हारी पसंद दुनिया से अलग है।''

कभी-कभी शाम को वे जब आग के पास बैठकर निजी वार्त्तालाप कर रहे होते, तब वह टी-टेबल पर मोरक्को लेदर बॉक्स रख देती और लैंटिन कह उठता, इसमें 'कूड़ा' है। किंतु वह नकली गहनों को ऐसा ध्यान लगाकर देखती, मानो वे उसे कोई गहन अबूझ खुशी प्रदान कर रहे हों। प्राय: वह अपने पति को एक नेकलेस पहनने पर मजबूर करती और दिल खोलकर हँसते हुए कहती, 'बड़े अजीब लग रहे हैं आप!' फिर वह अपने पति की बाँहों में समा जाती और उसे प्यार से चूम लेती।

सर्दियों की एक शाम वह नाट्य-संगीत का कार्यक्रम देखने गई और ठंड में ठिठुरते हुए घर लौटी। अगली सुबह उसे जोरों की खाँसी हो गई। फेफड़ों के संक्रमण के कारण आठ दिनों बाद उसका देहांत हो गया।

इस घटना से लैंटिन बुरी तरह टूट गया और उसके बाल एक माह में ही सफेद हो गए। उसका दिल टूट चुका था। दिवंगत पत्नी का आकर्षण, उसकी आवाज, उसकी मुसकान वह भुला न पाता और उसका रुदन चलता रहा।

समय व्यतीत हुआ, पर उसका दु:ख कम न हुआ। ऑफिस में प्राय: कामकाज के दौरान जब उसके सहयोगी किसी प्रमुख विषय पर विमर्श कर रहे होते, अचानक ही उसकी आँखें डबडबा जातीं और उसकी सिसकियाँ उसे दु:ख से राहत प्रदान करतीं। उसकी दिवंगत पत्नी के कमरे की सभी चीजें उसी तरह पड़ी रहीं, जिस तरह वे उसके जीवित होने के समय थीं। उसके सभी फर्नीचर, यहाँ तक कि उसके कपड़े भी उसी तरह पड़े रहे, जैसे वे उसकी मृत्यु के दिन पड़े थे। समाज से दूर एकांत में रहना और अपने जीवन की उस अमूल्य खुशी के बारे में सोचना ही उसका एकमात्र काम रह गया था।

शीघ्र ही उसका जीवन एक संघर्ष हो गया। उसकी आमदनी, जिससे उसकी पत्नी घर के सभी खर्च पूरे कर लेती थी, अब उससे उसकी तत्काल जरूरतें भी पूरी नहीं हो पा रही थीं। उसे आश्चर्य हुआ कि उसकी पत्नी उस आमदनी में कैसे बढ़िया शराब और एक-से-एक व्यंजन की व्यवस्था कर लेती थी, जो अब वह अपनी नियमित आय से नहीं कर पा रहा है।

उसने अब उधार लेना शुरू कर दिया और जल्द ही कंगाल हो गया। एक सुबह उसने पाया कि उसकी जेब में एक सेंट भी नहीं बचा है, तब उसने कोई सामान बेचने का निश्चय किया। तुरंत ही उसे अपनी पत्नी के चमकीले जवाहरात बेचने का विचार आया; वैसे भी नकली जेवरों के प्रति उसके मन में एक प्रकार का विद्वेष था। इन गहनों को देखने मात्र से ही उसके मस्तिष्क में दिवंगत पत्नी की स्मृति मलिन होने लगती।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में उसने लगातार खरीदारी की थी और लगभग हर शाम वह नए जेवर लेकर ही लौटती। लैंटिन ने एक समय तक तो उन गहनों की ओर ध्यान नहीं दिया, किंतु अब उसने उस भारी नेकलेस को बेचने की सोची, जो उसकी पत्नी को बहुत पसंद था और जिससे लगभग छह या सात फ्रैंक मिल सकते थे। इस नेकलेस की कारीगरी बहुत सुंदर थी, पर था तो यह नकली।

उसने इस नेकलेस को जेब में रख लिया और किसी भरोसेमंद जौहरी की दुकान का पता लगाने निकल पड़ा। थोड़ी ही दूरी पर उसे एक दुकान मिली, जहाँ वह इसे बेचने के लिए घुसा। वह अपनी तंगहाली पर शर्मिंदगी भी महसूस कर रहा था। उसने दुकानदार से कहा, ''सर, मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह नेकलेस कितने मूल्य का है?''

दुकानदार ने नेकलेस की जाँच की, अपने क्लर्क को बुलाया और दबे स्वर में उससे कुछ बात की, इसके बाद उसने गहने को काउंटर पर रखकर उसका प्रभाव जानने के लिए उसे जरा दूर से देखा।

लैंटिन को ये हरकतें पसंद नहीं आईं और वह बस यह कहने ही वाला था कि 'ठीक है, मुझे यह पता है, यह बेकार है', उतने में ही जौहरी ने कहा, ''सर, इस नेकलेस की कीमत तो बारह से पंद्रह हजार फ्रैंक होगी; पर मैं इसे तब तक नहीं खरीद सकता, जब तक आप मुझे यह न बता दें कि यह आया कहाँ से?''

लैंटिन की आँखें फटी रह गईं! वह इधर-उधर देखने लगा। उसे कुछ समझ में नहीं आया। लड़खड़ाती जुबान में उसने कहा, ''तुम्हें यकीन है कि तुम क्या कह रहे हो?'' जौहरी ने रूखे स्वर में कहा, ''आप इसकी कीमत का कहीं और पता लगा सकते हैं; मुझे नहीं लगता कि इससे ज्यादा कीमत कोई दे पाएगा। अधिक-से-अधिक मैं पंद्रह हजार फ्रैंक के लिए इस पर विचार कर सकता हूँ। यदि कोई दूसरा इससे अधिक न दे पाए तो आप मेरे पास दुबारा आ सकते हैं।''

आश्चर्यचकित लैंटिन ने नेकलेस उठाया और स्टोर के बाहर निकल आया। वह इस पर सोच-विचार करने के लिए कुछ समय लेना चाहता था। बाहर निकलने के बाद उसे हँसी आ रही थी। उसने मन-ही-मन कहा, 'मूर्ख है! मूर्ख है वह! क्या उसकी बात विश्वास करने लायक थी! उस जौहरी को तो असली और नकली हीरे का भेद ही नहीं पता।'

कुछ मिनटों के बाद वह 'रू द ला पे' (एक शॉपिंग स्ट्रीट) में एक दूसरी सुनार की दुकान में गया। दुकान का मालिक उस नेकलेस को देखते ही जोर से बोल उठा, ''ओह, इसे तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ; यह यहीं से खरीदा गया था।''

परेशान लैंटिन ने प्रश्न किया—''क्या कीमत होगी इसकी?''

''जी, मैंने इसे बीस हजार फ्रैंक में बेचा था। मैं इसे अठारह हजार फ्रैंक में वापस ले सकता हूँ किंतु इसके लिए कानूनन आपको मुझे यह

बताना होगा कि यह आपके पास कहाँ से आया?''

लैंटिन हक्का-बक्का रह गया। उसने कहा, ''किंतु···किंतु इसकी अच्छी तरह से जाँच कर लें। अभी तक मैं यह समझता था कि यह नकली है।'' जौहरी ने पूछा, ''अच्छा, आपका नाम क्या है?''

''लैंटिन, मैं 'मिनिस्टर ऑफ दि इंटीरियर' में काम करता हूँ। मैं '१६ रू ड मार्टर्स' में रहता हूँ।''

दुकानदार ने अपनी लेखा-पुस्तक की जाँच की और जानकारी दी—''यह नेकलेस २० जुलाई, १८७६ को '१६ रू ड मार्टर्स' के पते पर मैडम लैंटिन को भेजा गया था।''

दोनों एक-दूसरे को घूरकर देखने लगे। लैंटिन आश्चर्य से अवाक् था। जौहरी को लगा कि वह कोई चोर है, पर उसने चुप्पी तोड़ते हुए कहा, ''क्या तुम यह नेकलेस चौबीस घंटों के लिए मेरे पास छोड़ सकते हो; मैं तुम्हें इसकी रसीद दूँगा।'' लैंटिन ने तुरंत कहा, ''हाँ, ठीक है।'' फिर वह रसीद लेकर दुकान से चला गया।

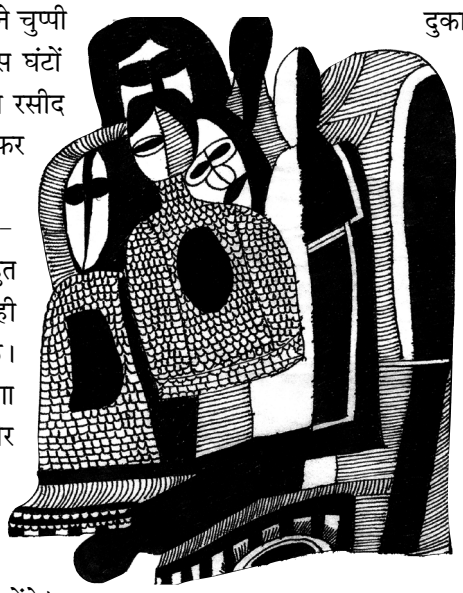

वह घोर भ्रम की स्थिति में था और इधर-उधर सड़कों में भटकता रहा। उसके मन में बहुत से सवाल उठ रहे थे। उसकी पत्नी के पास पैसे ही कहाँ थे कि वह इतना महँगा गहना खरीद सके। नहीं, यह संभव नहीं। तब तो यह कोई उपहार होगा उपहार! पर यह उपहार किसने दिया होगा? और उसे यह क्यों दिया गया?

वह रुका और सड़क के बीच खड़ा रहा। अपनी पत्नी के बारे में उसे भारी संदेह होने लगा। तब तो अन्य सभी गहने भी उपहार ही होंगे! उसके नीचे की धरती हिलने लगी, सामने का वृक्ष उसे गिरते हुए लगा और वह चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़ा। उसे दवाखाने में होश आया, जहाँ राहगीर उसे उठाकर ले गए थे। उसने कहा कि उसे घर पहुँचा दिया जाए। घर पहुँचते ही उसने अपने आपको एक कमरे में बंद कर लिया और रात होने तक रोता रहा। अंततः थका हुआ वह बिस्तर पर लेट गया। वह पूरी रात बेचैन रहा।

अगली सुबह उठकर वह धीरे-धीरे ऑफिस जाने की तैयारी करने लगा, पर ऐसे सदमे के बाद उसे काम करने का मन नहीं हो रहा था। अतः उसने नियोक्ता को पत्र भेजकर ऑफिस न आने के लिए माफी माँगी। उसे याद आया कि उसे जौहरी के पास जाना है। उसे इच्छा तो नहीं थी, किंतु वह नेकलेस उसके पास नहीं छोड़ सकता था। वह तैयार होकर घर से बाहर निकला।

दिन सुहाना था। व्यस्त शहर के ऊपर स्वच्छ, नीला आकाश मुसकरा रहा था। कुछ लोग फुरसत में थे और जेब में हाथ डाले टहल रहे थे। उन्हें देखते हुए लैंटिन ने मन-ही-मन कहा, 'अमीर लोग वास्तव में बड़े खुश हैं। पैसा होने पर भारी-से-भारी दुःख को भुलाया जाना संभव है। जिसे जहाँ घूमने जाना हो, जा सकता है। यात्रा में ध्यान दूसरी ओर चला जाता है और यह दुःख का सबसे सही इलाज है। काश! मैं धनवान होता!'

उसे अब भूख लग रही थी, लेकिन उसकी जेब खाली थी। उसने फिर से नेकलेस को याद किया। अठारह हजार फ्रैंक! अठारह हजार फ्रैंक! बड़ी धनराशि!

वह शीघ्र ही 'रू द ला पे' पहुँचा और जौहरी की दुकान के सामने सड़क के उस पार खड़ा था। अठारह हजार फ्रैंक! उसने दूकान में जाने के लिए बीसों बार सोचा, पर वह झिझक रहा था। वह भूखा था। बहुत भूखा और जेब में उसके पास एक सेंट भी नहीं था। उसके पास सोच-विचार का समय नहीं था। उसने दौड़कर सड़क पार की और सीधे दुकान में घुस गया।

मालिक तुरंत आगे आया और विनमतापूर्वक उसे बैठने को कहा। दुकान के क्लर्कों ने उसे बड़े गौर से देखा।

जौहरी ने कहा, ''मैंने पूछताछ कर ली है और यदि आप गहने को बेचना चाहते हैं तो मैं प्रस्तावित कीमत देने को तैयार हूँ।''

''जी, हाँ! बिल्कुल ठीक!'' यह कहते हुए लैंटिन की जबान लड़खड़ाई।

मालिक ने दराज से अठारह बड़े नोट निकाले और लैंटिन के सामने गिनकर उसे सौंप दिए और रसीद पर उसके हस्ताक्षर लिये। लैंटिन ने काँपते हाथों से पैसे अपनी जेब में रख लिये।

दुकान से निकलते समय वह फिर दुकानदार की ओर मुड़ा, जिसके होंठों पर चिर-परिचित मुसकान थी। उसने नजरें झुकाते हुए कहा, ''मेरे, मेरे पास और भी गहने हैं, जो उसी स्रोत से मेरे पास आए हैं। क्या आप उन्हें भी खरीद सकते हैं?''

दुकानदार ने सिर हिलाते हुए कहा, ''जी, सर! अवश्य!''

लैंटिन ने गंभीर होते हुए कहा, ''मैं उन्हें आपके पास लेकर आता हूँ।'' घंटे भर बाद वह गहनों के साथ दुकान पर आ पहुँचा।

बड़े हीरे की बालियों की कीमत बीस हजार फ्रैंक थी, कंगन पैंतीस हजार फ्रैंक, अँगूठियाँ सोलह हजार, पन्ने और नीलम का सेट चौदह हजार, मणियुक्त लटकन सहित सोने की चैन चालीस हजार, सब मिलाकर एक सौ तिरालीस हजार फ्रैंक।

जौहरी ने चुटकी लेते हुए कहा, ''एक महिला ने अपनी सारी बचत इन कीमती गहनों में लगा दी थी।''

लैंटिन ने गंभीरतापूर्वक कहा, ''पैसे निवेश करने का यह भी एक तरीका है।''

उस दिन उसने 'वायसिन' में लंच किया और शराब पी, जिसकी कीमत बीस फ्रैंक प्रति बोतल थी। इसके बाद उसने एक वाहन किराए पर लेकर 'बॉइस' का दौरा किया। चारों ओर वह तिरस्कार भरी नजरों

से देखता रहा और लोगों से चीख-चीखकर यह कहने से खुद को नहीं रोक सका—

''मैं भी अमीर हूँ! दो सौ हजार फ्रैंक की पूँजी है मेरी।''

अचानक ही उसे अपने नियोक्ता की याद आई। वह वाहन से ऑफिस पहुँचा और बड़ी खुशमिजाजी के साथ प्रवेश करते हुए कहा, ''सर, मैं अपने पद से इस्तीफा देने आया हूँ। मुझे तीन सौ हजार फ्रैंक विरासत में मिले हैं।''

उसने अपने पूर्व-सहयोगियों से हाथ मिलाया और उन्हें विश्वसनीय ढंग से अपनी भावी योजनाओं के बारे में बताया। उसके बाद वह भोजन करने 'कैफे एग्ने' चला गया।

भोजन के दौरान वह आभिजात्य वर्ग के एक सज्जन के पास बैठा और उसे बड़े ही गोपनीय अंदाज में बताया कि उसे भाग्यवश चार सौ हजार फ्रैंक विरासत में मिले हैं।

वह अपनी जिंदगी में पहली बार थिएटर से नहीं ऊबा और शेष रात एक मस्ती भरे मनोरंजक कार्यक्रम में व्यतीत की।

छह माह बाद उसने दुबारा शादी की। उसकी दूसरी पत्नी प्रतिभावान पर गर्ममिजाज थी। उससे वह बहुत दु:खी रहा।

११ सूर्या अपार्टमेंट,
रिंग रोड, राणाप्रताप नगर
नागपुर-४०००२२
दूरभाष : ०९४२२८११६७१

दोहे

साँसत में है जान

● लक्ष्मीनारायण बुनकर

जिसने मन वश में किया, वह है सच्चा संत।
जो मन के वश में रहे, उसको व्याधि अनंत॥

क्या मंदिर क्या आरती, क्या पूजा क्या पाठ।
क्या तूने जाना उसे, जिसका रूप विराट॥

जग मिथ्या नश्वर सकल, कर इसकी पहचान।
जो था है आगे रहे, सत्य उसी को जान॥

भेड़चाल में जा फँसा, रुक जा थोड़ी देर।
अपना मारग खोज ले, तू सचमुच का शेर॥

माना श्रद्धा है अधिक, बना आस्थावान।
तू जिसका वंदन करे, क्या सचमुच भगवान॥

मसजिद में बसता खुदा, मंदिर में भगवान।
जो सबके घट में बसा, कर उसका गुणगान॥

रवि का उगना डूबना, सदा काल के साथ।
लाख जतन कर लो मगर, काल न आता हाथ॥

बिन जाने समझे बिना, बिन देखे निज नैन।
सुनी-सुनाई बात पर, कैसे पाऊँ चैन॥

जो दिन को दिन ही कहे, कहे रात को रात।
सच्चा उसको जानिए, करे न कोई मात॥

जीव-जंतु में प्राण हैं, पत्थर है निष्प्राण।
मनुज पूजता है कहाँ, जिसमें होते प्राण॥

चेतना में श्रद्धा नहीं, जड़ के पीछे धाय।
ऐसे काफिर के लिए, कहो कौन समझाय॥

जीव अंश है ईश का, कहते तुलसी दास।
मानस को पढ़ लीजिए, मिट जाएगा त्रास॥

नर में नारायण बसे, कहा विवेकानंद।
कर सेवा उसकी मिले, तुझको परमानंद॥

सोना बरसे लाख टन, मिले पुण्य की खान।
बुनकर तहाँ न जाइए, जहँ संकट में प्राण॥

तीरथ से नफरत नहीं, मूरत से नहिं बैर।
बुनकर इतना चाहता, रहे सभी की खैर॥

तेज धार नदिया बहे, झरे गगन अंगार।
रहना इनसे दूर ही, यदि जीवन अनुराग॥

पाहन में ताकत बड़ी, होवे अगर प्रगाढ़।
होता टस से मस नहीं, कितनी आए बाढ़॥

जहाँ देखते-देखते खिसक रही चट्टान।
वहाँ भक्त की रोज ही, साँसत में है जान॥

मानव को हर बात पर, पल में आता क्रोध।
कहे भले की बात जो, उसका करे विरोध॥

अति श्रद्धा अति आस्था, अति का पूजा-पाठ।
ये सारे पाखंड हैं, मिटा रहे हैं ठाठ॥

सुपरिचित रचनाकार। 'बारह मास वसंत' (काव्य-संग्रह) तथा पत्र-पत्रिकाओं एवं काव्य-संकलनों में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी पर कविताओं एवं वार्त्ताओं का प्रसारण। 'स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति सम्मान', 'अक्षरशिल्पी सम्मान'।

तीरथ में मूरत बसे, मूरत में भगवान।
जीवों में फिर क्या बसे, बता अरे नादान॥

मंदिर का कलशा गिरे, मसजिद की मीनार।
ये फिर से बन जाएँगे, क्यों होते बेजार॥

जड़ टूटे फिर से बने, बात कहूँ मैं साँच।
मानव तन अनमोल है, इसे न आए आँच॥

मंदिर-मसजिद एक से, पाहन निर्मित दोय।
सिर्फ नाम का फर्क है, पूजा रब की होय॥

सहायक प्राध्यापक, हिंदी
शास. स्नातकोत्तर महाविद्यालय
गुना (म.प्र.)
दूरभाष : ९९९३५७२०३२

दिल्ली-तीर्थ-दर्शनम्

● प्रेमपाल शर्मा

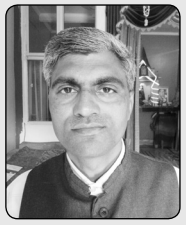

सुपरिचित लेखक-संपादक। बुलंदशहर (उ.प्र.) के मीरपुर-जरारा गाँव में जन्म। देसी चिकित्सा लेखन में विशेष दक्षता। 'जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियाँ', 'घर का डॉक्टर', 'स्वस्थ कैसे रहें?' तथा 'शुद्ध अन्न, स्वस्थ तन' कृतियाँ चर्चित। 'साहित्य मंडल' द्वारा 'संपादक-रत्न' की मानद उपाधि। संप्रति 'सवेरा न्यूज' (साप्ताहिक) का संपादन एवं आयुर्वेद पर स्वतंत्र लेखन।

स्वास्थ्य-कारणों से इस बार बाहर कहीं तीर्थयात्रा पर जाना संभव न हो सका, तो रविवार में अवकाश के दिनों में कई किस्तों में दिल्ली के तीर्थ-स्थलों के दर्शन किए। इससे पहले कि आपको दिल्ली के प्रमुख तीर्थ-स्थलों पर लेकर चलूँ तो दिल्ली के बारे में भी कुछ जान लेना जरूरी है। वर्तमान में तो दिल्ली भारत गणराज्य की राजधानी, केंद्र शासित क्षेत्र के साथ-साथ देश के चार बड़े महानगरों में से एक है। वास्तव में दिल्ली एक लघु भारत ही है, जहाँ हर संप्रदाय, पंथ और प्रांत के लोग रहते हैं। इसके दक्षिण-पश्चिम भाग में अरावली पर्वत-शृंखला तथा पूरब दिशा में यमुना नदी है, जिसके किनारे यह नगर बसा है। खुदाई में प्राप्त प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ है कि प्रारंभिक सिंधु घाटी सभ्यता यहाँ पनपी। दिल्ली नगरी ने अपने जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव देखे। इतिहासकारों का कहना है कि यह नगरी सात बार उजड़ी और फिर बसी, इसलिए दिल्ली एक पौराणिक तथा ऐतिहासिक नगर भी है।

महाभारत काल में इसका नाम 'इंद्रप्रस्थ' था। अपनी सुंदरता तथा वैभव में यह देवताओं की 'साकेतपुरी' से बढ़कर थी। पांडवों ने इसे अपनी राजधानी बनाया। 'पृथ्वीराज रासो' में तोमर राजा अनंगपाल को दिल्ली का संस्थापक बताया गया है। ऐसा माना जाता है कि उसी ने 'लाल कोट' का निर्माण कराया तथा महरौली में स्थित गुप्तकालीन लौह-स्तंभ को वही दिल्ली लेकर आया था। संभवत: सन् ९०० से १२०० तक दिल्ली पर तौमर राजाओं का शासन रहा। पृथ्वीराज चौहान को दिल्ली का अंतिम हिंदू सम्राट् माना जाता है। सन् १२०६ के बाद यह दिल्ली सल्तनत की राजधानी बनी। क्रमश: यहाँ खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश और लोदी वंश के अलावा अन्य राजवंशों ने शासन किया। मुगल बादशाह अकबर ने न जाने क्यों दिल्ली को बिसराकर आगरा को अपनी राजधानी बनाया; परंतु अकबर के पोते शाहजहाँ ने सत्रहवीं सदी में इसके चहुँओर चहारदीवारी बनवाकर, इसे पुन: आबाद कर अपनी राजधानी बनाया, जिसे तब 'शाहजहाँनाबाद' कहा जाता था; परंतु आज इसे 'पुरानी दिल्ली' के नाम से जाना जाता है।

पुराकाल में दिल्ली उत्तर दिशा में स्वरूप नगर, दक्षिण में रजोकरी, पश्चिम में नजफगढ़ तथा पूरब में यमुना नदी तक विस्तृत थी। अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने लगभग पूरे भारत को अपने कब्जे में ले लिया और कलकत्ता को अपनी राजधानी बनाया। लेकिन सन् १९११ में पुरानी दिल्ली के दक्षिण में अंग्रेज वास्तुकार एडविन लुटियन द्वारा नई दिल्ली का निर्माण करवाकर राजधानी को यहाँ स्थानांतरित कर दिया गया। आजादी के लिए चले लंबे संघर्ष के बाद सन् १९४७ में इसे स्वतंत्र भारत की राजधानी बनाया गया।

पर्यटन की दृष्टि से दिल्ली बेमिसाल है। भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण विभाग ने दिल्ली महानगर में करीब बारह सौ धरोहर स्थल घोषित किए हैं, इनमें से १७५ स्थल तो राष्ट्रीय धरोहर स्थल हैं। यहाँ महाभारतकालीन, मुगलकालीन, ब्रिटिशकालीन अनेक इमारतें एवं पवित्र स्थल देश-विदेश के पर्यटकों के लिए आकर्षण के केंद्र हैं। पहले मैं आपको कालकाजी मंदिर लिये चलता हूँ।

कालकाजी मंदिर दिल्ली के कालकाजी क्षेत्र में अरावली पर्वत-शृंखला की सूर्यकोट पहाड़ी पर स्थित है। यह मंदिर देश के प्राचीनतम सिद्धपीठों में गिना जाता है। इसे 'जयंती पीठ' भी कहा जाता है। पुराणों में ऐसा उल्लेख है कि असुरों के बढ़ते आतंक से तंग आकर देवताओं ने भगवती देवी से असुरों का संहार करने की प्रार्थना की, तो माता पार्वती ने अपनी भृकुटी से 'महाकाली' को प्रकट किया और राक्षस 'रक्तबीज' को मारने का आदेश दिया। महाकाली ने मार-काट मचाते हुए राक्षस के रुधिर को अपनी लपलपाती जिह्वा से चाटकर जमीन पर नहीं गिरने दिया। देवी महाकाली के रौद्र रूप को शांत करने के लिए भगवान् शंकर ने आद्यशक्ति महाकाली के आगे साष्टांग होकर विनती की। तब माता काली ने उन्हें मनोकामना पूर्ण होने का वरदान दिया। बदलते समय के साथ भी इस कालकाजी मंदिर की पवित्रता और मान्यता अक्षुण्ण रही। लोक मान्यताओं में यह पांडवकालीन मंदिर है। कहा जाता है कि पांडव भाइयों ने यहाँ आकर माँ काली की पूजा की थी। ऐसा भी माना जाता है कि अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में मराठा शासकों ने इस मंदिर का निर्माण कराया था। यह भी मान्यता है कि देवपिता ब्रह्मा के कहने तथा समस्त देवताओं के आग्रह पर माता काली यहाँ अपने भक्तों की मनोकामनाएँ पूरी कर रही हैं। इसलिए भी इसे 'मनोकामना सिद्धपीठ' कहा जाता है। बीते पुराकाल में नाथ-संप्रदाय के बाबा बालकनाथ ने इस स्थान को अपनी तपस्थली के रूप में चुना। तत्कालीन अकबर शाह के पेशकार रहे राजा मिर्जा केदार ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया। तब से लेकर आज तक इस मंदिर में महंत-परंपरा का निर्वहन हो रहा है।

वर्तमान में हम जो मंदिर देख रहे हैं, इसकी बनावट पहाड़नुमा है, जो सूर्यकोट पर्वत की याद दिलाती है। इसका निर्माण शामलट थोक ब्राह्मण और थोक जोगियन की जमीन पर किया गया, जो कालका मंदिर के पुजारी हैं। मंदिर के बीचोबीच गोलाकार गुंबद में माता काली स्वयं

विराजमान हैं। इस मंदिर की बारह पक्षीय संरचना के कारण चारों ओर से माँ के दर्शन किए जा सकते हैं। मंदिर का निर्माण संगमरमर तथा काले पुमिस पत्थरों से किया गया है। मंदिर के साथ-साथ ही बारह पक्षीय बरामदा भी है। यहाँ नित्य महाकाली की मूर्ति का दूध से अभिषेक किया जाता है। अभिषेक के बाद प्रात: छह बजे तथा सायंकाल में साढ़े सात बजे आरती होती है। दर्शनार्थियों के लिए मंदिर प्रात: से देर रात्रि तक खुला रहता है। विगत पाँच-छह दशकों में मंदिर के आसपास बहुत सी धर्मशालाओं का निर्माण हुआ है। चैत्रीय और शारदीय नवरात्रों के अवसर पर यहाँ भक्तों की भारी भीड़ उमड़ने के कारण मेला जैसा लगा रहता है। मंगलवार और शनिवार को भी यहाँ दर्शनार्थी बड़ी संख्या में आते हैं। इस मंदिर की मान्यता जन-जन में आज भी बनी हुई है। यहाँ भली प्रकार से दर्शन कर अब मैं सामने कमल मंदिर की ओर निकल रहा हूँ।

कमल मंदिर (लोटस टेंपल) एकदम सामने ही दिख रहा है। यह दिल्ली में नए बने मंदिरों में बड़ा दर्शनीय है। यह बहाई उपासना-स्थल है। बहाई सन् १८४४ में प्रवर्तित ईरान का एक अलग धर्म है, जिसकी स्थापना बहाउल्लाह नामक संत ने की थी। संत बहाउल्लाह को ईश्वर का कार्य करने के जुर्म में तत्कालीन शासकों ने लगभग ४० वर्षों तक जेल में रखकर असहयनीय कष्ट दिए। बहाई धर्म का मानना है कि दुनिया के सब धर्मों का मूल एक ही है। इस मंदिर का उद्घाटन २४ दिसंबर, १९८६ को हुआ और १ जनवरी, १९८७ को यह जनता के दर्शनार्थ खोल दिया गया। इस मंदिर का वास्तु कमल के आकार में होने के कारण इसे 'कमल मंदिर' यानी लोटस टेंपल कहा जाता है। इस मंदिर में स्थित विस्तृत और कलात्मक घास के मैदान, धवल-दूधिया विशाल भवन, ऊँचे गुंबदवाला प्रार्थनाघर आदि पर्यटकों के आकर्षण के केंद्र हैं। सबसे बड़ा आकर्षण तो यह है कि इसमें किसी तरह की कोई मूर्ति नहीं है। मंदिर 'अनेकता में एकता' सिद्धांत को यथार्थ रूप देता है। इस मंदिर में नौ द्वार तथा नौ कोने हैं। माना जाता है कि नौ सबसे बड़ा अंक है। यह उपासना मंदिर चारों ओर से नौ बड़े जलाशयों से मंडित है। प्रात: और सायं सूर्य की लालिमा में धवल-दूधिया रंग की यह संगमरमरी इमारत बड़ी अद्भुत लगती है। यह अद्भुत स्थापत्य कनाडा के प्रसिद्ध वास्तुकार फरीबर्ज सहबा की कल्पना की उपज है। इस मंदिर को बनाने के लिए मार्बल ग्रीस से मँगवाया गया था। इस मंदिर में संगमरमर की सत्ताईस खड़ी पँखुड़ियाँ, जिन्हें तीन और नौ के आकार में बनाया गया है। इसमें प्रवेश के नौ दरवाजे, जो ४० मीटर के हैं। सामने के पूरे हॉल में लगभग २४०० लोग एक साथ आ सकते हैं।

मंदिर के सूचना-केंद्र के सभागार में ४०० व्यक्ति एक साथ बैठ सकते हैं। इसके अलावा दो छोटे सभागृह और भी हैं। यहाँ हर घंटे में पाँच मिनट की प्रार्थना सभा आयोजित की जाती है। पुस्तकालय में बहुत से शोधार्थी और धार्मिक पुस्तक-प्रेमी नीम शांति के बीच पुस्तकें पढ़ने में निमग्न हैं। यहाँ आकर अपूर्व शांति का अहसास हो रहा है। हजारों पर्यटक नित्य यहाँ इसके दर्शन करने आते हैं। आइए, अब भैरव मंदिर की ओर चलते हैं।

भैरव मंदिर दिल्ली में प्रगति मैदान पास तथा पांडवों के किले के पीछे स्थित है। इन्हें किलकारी बाबा भैरोंनाथजी कहा जाता है। यहाँ ऊँचे प्रवेशद्वार पर यही नाम लिखा हुआ है। सभी जानते हैं कि भैरव को भगवान् शिव का अवतार माना गया है, अत: वे शिव स्वरूप ही हैं। भैरव के कई रूप प्रसिद्ध हैं, इनमें से दो नाम अति प्रसिद्ध हुए हैं—काल भैरव तथा बटुक भैरव या आनंद भैरव। पांडवकालीन यह भैरव मंदिर सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला तथा सभी संकटों का नाश करनेवाला है। रविवार भैरव का दिन माना गया है, सो आज रविवार को यहाँ भक्तों की अपार भीड़ है। मैं देख रहा हूँ, यह मंदिर उत्तर भारत की मंदिर निर्माण शैली में सफेद संगमरमर से बनाया गया है। अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी संगमरमर की हैं। भैरवजी की प्रतिमा में मुख तथा बड़ी-बड़ी आँखें दिखाई दे रही हैं। यहाँ की यह भैरवजी की प्राचीन मूर्ति अत्यंत ऊर्जावान है। इस मूर्ति की एक विशेषता यह बलाई जाती है कि यह एक कुएँ के ऊपर स्थापित है। न जाने कब से एक छिद्र के द्वारा पूजा-अर्चना तथा भैरव के अभिषेक का जल कुएँ में चला जाता है; चमत्कार ऐसा है कि यह कुआँ अभी तक भरा नहीं है। सामने दिख रही नीलम की आँखोंवाली बटुक भैरव की मूर्ति, जिसके पार्श्व में त्रिशूल तथा सिर के ऊपर छत्र शोभायमान है, इतनी भारी है कि साधारण व्यक्ति इसे उठा भी नहीं सकता है।

लोक में ऐसा प्रचलित कि जब पांडव हस्तिनापुर से आकर यहाँ खांडवप्रस्थ (इंद्रप्रस्थ) में बसे तो अपनी इंद्रप्रस्थ नगरी को सब संकटों से मुक्त रखने के लिए पांडुपुत्र भीमसेन इस मूर्ति को अपने कंधे पर रखकर काशी से लेकर आए थे। भैरवजी आना तो नहीं चाहते थे, पर इस शर्त के साथ आने को तैयार हुए—'भीमसेन, पूरे रास्ते में मुझे कहीं जमीन पर रख दोगे तो मैं वहाँ से उठूँगा नहीं, सोच लो।' लंबा रास्ता चलते हुए कुंतीपुत्र थकावट और लघुशंका से व्याकुल हो गए। उन्होंने किले से बाहर स्थित कुएँ की जगत पर भैरवजी को रख दिया। शर्त के अनुसार भैरव बाबा फिर वहाँ से हिले नहीं। उन्होंने भीमसेन को समझाया—'हे महावीर! निराश मत होओ, यहीं पर मुझे स्थापित कर दो। मैं यहाँ रहकर तुम सब पांडवों तथा यहाँ आनेवाले अपने भक्तों की मनोकामना पूर्ण करूँगा।' उसी समय से ये बटुक भैरव यहाँ विराजमान हैं और यहाँ आनेवाले अपने भक्तों का कल्याण कर रहे हैं। 'ॐ ह्रीं बटुकाय आपदुद्धाराय कुरु कुरु बटुका यह्रीं।' इस मंत्र के जाप से भैरव को प्रसन्न किया जा सकता है। अन्य प्रसाद सामग्री के साथ-साथ यहाँ शराब भी भैरव को चढ़ाई जाती है। भूत-प्रेत बाधा से मुक्ति में भी इनकी उपासना फलदायी होती है। जहाँ-जहाँ भी देवी-मंदिर हैं, वहाँ भैरव भी विराजमान हैं। भैरव पूर्ण रूप से परात्पर शंकर ही हैं। रविवार को भक्तों की भीड़ को देखते हुए मंदिर प्रात: ५ बजे से रात्रि १० बजे तक दर्शनार्थ

खुला रहता है। अब मैं आपको कनाट प्लेस स्थित प्राचीन हनुमान मंदिर के दर्शनार्थ लिये चलता हूँ।

हनुमान मंदिर (कनाट प्लेस) बहुत प्राचीन मंदिर है। महाभारत ग्रंथ में वर्णन आया है कि पाँचों पांडव देवताओं की संतान थे। पांडवों में द्वितीय भीम को हनुमानजी का भाई माना जाता है। दोनों ही वायुपुत्र कहे जाते हैं। बताया जाता है कि इंद्रप्रस्थ नगरी की स्थापना के समय इस नगरी में सुख-शांति के लिए पांडवों ने पाँच हनुमान मंदिरों की स्थापना की थी। यह मंदिर उन्हीं में से एक है। ऐसी मान्यता है कि भक्तिकालीन संत तुलसीदासजी ने अपनी दिल्ली यात्रा के समय इस मंदिर में दर्शन किए थे। उसी प्रवास में उन्होंने यहाँ 'हनुमान चालीसा' की रचना की थी। वर्तमान मंदिर की यह जो इमारत दिख रही है, इसका निर्माण आमेर के राजा मानसिंह प्रथम (१५४०-१६१४) ने करवाया था। राजा जयसिंह द्वितीय (१६८८-१७४३) ने जंतर-मंतर बनवाते समय इस मंदिर का विस्तार किया। समय के साथ-साथ इसमें सुधार तथा जीर्णोद्धार का कार्य होता रहा। यह बहुत ही जीवंत मंदिर है। यहाँ बाल हनुमान की पूजा होती है। अन्य मंदिरों से अलग इसकी एक विशेषता यह है कि यहाँ १ अगस्त, १९६४ से 'श्रीराम जय-जय राम' का अखंड जाप दिन-रात अनवरत होता आ रहा है। यह जाप गिनीज बुक ऑफ रिकोर्ड्स में भी सबसे लंबे जाप के रूप में दर्ज हो चुका है।

मंदिर में ऊपर-नीचे शिव-परिवार, विष्णु आदि अन्य देवताओं की मूर्तियाँ हैं। मंदिर के गर्भगृह में बाल हनुमान की स्वयंभू प्रतिमा दक्षिणमुखी है। मंदिर के शिखर पर अर्धचंद्र के साथ किरीटकलश भी शोभित है। इस अर्धचंद्र की भी एक कहानी है। कहा जाता है कि जब रामभक्त तुलसीदासजी दिल्ली आए थे, तब मुगल सम्राट् अकबर ने उन्हें दरबार में कोई चमत्कार दिखाने को कहा। हनुमानजी की कृपा से तुलसीदासजी ने सम्राट् को संतुष्ट कर दिया। तब अकबर ने प्रसन्न होकर इस मंदिर के शिखर के लिए इस्लामी चंद्रमा तथा किरीटकलश समर्पित किया। इसी कारण कई मुसलिम आक्रांताओं ने इस इस्लामी चाँद का मान रखते हुए मंदिर को कोई हानि नहीं पहुँचाई। मंगलवार को यहाँ भक्तों की अपार भीड़ होती है। दर्शनार्थियों की लंबी-लंबी कतारें लग जाती हैं। यहाँ बूँदी तथा लड्डू का प्रसाद चढ़ता है। हनुमान जयंती के अवसर पर यहाँ भजन संध्या के साथ-साथ भंडारे लगते हैं। चूँकि कनाट प्लेस में हैं, तो अब गुरुद्वारा बँगला साहिब के लिए निकलते हैं।

गुरुद्वारा बँगला साहिब तो मैं कई बार आ चुका हूँ। यह गुरुद्वारा कनाट प्लेस के पास बाबा खड्ग सिंह मार्ग पर स्थित है। यह ऐतिहासिक गुरुद्वारा है। इतिहास में दर्ज है कि सत्रहवीं सदी में यहाँ पर जयपुर के राजा जयसिंह का एक बँगला हुआ करता था, जिसे 'जयसिंहपुरा पैलेस' कहा जाता था। उन्हीं दिनों खालसा पंथ के आठवें गुरु हरकिशन सिंह दिल्ली प्रवास पर आए तो इसी बँगले में ठहरे थे। उस समय दिल्ली में चेचक तथा हैजा महामारी का रूप ले चुके थे। इन बीमारियों के कारण सैकड़ों लोग काल का ग्रास बन चुके थे। गुरुजी बीमारों की सेवा करने लगे। अपने आवास के कुंड से मरीजों को शुद्ध जल देते तो यह जल आरोग्यवर्धक हो जाता, मरीजों को स्वास्थ्य लाभ होता। गुरुजी दिन-रात मरीजों से घिरे रहते। इस तरह गुरुजी भी इस महामारी की चपेट में आ गए और ३० मार्च, १६६४ को गोलोकवासी हो गए। इस घटना के बाद राजा जयसिंह ने उस कुंड के स्थान पर एक ताल यानी सरोवर का निर्माण कराया। बाद में २२५×२३५ फीट का वर्तमान तालाब भक्तों के चंदे से बनवाया गया। यह तालाब आज बड़ी श्रद्धा का केंद्र है।

पहले-पहल सन् १७८३ में सरदार भगेल सिंह ने दिल्ली में नौ सिख मंदिरों यानी गुरुद्वारों का निर्माण कराया। बँगले के स्थान पर निर्माण होने के कारण इसे 'बँगला साहिब गुरुद्वारा' कहा जाता है। ऊँचे भव्य प्रवेशद्वार के बाईं ओर अब एक शानदार फब्बारा है। इसके साथ लंबी गैलरी से आगे बढ़ते हुए दाईं ओर ठीक सामने बहुत ऊँचा ध्वज-स्तंभ और सामने ही मुख्य गुंबद में गुरुग्रंथ साहिब शोभायमान हैं। यहाँ भक्तों के बैठकर गुरुबानी तथा कीर्तन सुनने के लिए विशाल हॉल में कालीन बिछे हैं। यहीं सामने जाकर भक्त लोग गुरुग्रंथ साहिब के सामने मत्था टेकते तथा अरदास करते हैं। इसके एकदम दाएँ वह पवित्र सरोवर स्थित है। इसके स्वच्छ जल में रंग-बिरंगी मछलियाँ किलोल कर रही हैं। अन्य पवित्र स्थलों की तरह गुरुद्वारे में जूता उतारकर तथा सिर ढँककर अंदर जाना चाहिए। द्वार पर ही जूता स्टैंड है तथा सिर ढकने के लिए स्कार्फ निशुल्क मिलते हैं। दर्शनार्थियों तथा विदेशी पर्यटकों के लिए यहाँ पर निशुल्क गाइड भी उपलब्ध हैं।

पवित्र सरोवर से जब बाईं ओर आगे बढ़ते हैं तो प्रसाद (कड़ाह प्रसाद) लेत हुए जाते हैं, जो शुद्ध देसी घी का बनाया जाता है। बाईं ओर ही कुछ सीढ़ियाँ उतरकर एअरकंडीशंड लंगर हॉल हैं, साक्षात् अन्नपूर्णा, जहाँ सैकड़ों नहीं तो हजारों भक्त नित्य भोजन करते हैं। भोजन से पूर्व पाँच मिनट हरिकीर्तन 'सतनाम-सतनाम वाहे गुरुजी' कराया जाता है। जैसे ही पहली पंगत लंगर चखकर उठती है, तुरंत सफाई होकर दूसरी पंगत बैठ जाती है, सेवादार स्टील की थालियाँ परोसकर बड़े प्रेम से भोजन कराते हैं। यहाँ लंगर में गाढ़ी दाल, चावल, रोटी बड़ी स्वादिष्ट होती है। भोजन के बाद जूठी थाली यथास्थान रखते हैं। लंगर भवन में अलग-अलग अनेक स्त्री-पुरुष भोजन बनाने, रोटियाँ सेंकने, बरतन साफ करने के कार्य में निस्स्वार्थ भाव से लगे देखे जा सकते हैं। कोई ऊँचा नहीं, कोई नीचा नहीं, सब एक गुरु के बंदे। गुरुद्वारा जैसी निस्स्वार्थ सेवा अन्यत्र देखने में नहीं आती। यहाँ कोई भी दर्शनार्थी अपनी इच्छानुसार सेवा कार्य ले सकता है।

इस गुरुद्वारा परिसर में एक आर्ट गैलरी, आवास, हायर सेकेंडरी स्कूल, बाबा बघेल सिंह म्यूजियम, पुस्तकालय तथा एक अस्पताल भी संचालित होता है। इसी में यात्री निवास, मल्टीलेबल पार्किंग तथा टायलेट की सुविधा भी है। स्वर्ण सा चमकता गुरुद्वारे का शिखर दूर से ही अपनी ओर आकर्षित करता है। यहाँ पर आकर एक अलग ही सुकून और संतुष्टि होती है, दोलायमान चित्त एकदम शांत हो जाता है। यहाँ एक बार आकर बार-बार आने को मन करता है। यहाँ से बाहर निकलने के लिए अशोक रोड की ओर भी एक द्वार है। इसी से अब मैं बाहर निकल रहा हूँ।

आज मैं **झंडेवाला मंदिर** में दर्शन करने आया हूँ। यह मंदिर करौल बाग में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रांतीय कार्यालय केशवकुंज के एकदम निकट ही है। यह प्राचीन देवी मंदरों में गिना जाता है। कहा

जाता है कि मुगल काल में सम्राट् शाहजहाँ ने यहाँ देवी प्रार्थना के रूप में झंडा अर्पित किया था, इसलिए इसे झंडेवाला मंदिर कहा जाने लगा। अरावली पर्वत-शृंखला यहाँ से होकर गुजरती है। लोक में ऐसा प्रचलित है कि बद्री नाम के अपने एक भक्त को माता ने स्वप्न में प्रेरणा देकर यहाँ जमीन में अपने मूर्ति रूप के बारे में बताया। पहाड़ी की खुदाई कर मूर्ति को निकाला गया और फिर उसी स्थान पर इस मंदिर का निर्माण हुआ। वर्षों तक बद्री भगत ने माता की सेवा की तथा मंदिर का विस्तार किया। धीरे-धीरे पहाड़ी पर भी बसावट बढ़ती गई और आज यह मंदिर चारों ओर फैली पॉश कॉलोनियों के बीच में है। मंदिर के निचले हिस्से में सामने ही माता की सुसज्जित पूर्ति विराजमान है। रोजाना अनेक भक्त यहाँ दर्शन करने आते हैं।

शारदीय और चैत्र नवरात्रों में माँ के भक्तों की अपार भीड़ उमड़ पड़ती है। इनमें कन्याओं, माताओं की संख्या अधिक होती है। इन अवसरों पर मंदिर ही नहीं, आस-पास का क्षेत्र विद्युत् लड़ियों एवं दीप-मालिकाओं से लकदक करता रहता है, तब यहाँ की शोभा देखते ही बनती है। मंदिर की चारों दिशाओं में भक्तों की लंबी कतारें लग जाती हैं। पुलिस, मंदिर प्रशासन एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के वालंटियर व्यवस्था में मुस्तैदी से जुटे रहते हैं। इस समय माता का शृंगार तथा शोभा अलौकिक जान पड़ती है, भक्त पलक झपकाना भी भूल जाते हैं। माता के जयकारों तथा भजनों से पूरा वातावरण आध्यात्मिक हो जाता है। दिल्ली शहर में इस मंदिर की बड़ी मान्यता है। यहाँ माता को दंडवत् कर अब मैं आपको बिरला मंदिर ले जा रहा हूँ।

लक्ष्मीनारायण मंदिर (बिड़ला मंदिर) हर बड़े शहर में मिल जाएगा। दिल्ली में यह राम मनोहर लोहिया अस्पताल के पास मंदिर मार्ग पर स्थित है। चूँकि इसका निर्माण उद्योगपति बिड़ला घराने ने कराया, इसलिए लोग इसे बिड़ला मंदिर कहते हैं। असल में यह मंदिर भगवान लक्ष्मीनारायण को समर्पित है, अत: इसे लक्ष्मीनारायण मंदिर भी कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि पहले-पहल इस मंदिर का निर्माण जयपुर के राजा उदयभानू सिंह ने कराया था; उसके बाद सन् १७९३ में राजा पृथ्वी सिंह ने इसका जीर्णोद्धार कराया। अपने समय के समाजसेवी तथा उद्योगपति बलदेवदास बिड़ला तथा उनके पुत्र जुगल किशोर बिड़ला ने एक रुपए की प्रतीक राशि देकर राजा साहब से इसे खरीद लिया और सन् १९३३ में पं. विश्वनाथ शास्त्री के निर्देशन में लगभग १०० कुशल शिल्पियों द्वारा इसका विस्तार तथा निर्माण कार्य शुरू हुआ। छह साल बाद १९३९ में महात्मा गांधी ने इस शर्त पर इसका उद्घाटन किया कि यह बिना किसी जाति भेदभाव के सबके लिए खुला रहेगा। इस मंदिर के मुख्य शिल्पकार श्रीशचंद्र चटर्जी थे।

मंदिर का वास्तु नागर शैली में निर्मित पूर्वमुखी है। यह मंदिर करीब साढ़े सात एकड़ में फैला है। इसका सर्वोच्च शिखर १६० फीट ऊँचा है। इसके निर्माण में कई जगह का संगमरमर उपयोग में लाया गया है। मंदिर का बाहरी हिस्सा संगमरमर तथा लाल बलुआ पत्थर से निर्मित है। मंदिर में तीन ओर दो मंजिला बरामदे हैं। इसके मूल भगवान् विष्णु यानी नारायण और उनकी पत्नी लक्ष्मी हैं। इसके अलावा शिव परिवार, सिद्धि विनायक गणेश, भगवान कृष्ण, पवनपुत्र हनुमान, देवी दुर्गा तथा भगवान बुद्ध भी स्थापित हैं। मूर्तियों की नक्काशी देखते ही बनती है। दीवारों पर रामायण तथा महाभारत की कथाएँ चित्रित हैं तथा गीता के उपदेश अंकित हैं। बाहरी दीवारों पर अनेक ऐतिहासिक एवं धार्मिक विभूतिया खूबसूरती से उकेरी गई हैं। मंदिर में इन सबका दर्शन करते हुए पीछे की ओर निकल जाते हैं, जहाँ पहाड़ी पर पेड़-पौधे, सुंदर बाग-बगीचों के बीच फव्वारे लगे हैं। यह बड़ा रमणीक स्थान है। यहीं पास में गीता भवन है। रामनवमी, दीपावली तथा कृष्ण जन्माष्टमी पर्व यहाँ विशेष रूप से मनाए जाते हैं, तब यहाँ पैर रखने को भी जगह नहीं होती। अब मैं आपको चाँदनी चौक लिये चलता हूँ।

शीशगंज गुरुद्वारा साहिब दिल्ली के ऐतिहासिक गुरुद्वारों में से एक है। यह पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन के सामने चाँदनी चौक में स्थित है। इसका इतिहास शहादतों से भरा हुआ है। इतिहास में उल्लेख है कि जब हिंदुओं पर औरंगजेब के अत्याचार ज्यादा बढ़ गए तो बहुत सारे कश्मीरी पंडित गुरु तेगबहादुरजी की शरण में आए और अपनी पीड़ा बयान की। उस समय गुरुजी के पुत्र गोविंद राय (बाद में गुरु गोबिंद सिंह) दस वर्ष के थे। सबकुछ देखते-सुनते हुए उन्होंने कहा, ''पिताजी, इस समय के हालात किसी महान् व्यक्ति की शहादत माँग रहे हैं, और आज आपसे महान् कौन है, जो यह शहादत दे सके।'' पुत्र की समझदारी भरी बातें सुनकर गुरुजी बड़े खुश हुए। अपने पाँच शिष्यों के साथ वे सम्राट् औरंगजेब को समझाने के लिए दिल्ली आए। पर अत्याचारी औरंगजेब ने शिष्यों के साथ गुरुजी को गिरफ्तार कर कारागार में डाल दिया और उन्हें इसलाम धर्म कबूल करने के लिए कहा। अमानुषिक अत्याचारों के बाद भी गुरुजी अपना धर्म बदलने को राजी न हुए तो धर्मांध औरंगजेब ने ११ नवंबर, १६७५ को उन्हें मौत की सजा सुनाई। इसी जगह पर जल्लाद ने गुरुजी का शीश धड़ से अलग कर दिया।

उसी समय यहाँ स्थित कोतवाली में गुरुजी के वफादार शिष्यों भाई मतीदास, सतीदास, भाई दयाराम को भी मौत के घाट उतार दिया गया और किसी का भी मृत शरीर न उठाने का सख्त आदेश कर दिया। उसी रात जोरों की आँधी-बरसात आई, जैसे कुदरत का क्रोध फूट पड़ा हो। तब गुरुजी का एक शिष्य लखी शाह बनजारा अँधेरे में गुरुजी के शव को उठाकर ले गया। दूसरे शिष्य जैता ने गुरुजी का सिर उठा लिया और शीघ्र ही अपने घर में आग लगाकर गुरुजी का अंतिम संस्कार कर दिया, जहाँ आज का गुरुद्वारा रकाबगंज स्थित है। पिता की शहादत के बाद गोबिंदराय खालसा पंथ के दसवें और अंतिम गुरु बने। समय गुजरने के साथ सन् १७८३ में बघेल सिंह ने दिल्ली पर हमला कर शाह आलम द्वितीय को हरा दिया और दिल्ली के तख्त पर कब्जा कर लिया। तब राजा बघेल सिंह ने गुरुजी की याद में यहाँ गुरुद्वारा बनवाया और इसका

नाम 'गुरुद्वारा शीशगंज साहिब' रखा गया।

लेकिन वर्तमान में जो यह भव्य भवन दिख रहा है, इसका निर्माण १९३० में हुआ। एकदम सामने विशाल और खुला हॉल है। बीचोबीच चमकदार पीतल का एक मंडप है, जिसमें पवित्र गुरुग्रंथ साहिबजी विराजमान हैं और एक सेवादार बड़े तन्मय होकर चँवर डुला रहे हैं। यहीं पर गुरुबानी का गान हो रहा है। यहाँ की शोभा देखते ही बनती है। यहाँ मैं अनेक बार दर्शन कर चुका हूँ। गुरुग्रंथ साहिब के सामने आते ही हाथ श्रद्धा से जुड़ जाते हैं और मस्तक नत हो जाता है। यहाँ असीम शांति तथा गहरी आध्यात्मिक अनुभूति होती है। इसी परिसर में अंदर की ओर, जिस वृक्ष के बीचे गुरुजी अपने कारावास के समय बैठते थे, उसका एक तना सुरक्षित रखा गया है; साथ ही कारावास में गुरुजी ने नहाने के लिए जिस कुएँ के जल का उपयोग किया, वह कुआँ भी इस गुरुद्वारे में आज भी है।

गुरुद्वारे के सामने ही भाई मतीदास, सतीदास चौक है, जहाँ गुरुद्वारा आनेवाले श्रद्धालु मत्था टेककर उनकी शहादत को नमन करते हैं। गुरुद्वारा शीशगंज सभी आधुनिक सुविधाओं से संपन्न है। बाहर से आनेवाले तीर्थयात्रियों के ठहरने के लिए इसमें २५० कमरे तथा २०० लॉकर उपलब्ध हैं। इसके ठीक सामने ही जहाँ एक सिनेमा हॉल हुआ करता था, उसे गुरुद्वारा समिति ने खरीदकर इसमें मल्टीस्टोरी भव्य इमारत का निर्माण कराया है। यह बहुत भीड़भाड़वाला क्षेत्र है, हजारों दर्शनार्थी यहाँ नित्य दर्शन करने आते हैं, सैकड़ों लोगों को नित्य लंगर में भोजन कराया जाता है। यहाँ पुन: मत्था टेक अब मैं इसी पंक्ति में दो-ढाई फर्लांग दूर गौरीशंकर मंदिर में दर्शन के लिए निकल रहा हूँ।

गौरीशंकर मंदिर शैव संप्रदाय के सबसे पुराने मंदिरों में गिना जाता है। इतना ही नहीं, गुनी-ग्यानी तो इसे पूरे ब्राह्मांड का केंद्र बताते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस मंदिर का निर्माण सन् १७६१ में एक मराठा सैनिक अप्पा गंगाधर ने कराया था। वह भगवान् शिव का परमभक्त था। यहीं पर एक युद्ध के दौरान वह बुरी तरह घायल हो गया और बचने की कोई आशा न रही, तब उसने अपने इष्ट भोलेनाथ से प्रार्थना की और स्वस्थ हो जाने के बाद उनका एक मंदिर बनवाने का प्रण किया। घाव इतने गहरे थे कि उसके बचने की कोई उम्मीद न थी; लेकिन भाग्य और भोलेनाथ की कृपा से वह पूर्ण स्वस्थ हो गया, तब उसने यहाँ (चाँदनी चौक) इस मंदिर का निर्माण कराया। आज भी इस मंदिर की छत के पिरामिड के निचले भाग में 'अप्पा गंगाधर' नाम खुदा हुआ है।

लंबे अंतराल के बाद, वर्तमान में मंदिर का जो वास्तु दिख रहा है, सन् १९५९ में इसका पुनर्निर्माण सेठ जयपुरा ने करवाया। मंदिर के पार्श्व में भगवान शिव, माता पार्वती, गौरी पुत्र गणेश और कार्त्तिक की भव्य मूर्तियाँ विराजमान हैं। हाँ, भगवान शिव और पार्वती की मूर्ति के ठीक सामने शिवलिंग शोभायमान है। जैसा कि शिव मंदिरों में विधान है, तिपाई पर रखे एक चाँदी के कलश से पवित्र जल शिवलिंग पर बूँद-बूँद सतत गिर रहा है। यहाँ अकसर भंडारे होते ही रहते हैं। यहाँ भी दंडवत् प्रणाम कर अब मैं इससे थोड़ा आगे और लालकिला के ठीक सामने दिगंबर जैन मंदिर में आ गया हूँ।

दिगंबर जैन मंदिर का वास्तु लाल पत्थरों का बना है, इसलिए इसे 'लाल मंदिर' भी कहते हैं। यह मंदिर जैन धर्म के २४वें तीर्थंकर महावीर स्वामी को समर्पित है। हालाँकि यहाँ पर पहले तीर्थंकर भगवान आदिनाथ की प्रतिमा भी स्थापित है। मुगल काल में मंदिरों के शिखर बनाने की इजाजत नहीं थी, अत: पहले इस मंदिर का कोई शिखर नहीं था, स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद इस मंदिर का पुनरुद्धार हुआ। इतिहास में उल्लिखित है कि बादशाह शाहजहाँ (१६२८-५८) ने जब दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया और इसकी चहारदीवारी बनवाकर शाहजहाँनाबाद नाम से शहर आबाद किया, तब चाँदनी चौक बाजार को आबाद करने के लिए कुछ अगवाल-जैन व्यापारियों को व्यापार के लिए यहाँ आने का आह्वान किया। उसने चाँदनी चौक तथा दरीबाँ में उन्हें रहने का स्थान दिया। परंतु इससे पूर्व मुगल सेना में बलभद्र जैन नाम के एक अफसर थे। उन्होंने यहाँ स्थित मुगल छावनी में अपने टैंट के अंदर पूजा के लिए तीर्थंकर की एक मूर्ति रखकर छोटा सा मंदिर बना लिया था। सन् १६५६ में उसी स्थान पर एक जैन मंदिर का निर्माण हुआ, तब इसे 'उर्दूमंदिर' कहा जाता था, क्योंकि यह उर्दू बाजार इलाके में स्थित था। चूँकि यह मुगल छावनी इलाके में स्थापित किया गया था, तो इसे 'लश्करी मंदिर' भी कहा जाता था। पूजा के समय मंदिर में घंटा, घड़ियाल, नगाड़ा आदि बजाकर अर्चना व आरती की जाती थी। जब औरंगजेब बादशाह बना तो उसने मंदिरों में किसी भी तरह के वाद्य आदि बजाने पर पाबंदी लगा दी। तब ऐसा चमत्कार देखा गया कि मुगल सेना के कुछ अफसर तथा सैनिक रोजाना मंदिर से आती नगाड़े की आवाज सुनते। अंतत: यह समाचार जब औरंगजेब तक पहुँचा तो वह भी यह चमत्कार देखने के लिए मंदिर पर आया और उसने भी नगाड़े की आवाज सुनी। तब उसने अपना वह आदेश वापस ले लिया।

मंदिर परिसर में ठीक सामने गर्वोन्नत कलात्मक और नक्काशीदार 'मान स्तंभ' खड़ा है। मंदिर के खंभे तथा बरामदे की नक्काशीदार जालियाँ शिल्पकला के बेजोड़ नमूने हैं। प्रथम तल पर सामने ही २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर की प्रतिमा शोभायमान है। यहीं पर पहले तीर्थंकर ऋषभदेव, साथ ही पारसनाथजी की मूर्तियाँ विराजमान हैं। सन् १९३१ में यहाँ एक दिगंबर संत आचार्य शांति सागरजी महाराज पधारे थे। यहाँ आकर असीम शांति की गहन अनुभूति हो रही है। अन्य मंदिरों की तरह यहाँ भी चमड़े का सामान अंदर नहीं ले जा सकते। इस मंदिर परिसर में ही बहुत प्रसिद्ध पक्षियों का एक अस्पताल भी है। अस्तपाल की इस इमारत का निर्माण सन् १९५७ में आचार्य देशभूषण महाराज की देखरेख में हुआ, परंतु पक्षी अस्पताल तो १९३० में ही शुरू हो गया था। विगत ६० वर्षों में यहाँ १५ हजार पक्षियों का इलाज किया जा चुका है। मंदिर के अंदर ही जैन पुस्तकालय में विपुल जैन धर्म साहित्य उपलब्ध है। हालाँकि बाहर सड़क पर भारी चिल्ल-पों मची रहती है, पर मंदिर

के अंदर बड़े आनंद और सुकून की अनुभूति होती है। अब मैं मरघटवाले हनुमान बाबाजी के मंदिर की ओर निकल रहा हूँ।

मरघटवाले हनुमानजी का मंदिर रिंग रोड पर, निगम बोध घाट के सामने यमुना के किनारे स्थित है। चूँकि यहाँ यमुना बाजार पास ही स्थित है, इसलिए इसे 'यमुना बाजार हनुमान मंदिर' भी कहा जाता है। कश्मीरी गेट अंतरराज्यीय बस अड्डा तथा पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन भी पास ही हैं। यह हनुमान मंदिर भी उन पाँच मंदिरों में से एक है, जो इंद्रप्रस्थ नगरी में पांडवों ने बनवाए थे। इस मंदिर के बारे में बताया जाता है कि लंका में राम-रावण युद्ध के दौरान लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गए। उनकी मूर्च्छा दूर करने के लिए हनुमानजी जब संजीवनी बूटी लेकर लौट रहे थे, तब उन्होंने इस स्थान पर रुककर थोड़ा विश्राम किया। उस समय यमुना के किनारे यहाँ श्मशान में मुरदों का अंत्येष्टि संस्कार होता था। जब हनुमानजी यहाँ पहुँचे तो इधर चारों ओर फैली बुरी आत्माएँ भाग खड़ी हुईं। हनुमानजी शुद्ध हृदय, विघ्न विनाशक, भूत-पिशाचों को भगानेवाले तथा भगवान के भक्त ठहरे, सो यह स्थान पवित्र एवं कल्याणकारी बन गया।

इस घटना के कुछ समय बाद पत्थर की एक छवि (पिंडी) जमीन में से उभर आई, इसीलिए कहा जाता है कि मरघटवाले हनुमानजी की प्रतिमा स्वयंभू है, यानी मरघटवाले हनुमान बाबा यहाँ स्वयं प्रकट हुए। यमुना भी अब यहाँ से काफी दूर चली गई है और इसके किनारेवाले श्मशान को आज 'निगम बोध घाट' कहा जाता है, जहाँ चिताओं की आग कभी बुझती नहीं है। मैं देख रहा हूँ कि मूर्ति मंदिर में जमीन से सात-आठ फीट नीचे है। आज भी यहाँ एक चमत्कार देखा जाता है कि यमुना नदी में जब पानी चढ़ता है, तब मंदिर में अपने आप पानी आ जाता है और बाबा की मूर्ति कंधे तक यमुना जल में डूब जाती है और जैसे-जैसे यमुना का पानी उतरता है, वैसे-वैसे मंदिर का पानी भी उतर जाता है। कहा जाता है कि वर्ष में कम-से-कम एक बार यमुनाजी हनुमानजी का दर्शन-स्पर्श करने आती हैं। बाबा की मूर्ति को देखकर लगता भी है कि उनके दाहिने हाथ में संजीवनी पर्वत है और बाएँ से जैसे वे जमीन को छू रहे हैं।

यहाँ मरघटवाले बाबा की मूर्ति में एक अनोखा तथा विस्मित कर देनेवाला तेज है। इनके स्मरण मात्र से भक्तों को ब्रह्मचर्य व्रत पालन, चरित्रवान्, बल-बुद्धि विकास का एहसास होता है। बाबा की मूर्ति के चहुँ ओर ऐसा तेजोवलय है कि इनके आगे विनत होते ही सात्त्विक भावनाएँ उमड़ने लगती हैं। मूर्ति से नजर हटती ही नहीं, मन इनके आकर्षण में ऐसा बँध जाता है कि बस बाबा को अपलक देखते ही रहें, इस आनंद को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, बस महसूस किया जा सकता है। सुबह-शाम मंदिर 'मरघटवाले बाबा की जय' के नारों से गुंजायमान रहता है। मंगलवार-शनिवार को यहाँ भक्तों की भारी भीड़ उमड़ती है। कई-कई घंटे में बाबा के दर्शन हो पाते हैं। हनुमान जयंती का पर्व यहाँ बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है, इस दिन यहाँ झाँकियाँ भी निकाली जाती हैं। इस अवसर पर मंदिर भक्तों के लिए प्रातः से रात्रि तक खुला रहता है। मंदिर के पीछे के भाग में एक उद्यान है, जिसे 'हनुमान वाटिका' के नाम से जाना जाता है। दिल्ली में इस मंदिर की बड़ी मान्यता है। अब मैं आपको छतरपुर स्थित कात्यायनी शक्तिपीठ में माता के दर्शनार्थ लिये चलता हूँ।

कात्यायनी शक्तिपीठ को छतरपुर मंदिर भी कहा जाता है। अक्षरधाम मंदिर बनने से पहले इसे दिल्ली का सबसे बड़ा मंदिर होने का गौरव प्राप्त था। मंदिर का पूरा परिसर लगभग ७० एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। इसे मंदिर न कहकर मंदिरों की शृंखला कहना ज्यादा ठीक रहेगा, क्योंकि यह मंदिर तीन भागों में बँटा हुआ है और छोटे-बड़े आकार के इसमें बीस मंदिर सम्मिलित हैं। जहाँ आज यह मंदिर है, वहाँ पहले प्रसिद्ध संत बाबा नागपाल की कुटिया हुआ करती थी। वे यहाँ कर्नाटक से आए थे। माता कात्यायनी को समर्पित यह मंदिर बाबा नागपाल ने सन् १९७४ में बनवाना शुरू किया। यह मंदिर भारत की प्राचीन संस्कृति तथा वास्तुकला का बेजोड़ नमूना है। बाबा नागपाल की मृत्यु तो सन् १९९८ में ही हो गई, पर मंदिर का निर्माण कार्य निरंतर चलता रहा।

माता कात्यायनी माँ दुर्गा का ही एक रूप हैं। एक पौराणिक कथा के अनुसार प्राचीन समय में कात्यायन नाम के एक ऋषि थे। एक बार ऋषि ने माता दुर्गा की घोर तपस्या की। ऋषि की एकनिष्ठ तपस्या से माँ दुर्गा प्रसन्न हुईं और ऋषि को दर्शन देकर वरदान माँगने के लिए कहा। ऋषि ने साष्टांग हो और तनिक सकुचाते हुए कहा कि 'माता, मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप मेरे घर में मेरी पुत्र बनकर जन्म लें। मैं आपका पिता बनने का गौरव प्राप्त करना चाहता हूँ।' माता ने तथास्तु कहा। समय आने पर आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को माता ने ऋषि कात्यायन की पुत्री के रूप में जन्म लिया। कात्यायन के घर में जन्म लेने के कारण माँ का यह अवतार 'कात्यायनी देवी' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। दशमी के दिन माता ने महिषासुर का वध करके भक्तों को उसके आतंक से मुक्त किया।

कात्यायनी शक्तिपीठ परिसर में दिखाई दे रहे सभी मंदिर संगमरमर से बनाए गए हैं। मंदिर में सब जगह जाली का काम है, जिसे 'वेसारा वास्तुकला' कहा जाता है। देवी कात्यायनी की मूर्ति एक बड़े भवन (हॉल) में स्थापित है। इस भवन में प्रार्थना हॉल से भी प्रवेश कर सकते हैं। सोने के मुलम्मे से बनी माता की मूर्ति अपने रौद्र स्वरूप में है, जिनके एक हाथ में चंड-मुंड का सिर तथा दूसरे में खड्ग लिये हैं। आकर्षक पोशाक, अलंकरणों तथा सुंदर विशेष फूलों से सजी माता भक्तों के सब दुःख हरनेवाली प्रतीत हो रही हैं। श्रद्धालु माता को अपलक निहारते रह जाते हैं। आँखें बंद होकर श्रद्धा से हाथ अपने आप जुड़ जाते हैं। सच में बड़ा अलौकिक दृश्य है। माँ के मुख से असीम करुणा बरस रही है। यहाँ आकर व्यक्ति सब दुनियादारी भूल जाता है। यहाँ पर असीम शांति और प्रसन्नता का अनुभव हो रहा

है। इसे शब्दों में बता पाना संभव नहीं है। गूँगे का गुड़ जो है।

माता का शृंगार हर रोज अलग-अलग रूपों में होता है। शृंगार के लिए खास तरह के फूल दक्षिण भारत से मँगवाए जाते हैं। शृंगार प्रातः तीन बजे प्रारंभ हो जाता है। माता के दरबार के निकट ही बाबा नागपाल का चमत्कारी कक्ष है, जहाँ पर उनकी समाधि की नित्य पूजा की जाती है। बाबाजी के कमरे में उनकी मोम की बनी मूर्ति स्थापित है, जो एकदम वास्तविक लगती है। बराबर के एक कमरे में चाँदी की बनी कुरसियाँ तथा मेज है; दूसरे कमरे में शयनकक्ष है, जिसमें चाँदी की नक्काशीदार शानदार टेबल, बिस्तर तथा ड्रेसिंग टेबल है। मंदिरों की इस शृंखला में शिव मंदिर, माँ कात्यायनी मंदिर, माँ महिषासुरमर्दिनी मंदिर, माँ अष्टभुजी मंदिर, झर्पीर मंदिर, मार्कंडेय मंदिर, बाबा की समाधि, नागेश्वर मंदिर तथा त्रिशूल तो है ही, सबसे आकर्षण की केंद्र है—१०१ फीट ऊँची भव्य हनुमानजी की मूर्ति। माता दुर्गा के नौ रूपों के बीच दिव्य शिवलिंग भी स्थापित है। मंदिर परिसर में कई सुंदर बाग, घास के उद्यान मंदिर को चार चाँद लगा रहे हैं।

इस मंदिर की खास बात यह है कि इस परिसर में कोई एक बार प्रवेश कर ले, तो फिर वह मंदिर में चारों ओर ही घूमता रह जाता है, मालूम ही नहीं पड़ता कि मंदिर की शुरुआत कहाँ से और कहाँ पर मंदिर से बाहर निकलना है। क्योंकि मंदिरों को इस तरीके से बनाया गया है कि किसी भी दिशा में जाने पर मंदिर का अंतिम छोर नजर नहीं आता है। मंदिर की दूसरी विशेषता है, प्रवेश द्वार पर चहुँ ओर अपनी भुजाएँ फैलाए खड़ा विशाल वृक्ष। भक्तों की ऐसी आस्था बन गई है कि इस वृक्ष पर धागा या चूड़ियाँ बाँधने से मनोकामना पूर्ण होती है, सो यहाँ असंख्य धागे और चूड़ियाँ बँधी नजर आती हैं। यहीं पर एक भेंटपात्र भी रखा हुआ है। नवरात्रों में यहाँ भक्तों की इतनी भीड़ आती है कि इन सबको नियंत्रित करने के लिए सर्पाकार लंबी-लंबी कतारों में आगे बढ़ाया जाता है। मंदिर के पूरे परिसर में गंदगी का नामोनिशान नहीं है। दाईं ओर एक विशाल इमारत में नित्य भंडारा चलता है। बड़े हॉल में सैकड़ों लोग बैठकर एक साथ भोजन करते हैं। नवरात्रों में तो यह संख्या लाखों में पहुँच जाती है। वैसे तो हर रोज यहाँ दर्शकों का आना-जाना लगा रहता है; परंतु नवरात्रों में मंदिर की शोभा तथा दर्शकों की भीड़ देखते ही बनती है। मंदिर इतना विशाल है कि इसे चार-छह पृष्ठों में लिखे बिना न्याय नहीं हो सकता। माता के दर पर पुनः-पुनः मत्था टेक अब मैं आपको अक्षरधाम मंदिर लिये चलता हूँ।

अक्षरधाम मंदिर दिल्ली में यमुना के किनारे एक अनोखा सांस्कृतिक तीर्थ है। यह मंदिर ज्योतिर्धर भगवान स्वमीनारायण को समर्पित है। इसे भारत ही नहीं, दुनिया का सबसे विशाल हिंदू मंदिर होने का गौरव प्राप्त है। इस नाते यह मंदिर २६ दिसंबर, २००७ में गिनीज बुक ऑफ रिकॉर्ड्स में दर्ज हो चुका है। सन् २००५ में इस मंदिर का निर्माण श्री अक्षर पुरुषोत्तम स्वामीनारायण संस्था के पूज्य प्रमुख स्वामी महाराज ने करवाया। पूज्य स्वामीजी ने १९७१ से २००७ तक दुनिया के पाँच महाद्वीपों में ७१३ मंदिरों का निर्माण कराया। दुनिया में सर्वाधिक हिंदू मंदिर बनवाने का पुरस्कार भी इस मंदिर संस्था को प्राप्त है। यह मंदिर १०० एकड़, अर्थात् ८६३४२ वर्ग फीट परिसर में फैला है। यह ३५६ फीट लंबा, ३१६ फीट चौड़ा तथा १४१ फीट ऊँचा है। इसमें बनाए गए १० द्वार दस दिशाओं के प्रतीक हैं। ग्यारह हजार से ज्यादा कारीगरों ने पाँच वर्ष तक अपनी दिन-रात की मेहनत से इसे यह रूप दिया। मंदिर में कुल मिलाकर २८७० सीढ़ियाँ हैं। पूरे मंदिर को पाँच मुख्य भागों में विभाजित किया गया है।

इस विशालकाय मंदिर में २३४ अद्‌भुत नक्काशीदार खंभे, नौ अलंकृत गुंबद, बीस शिखर तो हैं ही, बीस हजार विभिन्न मूर्तियाँ भी हैं, जिनमें प्राचीन ऋषि-संतों की प्रतिमाएँ भी स्थापित हैं। मंदिर का वास्तु गुलाबी, सफेद संगमरमर तथा बलुआ पत्थरों के संयोजन से बना है। इस मंदिर निर्माण की सबसे अद्‌भुत विशेषता है कि इसमें स्टील, लोहे और कंक्रीट का इस्तेमाल बिल्कुल नहीं किया गया है। परंपरागत भारतीय शैली में बनाया गया 'भक्ति द्वार' भक्ति एवं उपासना के २०८ स्वरूपों को दिग्दर्शित करता है। 'मयूर द्वार' में परस्पर जुड़े हुए नृत्यरत ८६९ भव्य मयूर तोरण एवं कलामंडित स्तंभों पर दर्शित हैं। यह अपने आप में शिल्पकला की द्वितीयोनास्ति कृति है। 'सहजानंद शो' यानी वाटर शो में सायंकाल को जीव के जन्म-मृत्यु के चक्र को बड़ी सरलता एवं सहज ढंग से समझाया जाता है। २४ मिनट के इस शो में केनोपनिषद् से चुनी गई कहानियाँ प्रदर्शित होती हैं, जिसमें रंग-बिरंगी किरणें, पानी के नीचे की लपटें, प्रकाशित पानी की तेज धारें आदि सब आकर्षक होते हैं।

इसी में 'नीलकंठ यात्रा' के तहत छह से अधिक कहानियों पर बनी फिल्म दिखाई जाती है। 'संस्कृति विहार' के अंतर्गत नाव में सवार होकर बारह मिनट में भारतीय संस्कृति की वैभवशाली-गौरवशाली विरासत की दस हजार वर्षों की यात्रा बड़े अलौकिक ढंग से दिखाई-समझाई जाती है, जिसमें वैदिक काल से लेकर तक्षशिला तक एवं प्राचीन खोजों के युग आदि का आह्लादकारी एवं मन को गौरवान्वित करनेवाला अनुभव होता है। 'भारत उपवन' के अंतर्गत पीतल की सुंदर मूर्तियों के साथ करीने से सजाए गए नयनाभिराम बगीचे तथा घास के मैदान इस पूरे परिसर को आकर्षित व आनंदित बनाते हैं। 'अभिषेक मंडप' में नीलकंठ वर्णी मूर्ति का जलाभिषेक किया जाता है, जिसमें भजन व प्रार्थनाएँ होती हैं। दर्शनार्थी भी मूर्ति का जलाभिषेक कर सकते हैं।

मंदिर को भली प्रकार देखने-समझने में छह-सात घंटे लगते हैं। सोमवार को मंदिर बंद रहता है। मंदिर में प्रवेश निशुल्क है, परंतु अंदर दिखाए जानेवाले शोज का टिकट लगता है। हाँ, इन शोज को देखे बिना यह यात्रा अधूरी और फीकी ही रहती है। मंदिर में मोबाइल आदि लेकर अंदर नहीं जा सकते। मंदिर दर्शन करने पर आध्यात्मिक के साथ-साथ एक अविस्मरणीय सांस्कृतिक यात्रा भी हो जाती है। वैसे तो इस मंदिर की विशालता एवं भव्यता एक अलग लेख की माँग करती है, स्थानाभाव के कारण इस यात्रा को बेहद संक्षेप में बताया गया है। दिल्ली आगमन हो तो इस मंदिर के दर्शन करना न भूलें।

दिल्ली के तीर्थ-दर्शन करते हुए मुझे तो आह्लादकारी गौरव-बोध हुआ। आप यह न समझ लें कि दिल्ली में इतने ही तीर्थ-स्थल हैं। इनके अलावा और भी बेहद दर्शनीय तीर्थस्थल यहाँ हैं।

साअ

जी-३२६, अध्यापक नगर,
नांगलोई, दिल्ली-११००४१
दूरभाष : ९८६८५२५७४१

क्या हैं नवरात्र ?

● शशिकांत 'सदैव'

किसी भी प्रकार की साधना के लिए शक्ति का होना जरूरी है और शक्ति की साधना का पथ अत्यंत गूढ़ और रहस्यपूर्ण है और नवरात्र कुछ और नहीं, शक्ति व साधना का ही पर्व है।

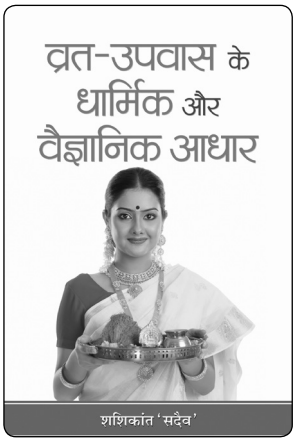

शशिकांत 'सदैव'

हम नवरात्र में व्रत इसलिए करते हैं, ताकि अपने भीतर की शक्ति, संयम तथा नियम से सुरक्षित हो सके; उनका अनावश्यक अपव्यय न हो। संपूर्ण सृष्टि में जो ऊर्जा का प्रवाह है, उसे अपने भीतर रखने के लिए स्वयं की पात्रता तथा इस पात्र की स्वच्छता भी जरूरी है। शक्ति को भीतर प्रवेश कराने का ही पर्व है नवरात्र।

भारतीय धर्म में व्रत का विशेष महत्त्व है। वस्तुत: व्रत केवल धर्म से नहीं, अपितु हमारे आचरण से भी जुड़े हुए हैं। अलग-अलग व्रतों के माध्यम से हम समूची भारतीयता, धार्मिक संस्कृति और अध्यात्म के मर्म को समझ सकते हैं। हमारे पुराण कई व्रतों को मानव सृष्टि के लिए कल्याणकारी मानते हैं। नवरात्र पर रखे जानेवाले व्रतों का सर्वाधिक महत्त्व माना गया है। नवरात्र पर माँ जगदंबा के नौ रूपों की पूजा की जाती है। नवरात्र में आदिशक्ति की साधना और व्रत से साधकों को हर प्रकार के कष्टों से मुक्ति मिलती है। यह प्रश्न विशेष रूप से उठाया जाता है कि माँ के रूपों की साधना रात्रि में ही क्यों होती है ? इसके पीछे एक रहस्य है, हम रात का समय सोने के लिए व्यतीत करते हैं। हम तमोगुण की मोह-निद्रा में कई काल तक सोते आए हैं। नवरात्र का संदेश यही होता है कि तमोगुण की मोह-निद्रा से मुक्त होने का अब समय आ गया है। धार्मिक ग्रंथों में भी रात्रि जागरण का विशेष विधान देखने को मिलता है। रात्रि में जागने का अर्थ है निद्रा को छिन्न-भिन्न कर देना या अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए जागकर माँ दुर्गा की आराधना करना।

भगवती दुर्गा के अनेक रूप हैं। उनके विभिन्न रूपों के अनुसार उनकी उपासना पद्धतियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। सामान्यत: देवी के स्वरूप को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। वे हैं सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। नवरात्र का समय तीनों ही प्रकृति की देवियों की उपासना के लिए अति उत्तम कहा जा सकता है। लेकिन नवरात्र के नौ दिनों को शक्ति के नौ स्वरूपों में विभाजित किया गया है और इन दिनों शक्ति के नौ रूप हैं—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चंद्रघंटा, कूष्मांडा, स्कंदमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री।

क्यों मनाते हैं नवरात्रे?

वर्ष में दो नवरात्र होते हैं शारदीय और वासंती। इन दोनों ही नवरात्रों का काफी महत्त्व है। दोनों नवरात्र संपातों में पड़ते हैं। संपात का अर्थ है—स्थूल रूप से दिन-रात का बराबर होना या पृथ्वी का सूर्य से सम दूरी पर होना।

इसी कारण इन दोनों ऋतुओं में ऊर्जा उत्पन्न होती है। इसकी सही पहचान और विनियोग के लिए दोनों के शुक्ल पक्ष की प्रारंभिक नौ तिथियों में माँ दुर्गा के नौ स्वरूपों की पूजा-अर्चना और व्रत का विधान है।

दैवी शक्ति से ओत-प्रोत होने के साथ-साथ भारत एक कृषिप्रधान देश भी है। यहाँ पर देश की भूमि को मातृभूमि कहा जाता है। इस कृषिप्रधान देश में जब फसल बदल रही होती है तो देवी पर्व मनाते हैं।

एक वर्ष में चार नवरात्र मनाई जाती हैं, जिनमें दो गुप्त और दो जगत् के सामने मनाई जाती हैं। वर्ष के चार नवरात्र शक्ति संप्रदाय के अनुसार—

१. चैत्र शुक्ल प्रतिपदाचैत्र मास की नवरात्र (जिसमें चैत्री फसल होती है), वासंतिक नवरात्र।

२. आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा।

३. माघ शुक्ल प्रतिपदा।

४. अश्विनी शुक्ल प्रतिपदाशारदीय नवरात्र अश्विनी मास (ग्वार की फसलवाला समय) अर्थात् शारदीय नवरात्र।

आषाढ़ के माघ मास के नवरात्र गुप्त माने जाते हैं और चैत्र अश्विनी नवरात्र प्रत्यक्ष होते हैं। इन प्रत्यक्ष नवरात्रों में साधारण हो या विशेष, सभी समूह माँ देवीजी की साधना करते हैं। देखा जाए तो ये चार

मास ऋतु परिवर्तन के हैं।

इस प्रकार सामान्य जन वर्ष में दो बार नवरात्र प्रमुख रूप से मनाते हैं।

नवरात्रों में भगवती माँ देवीजी की उनके नौ विशेष अवतारों के रूप में पूजा की जाती है। यह पर्व भक्ति भाव से लगातार नौ रात्रियों में देवीजी की पूजा-अर्चना और वंदना का पर्व है और दशमी तिथि का विशेष महत्त्व है।

शारदीय नवरात्र हों या चैत्र पक्षीय नवरात्र हों, इन नौ पवित्र दिनों में शक्ति की पूजा का विशेष विधान है।

नवरात्रों की प्रथम तीन रात्रियों में आदिशक्ति दुर्गा की अगली तीन रात्रियों में महालक्ष्मीजी की और अंतिम तीन रात्रियों में देवी सरस्वतीजी की साधना करते हैं।

मन एकाग्र हो, अंत:करण शुद्ध हो, आत्मानुशासन, आत्मसंयम, सच्चा ऐश्वर्य, आंतरिक समृद्धि हो; वास्तव में धार्मिक दृष्टि से यह आत्मशुद्धि का पर्व है। इन दिनों की पूजा-पाठ-अर्चना आदि से जीवन में सुख, शांति व समृद्धि आती है। यह पर्व भौतिक तथा नैतिक शक्तियों को समान रूप से जाग्रत करनेवाला महोत्सव है।

मनुस्मृति में लिखा है कि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का वास होता है। नारी शक्ति को कोई भी व्यक्ति अस्वीकार तथा तिरस्कार भी नहीं कर सकता। देवी भागवत में उनके विराट् स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है। उनके विराट् स्वरूप के प्रदर्शन के समय आकाश उनका मस्तक, विश्व उनका हृदय, पृथ्वी जंघा, वेद वाणी और वायु प्राण थी। चंद्रमा एवं सूर्य उनके नेत्र थे, कान दिशाएँ थीं, नाभि पाताल, वक्ष ज्योतिष्चक्र, मुख जनलोक तथा पलकें दिन-रात थीं। ऐसा अद्‌भुत स्वरूप तो देवी का ही हो सकता है, जो विश्व के कण-कण में व्याप्त हैं।

वास्तव में यह शक्ति ही विश्व को जन्म देती है, उसका पालन करती है और विनाश भी इसी शक्ति के कारण होता है। ब्रह्मा को सृष्टि का जन्म देनेवाला, विष्णु को पालन करनेवाला तथा रुद्र (शिव) को संहार करनेवाला कहा जाता है। भले ही जन्म, पालन और संहार के लिए तीन देव हैं, मगर ये तीनों देव भी अपनी-अपनी शक्ति के साथ ही जाने और माने जाते हैं। ब्रह्मा के साथ महासरस्वती, विष्णु के साथ महालक्ष्मी और रुद्र (शिव) के साथ महाकाली का नाम शक्ति के रूप में जुड़ा है।

वैदिक साहित्य में शक्ति सृजति ब्रह्मांडम् कहकर जिसकी ओर संकेत किया गया है, वह दुर्गा देवी ही हैं। यही देवी ऋग्वेद में अपना परिचय इन शब्दों में देती हैं, मैं स्वयं समग्र जगत् की ईश्वरी हूँ। मैं ही धनदात्री हूँ। उपास्य तत्त्वों में मैं ही श्रेष्ठ हूँ। मैं ही एकमात्र उपास्य हूँ। मैं ही संपूर्ण जगत् में हूँ। मुझे तुम सर्वरूप में देख रहे हो, मगर पहचान नहीं रहे हो।

नवरात्र का पर्व नैसर्गिक पवित्रता और बाल-स्वभाव के आह्वान का पर्व है। नवरात्र का अह्वान जितनी सुरुचि, सादगी या प्रकृति के साथ संतुलन रखते हुए किया जाए और जितने बाल-सुलभ भाव व सरल, निश्चल मन से किया जाए, उतना ही माँ दुर्गा प्रसन्न होती हैं।

नवरात्र का संदेश हर वर्ष नवसृष्टि का संदेश लेकर आता है तथा चैत्र नवरात्र से ही नए वर्ष का प्रारंभ माना जाता है।

नवरात्र प्रथा का आरंभ

भारतीय पुराणों में दुर्गा, अर्थात् शक्ति के अवतरण से संबंधित कई कथाएँ प्रचलित हैं। इन्हीं में से एक प्रमुख कथा के अनुसार शुंभ-निशुंभ नामक महाबली असुरों ने संपूर्ण जगत् में अपने कुकर्मों से त्राहि-त्राहि मचा रखी थी। इन असुरों के आतंक से भयभीत होकर सभी देवता देवी पार्वती के पास पहुँचे और अपनी व्यथा का बयान किया।

देवताओं की पीड़ा को जानकर देवी पार्वती के शरीर से एक कुमारी कन्या दिव्य रूप में प्रकट हुई, जिसने शुंभ-निशुंभ का वध करके पाप का नाश कर दिया। इस प्रकार जब संसार में पुन: धर्म की लहरें उठने लगीं, तब देवताओं ने नवरात्र व्रत रखे तथा माँ दुर्गा का श्रद्धापूर्वक पूजन किया। बस तभी से नवरात्र प्रथा का आरंभ हुआ।

अन्य कथाएँ

१. कौशल देश में सुशील कुमार नाम का एक निर्धन ब्राह्मण रहता था। उसके कई बच्चे थे। प्रतिदिन मिलनेवाली भिक्षा से वह अपने परिवार का भरण-पोषण करता था। देवताओं, पितरों और अतिथियों की पूजा करने के बाद आश्रित जनों को खिलाकर ही वह स्वयं भोजन करता था। वह हमेशा दूसरों की सहायता के लिए तैयार रहता था और धर्म-कर्म के कार्यों में अपना समय व्यतीत करता था। उसके मन में कभी भी अहंकार और ईर्ष्या जैसे तुच्छ विकार उत्पन्न नहीं होते थे।

एक समय उसके घर के निकट सत्यव्रत नामक एक तेजस्वी ऋषि आकर ठहरे। मंत्रों और विद्याओं का ज्ञाता उनके समान दूसरा कोई न था। सुशील के मन में उनसे मिलने की इच्छा जाग्रत् हुई और वह उनके पास चला गया। सत्यव्रत मुनि को प्रणाम करके वह बोला, ऋषिवर, आपकी बुद्धि अत्यंत विलक्षण है। मैं एक निर्धन ब्राह्मण हूँ। कृपा करके मुझे बताएँ कि मेरी दरिद्रता कैसे समाप्त हो सकती है और कैसे मैं इस जीवन में सफल हो सकता हूँ? मुनिवर, आपसे यह पूछने का केवल इतना ही अभिप्राय है कि मुझमें परिवार का भरण-पोषण करने की शक्ति आ जाए। धन के अभाव के कारण मैं उन्हें समुचित सुविधाएँ और अन्य

सुख नहीं दे पा रहा हूँ। दयानिधान, तप, दान, व्रत, मंत्र अथवा जप कोई ऐसा उपाय बताएँ, जिससे कि मैं अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकूँ। मुझे केवल इतने ही धन की अभिलाषा है, जिससे मेरा परिवार सुखी हो जाए।

सत्यव्रतजी ने सुशील को भगवती भवानी माँ की महिमा बताते हुए नवरात्र व्रत करने की सलाह दी। सुशील ने सत्यव्रतजी को अपना गुरु मानकर उनसे मायाबीज नामक भुवनेश्वरी मंत्र की दीक्षा ली। उसके बाद नवरात्रि व्रत रखकर उस मंत्र का नियमित जाप शुरू कर दिया। नौ वर्षों तक वह प्रत्येक नवरात्रों में भगवती माँ के मायाबीज का निरंतर जप करता रहा। सुशील की भक्ति से प्रसन्न होकर नवरात्रों में अष्टमी की आधी रात को देवी माँ साक्षात् प्रकट हुईं और सुशील को उसका वर प्रदान करके उसे संसार का समस्त वैभव, ऐश्वर्य और मोक्ष प्रदान किया। इस प्रकार किसी भी कार्य को श्रद्धा, भक्ति और निष्ठा से किया जाए तो निश्चय ही उसका अनुकूल फल प्राप्त होता है।

२. दुर्गा-पूजन की पद्धति का स्पष्ट वर्णन ग्यारहवीं शताब्दी में मिलता है। बंग नरेश हरिदेव वर्मा के एक मंत्री भवदेव भट्ट ने अपने पूर्ववर्ती व्यक्तियों का उल्लेख करते हुए दुर्गा पूजा की पद्धति को लिपिबद्ध किया। इसके पश्चात् चौदहवीं शताब्दी में श्री वाचस्पति मित्र ने दुर्गा-पूजन का विशद वर्णन किया है। बंगाली पंडित रघुनंदन ने काफी प्रयासों के पश्चात् दुर्गा-उपासना की जो पद्धति तैयार की, वह बहुत लोकप्रिय हुई। सोलहवीं शताब्दी में राजा कंसनारायण बहुत बड़े दुर्गा-उपासक हुए थे। उन्होंने अपने राजपुरोहित रमेश शास्त्री के सहयोग से दुर्गा पूजा का अत्यंत विराट् व भव्य आयोजन किया था। बंगाल के राजशाही प्रांत के ताहिरपुर नगर में आयोजित इस भव्य समारोह में राजा कंसनारायण ने लगभग साढ़े आठ लाख रुपए खर्च किए। इसी के बाद बंगाल के हिंदुओं में दुर्गा-पूजा एक अनिवार्य उत्सव बन गया।

नवरात्रों से लाभ

नवरात्रे हमारे जीवन में अलौकिक शक्ति का संचार करते हैं, जिसमें तन और मन दोनों को निर्मल करने की प्रक्रिया की जाती है। पहले उपवास द्वारा तन को नियंत्रित किया जाता है, इसके बाद साधना द्वारा मन को वश में किया जाता है। अत: नवरात्रे शारीरिक व अलौकिक, दोनों प्रकार की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। नवरात्रों को साधना के लिए उत्तम समय कहा गया है। शास्त्रों में नवरात्रों की बहुत महिमा बताई गई है। इस दौरान की गई देवी की आराधना भक्त पर असीम कृपा की वर्षा करती है।

कलियुग में समस्त कामनाओं को सिद्ध करने के लिए दुर्गा पूजा ही श्रेष्ठ मानी गई है। वैसे तो प्रतिदिन दुर्गा सप्तशती का पाठ करने से मन को शांति और शक्ति मिलती है, लेकिन नवरात्र के विशेष अवसर पर विधि-विधान से माँ दुर्गा की पूजा करने से विशेष फल मिलता है। इस अवसर पर विधिवत् पूजन कैसे किया जाए, यह जानना जरूरी है। वेद-पुराणों के अनुसार, दुर्गा माता की शक्ति के असंख्य स्वरूप हैं, क्योंकि यह ब्रह्म व प्रकृति स्वरूप हैं। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रजो, सतो, तमो गुण प्रधान हैं। उसी प्रकार माता शक्ति में तीनों गुण प्रधान हैं। महाकाली रौद्र, महालक्ष्मी सतो और महासरस्वती रजो गुण प्रधान हैं। महाकाली दुष्टों का संहार करती हैं, महालक्ष्मी संसार का पालन-पोषण और महासरस्वती जगत् की उत्पत्ति व ज्ञान का संचार करती हैं। भारतवर्ष में तकरीबन शतप्रतिशत लोग माँ दुर्गा पर अटूट विश्वास रखते हैं और माँ को उनके १०८ नामावली में से किसी एक नाम से चुनकर उसका विधिपूर्वक पूजन करते हैं।

सा.अ.

(श्री शशिकांत 'सदैव' की सद्य:प्रकाशित पुस्तक 'व्रत-उपवास के धार्मिक और वैज्ञानिक आधार' से साभार)

सुधी पाठकों, लेखकों एवं
विज्ञापनदाताओं को **'साहित्य अमृत'**
परिवार की ओर से **नवरात्र एवं नवसंवत्सर**
की हार्दिक शुभकामनाएँ!

भारतीय परंपराओं में वृक्ष-पूजा

• शंकरलाल माहेश्वरी

भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं में पेड़ों को विशिष्ट महत्ता प्रदान की गई है। पेड़ हमारी संस्कृति के संरक्षक भी माने जाते हैं। हमारे साधु-संतों और महात्माओं ने पेड़ों की छत्रच्छाया में ही साधना करते हुए ज्ञान प्राप्त किया था। भारत भूमि पर वृक्षों, वनों, पौधों और पत्तों को देवतुल्य मानकर पूजा जाता रहा है। प्रत्येक मांगलिक अवसर पर घरों के दरवाजों पर कनेर, आम, अशोक और केले के पत्तों से सजावट होती रही है। विशेष पर्वों और उत्सवों पर वृक्षों की पूजा-अर्चना की जाती है। परंपरा से आशय उस परिपाटी से है, जो निश्चित सांस्कृतिक मूल्यों के निर्वाह तथा उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे-ही-आगे हस्तांतरित करने के उद्देश्य से समाज में निश्चित अवसर पर निश्चित विधि से अपनाई जाती है।

हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों और वेदों में भी उल्लेख है कि मानव शुद्ध वायु में श्वास ले, शुद्ध जलपान करे, शुद्ध अन्न-फल भोजन करे, शुद्ध मिट्टी में खेले-कूदे व कृषि करे, तब ही वेद प्रतिपादित उसकी आयु 'शतं जीवेम् शरदः शतम्' हो सकती है। हिंदू धर्म में तो कई देव मंदिरों में पेड़ को भी देवता का प्रतीक माना जाता है। पीपल, तुलसी, वट वृक्षों की पूजा-अर्चना पर्यावरण सुरक्षा की ही परिचायक है। हमारे धर्मशास्त्रों में महामनीषियों ने वापी, पाली और जलाशय बनाकर वहाँ वृक्षारोपण करना किसी यज्ञ के पुण्य से कम नहीं माना है। ऋषि आश्रमों में यज्ञ-हवन आदि में समिधा का प्रयोग होता है, वह भी वृक्षों की देन है, जिसे पवित्र मानकर उपयोग किया जाता है।

वृक्ष एक ओर जहाँ हमारे जीविकोपार्जन के साधन हैं, वहीं दूसरी ओर हमारे जीवन के भी आधार हैं। वृक्षारोपण और जलाशय निर्माण को पुनीत कार्य माना जाता है। हमारे राजा-महाराजाओं ने प्रजा की सुख-सुविधा के लिए न केवल सड़कों का ही निर्माण कराया बल्कि इनके किनारे छायादार वृक्ष व जलाशयों की व्यवस्था भी की थी। सम्राट् अशोक ने समूचे राज्य में पर्यावरण संरक्षण की दिशा में जगह-जगह फलदार व छायादार वृक्ष लगवाकर वन्य जीवों और जीव-जंतुओं को आश्रय प्रदान किया। वृक्ष हमारे जीवन के सहचर हैं, हमारा जीवन वृक्षों के अस्तित्व पर निर्भर है। वृक्षों की छोड़ी गई प्रश्वास हमारी श्वास है। वृक्षों के मूल, तना, पत्र, पुष्प, फल हमारे जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। वृक्षों की छाया हमें शीतलता प्रदान करती है। वृक्ष मेघों को आकर्षित कर हमारे लिए प्राकृत जल की व्यवस्था करते हैं—वृक्ष पुराण।

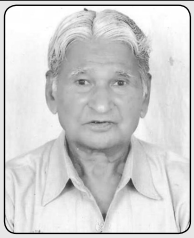

सुपरिचित लेखक-कवि। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति जिला शिक्षा अधिकारी पद से सेवानिवृत्त।

भारतीय समाज में पेड़ों की पूजा व नदियों को माँ का दर्जा देना प्रकृति संरक्षण का परिचायक है। गंगा, यमुना, सरस्वती आदि पवित्र नदियों का उल्लेख शास्त्रों में पूज्य भाव से है। रामायण में कांड, महाभारत में पर्व और श्रीमद्भागवत में स्कंध शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ क्रमशः तना, पोर और प्रधान शाखा से है। कण्व की पुत्री शकुंतला का पूरा बचपन वृक्षों की छाया तले ही व्यतीत हुआ। उसकी विदाई के समय वृक्षों की पत्तियों से आँसू टपक रहे थे। उसने वृक्षों से गले मिलकर विदा ली थी। रामायण काल में राम का वनों में निवास करना और वृक्षों को अपना आश्रय बनाना उनके प्रकृति प्रेम का ही सूचक है। लंका में अशोक वाटिका में सीता का ठहराव वृक्षों की महत्ता प्रतिपादित करता है।

वृक्ष व वनस्पति रुद्र के रूप में मानी गई है, क्योंकि ये विषैली गैस पीकर अमृतमयी गैस निकालते हैं, अतः वृक्षों को सींचना नीलकंठ महादेव को जल चढ़ाना ही माना गया है। विष्णु पुराण में उल्लेख किया गया है कि सौ पुत्रों की प्राप्ति से भी बढ़कर एक वृक्ष लगाना और उसका पालन-पोषण करना पुण्य माना गया है। चरक संहिता में प्राकृतिक औषधियों व जड़ी बूटियों का चिकित्सकीय दृष्टि से उपयोग बताया गया है। नीबू, आँवला, पपीता, सेव, पालक, चंदलाई आदि शरीर के लिए पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक हैं। मत्स्य पुराण में दस पुत्रों, बावड़ियों एवं पुत्रों से बढ़कर एक वृक्ष माना गया है। वृक्षों के प्रति विशेष प्रेम से प्रेरित होकर राम ने दंडकारण्य, इंद्र ने नंदनवन, कृष्ण ने वृंदावन, सौनकादि ऋषियों ने नैमिषारण्य तथा पांडवों ने खांडव वनों का निर्माण किया था। वर्षा का अह्वान, भूस्खलन का बचाव, प्राणवायु का दान और जीव-जंतुओं का संरक्षण आदि कार्य भी वृक्षों द्वारा की संपादित

होते हैं। हमारी सांस्कृतिक परंपराओं में प्रकृति प्रेम की अनेक गाथाएँ भरी पड़ी हैं, जिनके क्रियान्वयन से मानव जीवन को सुखी, समृद्ध बनाने हेतु प्रकृति प्रदत्त साधनों के संरक्षण की व्यवस्था बनाई गई है।

हमारी परंपराओं में वृक्षों की पूजा का विशेष महत्त्व रहा है, जो पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को सुखी व स्वस्थ बनाने की दिशा में सफल है। वृक्ष पूजा की परंपरा में कार्तिक मास में महिलाएँ पीपल व वट वृक्ष की पूजा कर पानी सींचती है तो पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। कदंब के पेड़ के नीचे परिवार सहित भोजन किया जाए तो परिवार फलता-फूलता है। जिस घर में तुलसी की पूजा होती है, उस घर में यमराज प्रवेश नहीं करता है। प्राचीन काल में प्रत्येक शिवालय के पास विल्व पत्र का वृक्ष लगाया जाता था, जिसकी पत्तियाँ शिवजी को अर्पित होती है। तुलसी एकादशी के दिन तुलसी के पौधों की अपनी पुत्री के समान विवाह की रस्म संपन्न की जाती है। शास्त्रवेत्ताओं का कथन है कि पथ पर वृक्षारोपण करने से दुर्गम फल की प्राप्ति होती है, जो फल अग्निहोत्र करने से भी उपलब्ध नहीं होता। वह मार्ग पर पेड़ लगाने से मिल जाता है।

ब्रह्मांड पुराण में लक्ष्मी को 'कदंब वनवासिनी' कहा गया है। कदंब के पुष्पों से भगवान विष्णु की पूजा की जाती है। वृहदारण्यक उपनिषद् में पुरुष को वृक्ष का स्वरूप माना गया है। पद्म पुराण में भगवान विष्णु को पीपल वृक्ष, भगवान् शंकर को वटवृक्ष और ब्रह्माजी को पलाश वृक्ष के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। घर में वास्तु दोषों को नष्ट करने के लिए तुलसी का पौधा सक्षम है। माता लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए घर में श्वेत आक, केला, आँवला, हरसिंगार, अशोक, कमल आदि का रोपण शुभ मुहूर्त में करने का विधान है। आंध्र प्रदेश में तो नीम के पेड़ को राज्य वृक्ष माना गया है।

ब्रह्मांड पुराण में लक्ष्मी को 'कदंब वनवासिनी' कहा गया है। कदंब के पुष्पों से भगवान विष्णु की पूजा की जाती है। वृहदारण्यक उपनिषद् में पुरुष को वृक्ष का स्वरूप माना गया है। पद्म पुराण में भगवान विष्णु को पीपल वृक्ष, भगवान् शंकर को वटवृक्ष और ब्रह्माजी को पलाश वृक्ष के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। घर में वास्तु दोषों को नष्ट करने के लिए तुलसी का पौधा सक्षम है। माता लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए घर में श्वेत आक, केला, आँवला, हरसिंगार, अशोक, कमल आदि का रोपण शुभ मुहूर्त में करने का विधान है। आंध्र प्रदेश में तो नीम के पेड़ को राज्य वृक्ष माना गया है। शास्त्रानुसार ईशान कोण में आँवला नैऋत्य में इमली, आग्नेय में अनार, वायव्य में बेल, उत्तर में कैथ व पाकर, पूर्व में बरगद, दक्षिण में गूगल और गुलाब तथा पश्चिम में पीपल का वृक्ष लगाना शुभ माना गया है।

तुलसी को विष्णुप्रिया, केला को बृहस्पति और संतानदाता तथा पीपल को ब्रह्मा, विष्णु, महेश के निवास के रूप में पूजा जाता है। चंदन भक्त और भगवान के माथे की शोभा है। कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की नवमी को 'आँवला नवमी' कहते हैं। कहते हैं कि पीपल के पेड़ को नियमपूर्वक जल चढ़ाया जाए तो शनि का दुष्प्रभाव समाप्त हो जाता है। चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की दशमी को 'दशामाता' कहा जाता है। स्त्रियाँ इस रोज पीपल पूजा करती हैं। ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को स्त्रियाँ वटवासिनी का व्रत रखती हैं। वटवृक्ष को जल से सींचती हैं। हरियाली अमावस्या और बसंत पंचमी आदि पर्वों पर व्रत-उपवास के साथ वनस्पति पूजा होती है। छत्तीसगढ़ के रतनपुर क्षेत्र के ग्रामीण इलाकों में आम के पेड़ से आम तोड़ने से पहले उसके विवाह की विधि संपन्न की जाती है।

बढ़ती जनसंख्या और भौतिकवादी व्यवस्थाओं के फलस्वरूप वृक्षों की अंधाधुंध कटाई हो रही है। प्रकृति से निर्दयतापूर्वक छेड़छाड़ की जा रही है, अत: आज प्रदूषण की भयावही समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। गांधीजी ने कहा था, ''प्रकृति सभी जीवों का भरण पोषण तो करती है किंतु एक भी लालची की तृष्णा शांत करने में अक्षम है।'' पीपल बरगद को ब्राह्मण माना जाता था। उन्हें काटना ब्रह्म हत्या के समान माना जाता है। जिन पेड़ों पर पक्षियों के घोंसले हों तथा देवालय और श्मशान भूमि पर लगे पेड़ों को काटना शास्त्रानुकूल नहीं है। साथ ही दूधवाले वृक्ष, जैसे बड़, पीपल, बहेड़ा, हरड़, नीम आदि को काटने पर पाप का भागीदार होता है। किसी कारण से वृक्ष काटना ही हो तो वृक्ष पर निवास करनेवाले जीव-जंतुओं से क्षमा-प्रार्थना करते हुए अन्यत्र वृक्षारोपण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

जोधपुर जिले की खेजड़ली ग्राम में संवत् १७८० में ३६३ वीर-वीरागंनाओं ने अपने सिर कटवाकर मरुस्थल में खेजड़ी के वृक्षों की रक्षा की थी। आज भी विश्नोई संप्रदाय के लोग खेजड़ी के पेड़ की सुरक्षा हेतु समर्पित हैं। पेड़ों को नष्ट होने से बचाने के लिए ही ओरण, डोली तथा गोचर व्यवस्था की परंपरा का विकास हुआ था। ओरण एक संरक्षित वन है, जो किसी देवस्थान से जुड़ा होता है। डोली किसी मठ या मंदिर के पुजारी को व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में दी जाती है, ताकि वन संरक्षण होता रहे।

बढ़ती जनसंख्या और भौतिकवादी व्यवस्थाओं के फलस्वरूप वृक्षों की अंधाधुंध कटाई हो रही है। बढ़ते हुए सड़कों के जाल, उद्योगों की स्थापना, बाँधों के निर्माण तथा रेलवे लाइनों के विस्तार के कारण वृक्षों की अपार कटाई हो रही है; अत: नष्ट हो रहे वृक्षों के स्थान पर नए वृक्षारोपण पर ध्यान दिया जाए तथा कानूनों का कठोरता से पालन किया जाना आवश्यक हैं, अन्यथा वह दिन दूर नहीं है, जब प्रकृति प्रकोप से पूरा प्राणि-जगत् प्रभावित हो जाएगा और हमारे अस्तित्व को खतरा उत्पन्न होगा। अत: वृक्षों के बचाव हेतु सभी को कृत-संकल्प होना चाहिए।

पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी
पोस्ट-आगूचा, जिला-भीलवाड़ा
राजस्थान-३११०२२
दूरभाष : ९४१३७८१६१०

बाल-कहानी

ज्ञान-विज्ञान व मनोरंजन का साथी रेडियो

● पवन चौहान

आज रविवार था। पड़ोस के घर से बुजुर्ग मि. गुप्ता का रेडियो बज रहा था। राजन अपने कमरे में बैठा स्कूल से दिए कार्य को निपटाने में व्यस्त था। तभी रेडियो से बाल-कहानी का प्रसारण शुरू हो गया। राजन हर रविवार इन बाल कहानियों का बेसब्री से इंतजार करता था। राजन कुछ समय के लिए अपने स्कूल के काम को एक तरफ रखकर कहानी सुनने में मस्त हो गया। उसे रेडियो से कहानी सुनानेवाले की आवाज बहुत ही आकर्षित करती थी। इसी समय राजन के पापा भी कमरे में दाखिल हो गए और राजन के साथ ही वे भी कहानी सुनने लगे। राजन के पापा विज्ञान अध्यापक हैं।

जब कहानी समाप्त हुई तो राजन ने अपने पापा से कहा, 'पापा, यह रेडियो भी कमाल का अविष्कार है। हर तरह से सबका मनोरंजन करता है।'

'बिल्कुल सही बात है बेटा। क्या तुम इसके आविष्कारक का नाम जानते हो?'

'जी पापाजी। जी. मार्कोनी।' राजन ने एकदम जवाब दिया।

'शाबाश राजन। मैं तुम्हें जी. मार्कोनी अर्थात् गुल्येल्मो मार्कोनी के बारे में बताता हूँ। वैसे आजकल रेडियो का उस तरह से प्रयोग नहीं होता, जैसा आपके दादा या हमारे समय में होता था। उस समय रेडियो ज्ञान-विज्ञान, संगीत, गीत, कृषि, समाचार से लेकर हर तरह के मनोरंजन का सबका साथी हुआ करता था।' पापा की बातों को राजन बड़े ध्यान से सुन रहा था।

'बिना तार के हर प्रकार का संदेश भेजने के लिए रेडियो एक बहुत बड़ा अविष्कार था। इस आविष्कार ने दुनिया को बहुत नजदीकी से एक-दूसरे के साथ जोड़ दिया था। रेडियो के आविष्कारक जी. मार्कोनी का जन्म इटली के बोलोग्ना में २५ अप्रैल, १८७४ को हुआ था। अमीर घराने में जनमे मार्कोनी को बचपन से ही भौतिक विज्ञान और विद्युत् से जुड़ी नई-नई खोजों में बहुत दिलचस्पी थी। मार्कोनी को घर में ही शुरुआती शिक्षा की ट्यूशन दी जाती थी, लेकिन मार्कोनी को इसमें जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। वह जब इस पढ़ाई से ऊब जाता तो कहानी की किताबों को पढ़ता या फिर हॉकी खेलता।'

'कैसी कहानी की किताबें, पापाजी?' राजन ने सवाल किया।

'अमूमन ग्रीक की पौराणिक कहानियाँ।'

'जी।' राजन संतुष्ट होते हुए बोला।

'मार्कोनी जब १६ वर्ष के थे, तब उन्होंने भौतिक विज्ञानी हाइनरिख हर्ट्स की विद्युत् चुंबकीय तरंगों की खोज के बारे में पढ़ा। इस आलेख

सुपरिचित बाल-साहित्यकार। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं शिमला दूरदर्शन और आकाशवाणी से रचना पाठ।हिम साहित्य परिषद् (मंडी) द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिता में कहानी 'शारदा' को द्वितीय पुरस्कार। साहित्य मंडल (नाथद्वारा) का सम्मान। संप्रति स्कूल शिक्षक (टी.जी.टी., नॉन-मैडिकल)।

को पढ़कर वे बहुत प्रसन्न हुए। वे जान गए थे कि विद्युत् ऊर्जा के संचार के लिए तार की आवश्यकता नहीं होती। यही बात उनके आविष्कार की आधार बनी। वे इसे व्यावहारिक रूप देने में जुट गए। उन्होंने अपने कमरे को एक प्रयोगशाला का रूप दे दिया। उनके कमरे में पड़े खंभे, तार, टीन के डिब्बों को देखकर सब उन पर हँसते थे और उनका मजाक बनाते थे। लेकिन उन्होंने इस बात की जरा भी परवाह नहीं की और जल्द ही बेतार से तार के आविष्कार को पूर्ण कर लिया। इसे देखकर दुनिया दंग रह गई थी।'

'पापा, क्या मार्कोनी के माता-पापा भी उनकी इस काम में सहायता करते थे?' राजन का अगला प्रश्न था।

'मार्कोनी के पिता का रवैया तो उनके इस कार्य के लिए नकारात्मक था, लेकिन उनकी माँ ने मार्कोनी का पूरा साथ दिया। शोध के दौरान जब वे अपने कार्य में व्यस्त होते, जो उनकी माँ उनका खाना उनके कमरे में ही ले आती थीं। फिर एक दिन वह भी आया, जब मार्कोनी ने १५ फुट की दूरी तक हवा में घंटी बजाकर अपने प्रयोग की पहली सीढ़ी चढ़ी। सबसे पहले यह बात उन्होंने अपनी माँ को ही बताई। इसके बाद तो मार्कोनी ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। १८९६ में मार्कोनी ने २ मील तक हवा में संदेश भेजने में सफलता हासिल की और फिर यह दूरी बढ़ती ही चली गई। इस तकनीक ने समुद्री जहाजों को सही दिशा बताने और अन्य उपयोगी जानकारी देने में काफी सहयोग किया। दूसरे विश्व युद्ध में इटली को इस तकनीक से बहुत लाभ मिला।'

'यह तो उस समय बहुत ही आश्चर्यजनक बात हुई होगी न, पापा?'

'बिल्कुल बेटा! यह विज्ञान की दुनिया में एक नए अध्याय की शुरुआत थी। जब वैज्ञानिक फ्लेमिंग ने वाल्व बनाया तो मार्कोनी को अपनी इस खोज में नए पंख मिल गए। वाल्व के आविष्कार से रेडियो तरंगों को बहुत विस्तार मिला। इसके बाद तो रेडियो ने पूरी दुनिया को ही अपनी मुट्ठी में कर दिया था। अब रेडियो विश्व में कहीं भी अपनी बात पहुँचा सकता था। इस दौरान जेम्स फोर्ड में एक रेडियो स्टेशन का

निर्माण किया गया, जो उस समय का सबसे बड़ा रेडियो स्टेशन था।'

'पापा, फिर हम रेडियो के आविष्कार को कब माने?'

'बेटा, १८९५ में मार्कोनी ने अपने बगीचे में ही पहला रेडियो संदेश भेज दिया था। इसी वर्ष को रेडियो का आविष्कार वर्ष माना गया है। इस महान् आविष्कारक मार्कोनी को १९०९ में भौतिक शास्त्र का नोबल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।'

'पापा एक और बात पूछूँ?'

'जरूर बेटा, पूछो।'

'पापा, रेडियो हम तक अपनी बात कैसे पहुँचाता है?'

'ओह हाँ, यह बहुत अच्छा प्रश्न किया तुमने। दरअसल, रेडियो एक ऐसी तकनीक है, जिसमें पहले आवाज को रेडियो वेब में बदलकर

ट्रांसमिट किया जाता है और रिसीवर इस वेब को आवाज में बदलकर हमारे सामने प्रस्तुत करता है।'

'जी पापा, आपने बहुत अच्छी जानकारी दी।' राजन खुश होते हुए बोला।

'चलो बेटा, अब समय काफी हो गया है। दोपहर का खाना खा लिया जाए।'

'जी पापा।'

राजन और उसके पिता अपनी जगह से उठ गए थे। पड़ोस के रेडियो से आती फिल्मी गाने की मधुर आवाज कानो में मिसरी घोलती जा रही थी।

गाँव व डाक-महादेव, तहसील-सुंदरनगर
जिला-मंडी-१७५०१८ (हि.प्र.)
दूरभाष : ०९८०५४०२२४२

लघुकथा

ट्रांसफर

• स्वाति ग्रोवर

''री मा, बहुत-बहुत बधाई हो! आज तुम्हारा सपना पूरा हो गया। तुम्हारा चुनाव आई.ए.एस. के लिए हो गया। तुम अब सारी चिंता छोड़ दो। जहाँ तुम्हारी पोस्टिंग हो वहाँ चली जाना और मैं भी ट्रांसफर लेकर वहाँ पहुँच जाऊँगा।'' कहकर रोहन ने फोन रख दिया।

फोन रखते ही रीमा सोचने लगी, 'मेरा एक महीने पहले ही पथरी का ऑपरेशन हुआ है। मैं पिछले एक महीने से अपनी माँ के घर पर अपने बेटे सोनू के साथ रह रही हूँ। मेरी बीमार माँ अपने घुटने के दर्द को भूलकर हम दोनों का खयाल रख रही थी। रोहन ने एक बार भी नहीं पूछा कि वो कैसी हैं? या सोनू कैसा है? ऐसा नहीं है कि मुझे अपने सपने के पूरा होने की खुशी नहीं है, पर क्या बिना अपनेपन, मान-सम्मान, प्यार-परवाह के जिंदगी की ऐसी ऊँचाइयों को पाना व्यर्थ नहीं है।'

माँ भी पूरे मोहल्ले में लड्डू बाँट आई। ''ले रीमा, लड्डू खा। अब तो तू अफसर बन गई है, मेरी बेटी जीती रह।'' कहकर माँ ने रीमा को गले लगा लिया और फिर वह रसोई में व्यस्त हो गई। रीमा यादों की पोटली खोलकर गुजरे हुए हर एक लम्हे को गौर करने लगी। सात साल पहले रीमा का विवाह रोहन से हुआ था। दोनों की जिंदगी एक-दूसरे को जीवनसाथी के रूप में पाकर खुश हो गई थी। सबकुछ अच्छा ही चल रहा था। शादी के बाद फिर से नौकरी शुरू की। एच.डी.एफ.सी. बैंक में अच्छी पोस्ट पर कार्यरत थी। पर साथ-ही-साथ सरकारी नौकरी को लेने की तैयारी भी चल रही थी। रोहन एम.एन.सी. में अच्छा कमा रहा था।

जब भी रीमा कहती कि यह नौकरी छोड़कर सरकारी नौकरी की तैयारी कर लूँ तो वह कहता, 'कहाँ हैं सरकारी नौकरी, बिना नौकरी छोड़े तैयारी करती रहो।' फिर जब सोनू पैदा हुआ तो उसने नौकरी छोड़ दी और बस बच्चे और अपनी परीक्षा की तैयारी में लगी रही। कभी रोहन गुस्से में कहता, 'कितना खर्चा हो रहा है। कम-से-कम अपना खर्चा खुद उठा रही थीं।' रोहन ने कभी भी रीना को कोई फैसला नहीं लेने दिया था। हमेशा उसके हर कार्य में उसकी रोक-टोक बनी रहती। बाहर घूमने-फिरने पर भी बंदिशें थीं। जब सास गाँव से आती तो वह केवल उन्हीं की सुनता, ऐसी कितनी ही बातों पर दोनों का झगड़ा हो चुका था।

क्यों एक स्त्री घर का मर्द बनकर भी हमेशा कमजोर ही रहती है। या अपने अहम की पूर्ति करता पुरुष महिला को हमेशा कमजोर बनाए रखता है। पर अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु उसे आजादी तो दी, मगर बंदिशों का पट्टा भी बाँध दिया। एक पालतू कुत्ते की तरह, जिसे घर से निकाला तो जाएगा, पर गले में पट्टा भी बाँध दिया जाएगा, ताकि घर का मालिक उसे समय-समय पर गुलामी का एहसास कराता रहे।

''रीमा, चल उठ, थोड़ा घूम आ दोस्तों के साथ, पार्टी कर, सोनू को भी ले जा।''

''हाँ माँ, जा रही हूँ। अपनी सबसे बड़ी खुशी मनाने।''

एक माह बाद रोहन का फोन आया कि 'मैं भी सिरसा आ रहा हूँ। नौकरी से त्याग-पत्र आज दे दूँगा।'

''कोई जरूरत नहीं है रोहन, तुम वहीं रहो। अभी मेरी ट्रेनिंग है, फिर नौकरी के लिए दुबारा ट्रांसफर हो सकता है। सोनू और माँ को साथ ले आई हूँ। परेशान मत होना।''

''पर रीमा, मैंने सोचा था कि अब कोई बिजनेस शुरू करूँगा। तुम घर सँभाल लेना।''

नहीं रोहन, तुम पुरुष हो, घर की जिम्मेदारी तुम्हारी है। मैं तो केवल तुम्हारा हाथ बँटा रही हूँ।'' कहकर रीमा ने फोन रख दिया। और रोहन हैरान सा फोन ही देखता रह गया; सोचने लगा कि क्या वह रीमा से ही बात कर रहा था!

एक्स १८०५, राजगढ़ कॉलोनी
गली नं.१६, दिल्ली-११००३१
दूरभाष : ९८९९४९६९८६

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

होली की इंद्रधनुषी आभा बिखेरता, प्रयागराज के कुंभ की महानता को बखानता और पुलवामा की हृदयद्रावक छवि को दरशाता 'साहित्य अमृत' का मार्च अंक प्रभावी है। कानन झींगन की कहानी 'वे लौटकर आएँगे' १९७१ के सैनिक जीवन का चलचित्र सी खींचते हुए नारी जीवन की आस्था और विश्वास को बताती हुई कहानी बहुत अच्छी लगी है। इटली की कहानी सचमुच अफवाह का जीता-जागता उद्धरण है। पुरोहितजी ने चारों धामों की यात्रा करवा दी। ऊषा निगम की लेखनी ने भगवती चरण वोहरा की क्रांतिकारी छवि, नौजवान भारत सभा का परिचय देकर उनके क्रांतिकारी कार्यों का सजीव चित्रण किया है। पत्रिका द्वारा हमें विविध सम्मान एवं साहित्यिक क्रियाकलापों का ज्ञान होता है। इस बार की कविताएँ बहुत अच्छी लगीं।

—संतोष माटा, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' माह मार्च अंक आकर्षक तथा सारगर्भित है। संपादकीय पुलवामा के शहीदों को नमन श्रद्धा-सुमन अर्पण के साथ महाकुंभ प्रयागराज और राष्ट्र की ज्वलंत समस्याओं पर प्रकाश डालता है। इसी माह सुहावना होली उत्सव है। जिस पर स्व. कमलापति मिश्र का 'होलिका का प्रथम स्वरूप' तथा कुलभूषण सोनी की 'मन को लुभाती ब्रज होलिका' एवं कविताएँ भी अच्छी हैं। अभिराज राजेंद्र मिश्र का आलेख 'मैंने लुप्त सरस्वती को खोज लिया' तथा ममता राकेश चतुर्वेदी का 'कन्या जन्मोत्सव परंपरा' सारगर्भित एवं प्रशंसनीय हैं। कहानियों में 'वे लौटकर आएँगे' वास्तविक घटनाओं का अहसास कराती है, मन को झकझोरती है। कोमल बाधवानी 'प्रेरणा' का व्यंग्यालेख 'चुनाव दूध वाले का' अच्छा है तथा साहित्य बाल संसार पठनीय है। इन सबसे यह पत्रिका पारिवारिक हो जाती है। पत्रिका ऊँचाइयाँ छू रही है। यह पत्रिका हिंदी भाषी पत्रिकाओं की श्रेणी की प्रथम पंक्ति में सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त विदेशों में भी हिंदी भाषी समुदाय में लोकप्रिय है। पत्रिका समय पर निरंतर पाठकों तक पहुँच रही है।

—एम.डी. मिश्रा 'आनंद', पृथ्वीपुर (म.प्र.)

हमेशा की तरह इस बार भी 'साहित्य अमृत' का मार्च अंक पढ़ने को मिला। इस में श्री राजशेखर व्यास द्वारा लिखी गई 'शक' नामक कहानी यही दरशाती है कि किन्हीं लोगों के द्वारा झूठा शक पैदा करने की कोशिश को असलियत का पता चलने पर किस प्रकार मन में पछतावा एवं ग्लानि होती है और उस शक को भूलना पड़ता है। कोमल वाधवानी 'प्रेरणा' द्वारा लिखित व्यंग्य 'चुनाव दूधवाले का' एक ऐसा व्यंग्य है, जो सच्चाई पर आधारित है। इसमें कोई शक नहीं कि आज हर दूधवाला पानी की मिलावट वाला दूध ही बेचता है, फिर भी उन्हीं दूधवालों से दूध लेने को मजबूर होते हैं, क्योंकि सभी दूध देनेवाले एक जैसे होते हैं। अशोक अंजुम द्वारा लिखित दोहे 'पुलवामा की शहादत' को पढकर मन द्रवित हो गया। इन दोहों में ऐसी बर्बर घटनाओं का सटीक वर्णन किया गया है, जो पढ़ने तथा मनन करने लायक है। जयकिशोर बेरेरिया की कहानी 'बेइज्जती' उन बिंदुओं पर कटाक्ष करती है, जो बिना वजह किसी गरीब अबला पर चोरी का झूठा आरोप लगा देता है। इस झूठे आरोप को अपनी बेइज्जती समझते हुए वह लड़की अपने घर जाकर फाँसी पर झूल जाती है, उधर चोरी करनेवाला उसका ही बेटा चोरी पकड़े जाने के डर से और उससे होनेवाली बदनामी और बेइज्जती से घबराकर भी घर में गले में फाँसी का फंदा लगाकर आत्महत्या कर लेता है। सच्चाई जाने बिना किसी पर झूठे आरोप लगाना कितना गलत होता है और इसका कितना भयंकर परिणाम होता है, यह इस कहानी का सार है। हमेशा की तरह इस अंक में भी गोपाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित व्यंग्य 'अतीत के भूत' पढ़ने का मौका मिला, जो उनके लेखन की विशेषता है। पिछले अंकों की तरह यह अंक भी पढ़ने एवं सँजोने योग्य है। इसी कारण 'साहित्य अमृत' अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं से अलग दिखाई देती है।

—जगमोहन जैन, दिल्ली

'साहित्य अमृत' मेरी प्रिय पत्रिका रही है। इस बार भी होली के प्रेम भरे रंगों से सराबोर, होली के विविध रूपों का चित्रण करती आकर्षक बन पड़ी है। 'वे लौटकर आएँगे' कहानी शायद सच्ची घटना पर आधारित है, बड़ी ही भावपूर्ण व मार्मिक है। काश! ऐसा सभी शहीद परिवारों के घर में संभव हो पाता। नृशंस, बाँह गहे की लाज मन को छूती है, शोषितों को शोषण से कब मुक्ति मिलेगी, पता नहीं।

होली पर विवेक, विजय, विभूति के रंगों से भरी पूरी होली हो देश प्रेम व आपसी भाईचारा का उल्लास हो।

—माला श्रीवास्तव, ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.)

ब्रज की होली से सराबोर 'साहित्य अमृत' का मार्च अंक समय पर मिल गया। संपादकजी ने पुलवामा के शहीदों और दुनिया के अनोखे सांस्कृतिक पर्व कुंभ पर बड़े सुंदर विचार रखे हैं। स्व. कमलापति मिश्रजी के द्वारा होली के प्राचीन स्वरूप का पता चला। होली की व्यवस्था में लगे पुलिसवाले क्या महसूस करते हैं और बाद में उनकी कैसी मजेदार होली होती है, यह तुलसी देवी तिवारी ने अपनी कहानी में बड़े सुंदर ढंग से बयाँ किया है। कानन झींगन की कहानी सत्य घटना पर केंद्रित एक रणबाँकुरे और आज की सत्यवती की कहानी है। पतिव्रता नारी ऐसी ही होती हैं। इनके अलावा दूसरी कहानियाँ भी कम रोचक नहीं हैं, वे भी पठनीयता और पठनरस से भरपूर हैं, सभी कहानीकारों को साधुवाद। कुलभूषण सोनीजी की ब्रज की होलियों ने तो मन मोह लिया। वैज्ञानिक दुर्गादत्त ओझाजी ने प्लास्टिक के जानलेवा दुष्प्रभावों से तर्क के साथ सचेत किया है। ऊषा निगम हमेशा स्वाधीनता सेनानियों पर लिखती हैं, भूले-बिसरे सब क्रांतिकारियों से परिचित कराती हैं। राजेश्वर उनियाल ने एक वीरांगना तीलू रौतेली की वीरगाथा से परिचित कराया, उन्हें धन्यवाद। ममता राकेश चतुर्वेदी सच ही कहती हैं कि कन्या के जन्म का भी उत्सव मनाया जाना चाहिए। आज कन्याएँ किसी से कम नहीं। कुछ कविताएँ अच्छी और कुछ बहुत अच्छी लगीं। कोमल वाधवानी 'प्रेरणा' का व्यंग्य हर व्यक्ति और हर रोज की कहानी है। शंकरलाल पुरोहितजी ने घर बैठे चार धाम की यात्रा करवा दी। होली में क्या सावधानी बरतें, यह 'अनजान' जी ने बखूबी बता दिया है। कुल मिलाकर एक शानदार अंक है। आप सबको बधाई।

—आनंद शर्मा, प्रेमनगर (दिल्ली)

वर्ग पहेली (१६३)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० अप्रैल, २०१९ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते जून २०१९ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

बाएँ से दाएँ—

१. विकलांग (४)
५. एक धातु, जो नीलापन लिये सफेद रंग की होती है (२)
६. किसी वस्तु का निचला हिस्सा (२)
७. हल्का आघात करना; अंकित करना (३)
८. डरावना (४)
१०. दुर्ग आदि का प्रवेश द्वार (२)
१२. गिरवी (३)
१४. निर्वाह; गुजारा (३)
१६. रति-सुख बढ़ाने की कला (४)
१८. अयोग्य (४)
२०. नारद संबंधी (३)
२२. कन्या (३)
२३. राजा (२)
२५. अधम, नीच (४)
२७. मेल; संधि (३)
२८. बौद्ध भिक्षुओं के रहने का भवन (२)
२९. कृष्ण की प्रिय गोपी (२)
३०. तरक्की (४)

ऊपर से नीचे—

१. बुरे काम का बुरा नतीजा (२,२,१,२)
२. कंठ (२)
३. छोटी नदी (३)
४. संन्यासी बनना (२,३)
५. स्त्रियां से संबंधित (३)
८. धीरे से बोलना या कहना (४)
९. नाखून (२)
११. कलंक लगने का स्थान (३,१,३)
१३. मैं का बहुवचन (२)
१५. किसी के मुकदमे की देखरेख (४)
१७. पाने की परम लालसा होना (२,३)
१९. पराया; गैर (२)
२१. दर्शन (२)
२४. पृथ्वी (३)
२६. ओर (३)
२८. विचार (२)

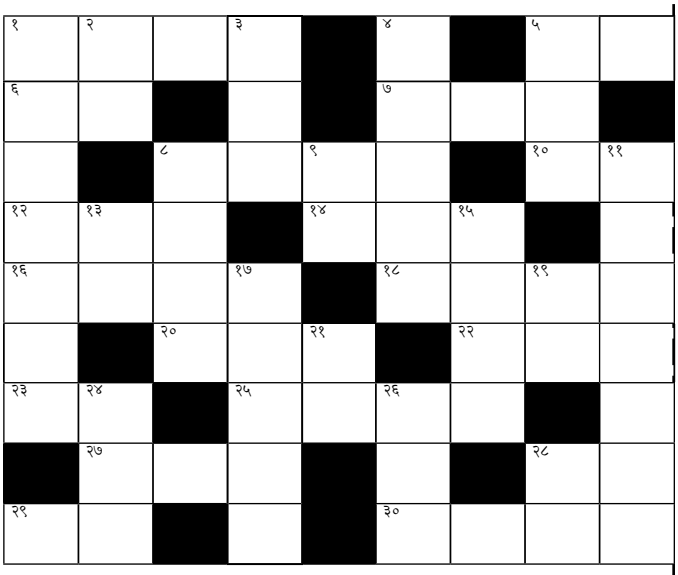

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

वर्ग पहेली (१६२) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१६१) का शुद्ध हल

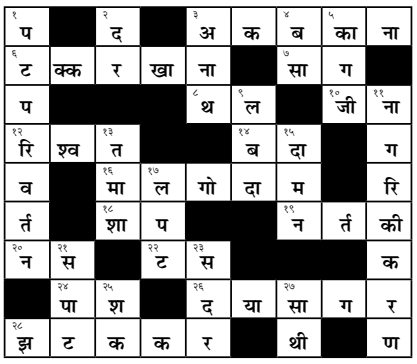

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्रीमती लक्ष्मी देवी**
गाँव व डाक : बसई
जिला-महेंद्रगढ़-१२३०२९
(हरियाणा)
दूरभाष: ९४१६३७०२२४

२. **डॉ. रमा गर्ग**
९, गोखले मार्ग, एसबीआई कॉलोनी के पास, पुलिस लाइंस,
अजमेर-३०५००१ (राजस्थान)
दूरभाष : ९८२९०७३४८४

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १६१ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री ब्रह्मानंद खिच्ची (महेंद्रगढ़), फकीरचंद ढुल (कैथल), रुक्मणी संगल (पटियाला), शोभा दाणी (नोएडा), वाइ.के. श्रीवास्तव (जबलपुर), विनीता सहल (मुंबई), नीरजा शर्मा (अहमदाबाद), विपिन सिन्हा (रायपुर), सरला लोढ़ा (उदयपुर), मोहन उपाध्याय (अजमेर), सुभाष शर्मा, दिनकर सहल, रत्ना वार्ष्णेय (दिल्ली)।

साहित्यिक गतिविधियाँ

श्री लीलाधर जगूड़ी को व्यास सम्मान

के.के. बिड़ला फाउंडेशन का प्रख्यात 'व्यास सम्मान-२०१८' सुप्रसिद्ध लेखक श्री लीलाधर जगूड़ी को उनके काव्य-संग्रह 'जितने लोग उतने प्रेम' के लिए डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की अध्यक्षता में घोषित किया गया। इस सम्मान की राशि चार लाख रुपए है। □

सम्मान समारोह संपन्न

१ मार्च को नई दिल्ली के अशोक विहार में पंडित तिलकराज शर्मा मेमोरियल ट्रस्ट के तत्त्वावधान में पद्मभूषण श्री राम वी. सुतार एवं पद्मश्री पंडित भजन सोपोरी के सान्निध्य तथा डॉ. कमलकिशोर गोयनका की अध्यक्षता में सम्मान समारोह संपन्न हुआ। ट्रस्ट की ओर से मूर्तिकार पद्मविभूषण श्री राम वी. सुतारजी को 'कला रत्न सृजन शिखर सम्मान,' संतूरवादक पद्मश्री पं. भजन सोपोरी को 'संगीतरत्न शिखर सम्मान', श्री कृष्णचंद्र गुप्ता को 'शिक्षा रत्न शिखर सम्मान', सर्वश्री सुरेंद्र दुबे एवं सुरेश अवस्थी को 'हास्यकवि रत्न शिखर सम्मान' तथा कथक नृत्यांगना सुश्री अनुराधा दुबे को 'नृत्य रत्न शिखर सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर डॉ. हरीश नवल ने अंतरराष्ट्रीय विचार प्रतियोगिता में विजयी प्रतिभागियों श्रीमती प्रतिभा गुप्ता एवं श्री विनय पँवार को सम्मानित किया। साथ ही 'शिक्षा सेवा सृजन पदक' श्री दयानंद वत्स को, 'पत्रकारिता सृजन सेवा पदक' एवं 'कला सृजन सेवा पदक' सर्वश्री मनोहर आकरे, मांगेराम शर्मा तथा पंकज मोहन अग्रवाल को दिए गए। संचालन डॉ. सुरेंद्र दुबे ने तथा आभार श्री इंद्रजीत शर्मा ने व्यक्त किया। □

सारस्वत कुंभदर्शन महोत्सव संपन्न

२१ फरवरी को सागर के साहित्यिक-सामाजिक प्रतिष्ठान 'सर्जनपीठ' के तत्त्वावधान में प्रो. पारसनाथ पांडेय व डॉ. घनश्याम भारती की पुस्तक 'मानक साहित्यिक निबंध' और डॉ. अलका प्रचंडिया की पुस्तक 'समीक्षा के वातायन' का लोकार्पण श्री स्वामी आनंद के मुख्य आतिथ्य एवं डॉ. ज्योत्स्ना दीक्षित के विशिष्ट आतिथ्य में डॉ. पृथ्वीनाथ पांडेय द्वारा किया गया। डॉ. भारती को उनकी लोकार्पित पुस्तक पर 'साहित्य-शिरोमणि' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री शायर तलब जौनपुरी, आकांक्षा मिश्र, धारवेंद्र प्रताप त्रिपाठी आदि ने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. प्रदीप चित्रांशी ने किया। □

प्रयाग कुंभ में नागरी संगोष्ठी संपन्न

१६ फरवरी को प्रयागराज में आर्य लेखक परिषद् द्वारा कुंभ क्षेत्र में आचार्य रूपचंद्र 'दीपक' की अध्यक्षता में नागरी लिपि संगोष्ठी का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि डॉ. हरिसिंह पाल तथा सर्वश्री संत समीर, प्रीति विमर्शिनी ने अपने विचार व्यक्त किए। वक्ताओं को प्रशस्ति-पत्र और प्रतीक-चिह्न देकर सम्मानित किया गया। धन्यवाद श्री अखिलेश आर्यदु ने ज्ञापित किया।

गोष्ठी संपन्न

२८ फरवरी को भोपाल की साहित्य अकादमी में संस्कृति परिषद् भोपाल की इकाई पाठक मंच सागर की ७४वीं गोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें डॉ. श्यामसुंदर दुबे की पुस्तक 'काल: क्रीडम्' पर समीक्षा करते हुए सर्वश्री छाया चौक, चंचला दवे, सीरोठिया, अक्षय अनुग्रह, वृंदावन सरल, आर.के. तिवारी, प्रभाकर, शरद सिंह, आशीष ज्योतिषी, सुनीला सराफ, उमाकांत मिश्र ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री हरिसिंह ठाकुर ने तथा आभार श्रीमती आज्ञा तिवारी 'मधु' ने व्यक्त किया। □

डॉ. घमंडीलाल अग्रवाल सम्मानित

२ मार्च को जबलपुर की साहित्यिक संस्था 'कादंबरी' के तत्त्वावधान में आयोजित एक भव्य समारोह में डॉ. घमंडीलाल अग्रवाल को उनके समग्र लेखन हेतु 'स्व. रामेंद्र तिवारी सम्मान' प्रदान किया गया। मुख्य अतिथि विनय पाठक ने डॉ. अग्रवाल को नकद राशि, प्रशस्ति-पत्र व माला भेंट की। ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के महासचिव डॉ. शिवशंकर अवस्थी विशिष्ट अतिथि के रूप में पधारे। आभार आचार्य भगवत दुबे ने व्यक्त किया। □

हास्य-व्यंग्य पर गोष्ठी आयोजित

४ मई को मध्य प्रदेश की साहित्यिक संस्था लेखक संघ जिला इकाई टीकमगढ़ की २४५वीं गोष्ठी श्री रामगोपाल रैकवारजी की अध्यक्षता में आयोजित की गई। मुख्य अतिथि श्री विजय कुमार मेहरा, सर्वश्री बी.एल. जैन, राजीव नामदेव 'राना लिधौरी', सीताराम राय 'सरल', गुलाब सिंह यादव 'भाऊ', कोमल चंद बजाज, पदमेश्वरीदास तिवारी, अनवर खान साहिल, रामेश्वर राय 'परदेशी', डी.पी. शुक्ला, प्रमोद गुप्ता, डी.पी. यादव ने काव्यपाठ किया। संचालन श्री रविंद्र यादव ने तथा आभार श्री राजीव नामदेव 'राना लिधौरी' ने व्यक्त किया। □

व्यंग्यश्री सम्मान

१३ फरवरी को दिल्ली के हिंदी भवन में प्रो. निर्मला जैन की अध्यक्षता में पद्मश्री प्रो. अशोक चक्रधरजी को श्री गोपाल प्रसाद व्यास के जन्मदिन पर आयोजित विशेष कार्यक्रम में 'व्यंग्यश्री सम्मान-२०१९' व्यंग्यकार श्री ज्ञान चतुर्वेदीजी के मुख्य अतिथ्य एवं डॉ. प्रेम जनमेजय व डॉ. आलोक पुराणिक के विशिष्ट आतिथ्य में सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. रत्ना कौशिक ने किया। □

कवि-सम्मेलन संपन्न

२२ फरवरी को हैदराबाद में श्री दुलीचंद 'शशि' के सान्निध्य में गीत चाँदनी का पूर्णिमा कवि सम्मेलन आयोजित हुआ। श्री नेहपाल सिंह वर्मा की अध्यक्षता में सर्वश्री सीता राम माने, शिवकुमार तिवारी कोहिरी, रत्नकला मिश्रा, गोविंद अक्षय, दिनेश अग्रवाल, संतोष कुमार मिर 'माधुर्य', गजानन पांडेय, सुरेश गुगलिया, दीपक चिंडालिया वाल्मीकि, विजय बाला स्याल, तारा मालोद, रवि वैद्य, चंद्र प्रकाश दायमा, पुष्पा वर्मा, अरुणा ठाकुर, सत्यनारायण काकड़ा, नेहपाल सिंह वर्मा और दुलीचंद 'शशि' ने काव्य पाठ किया। संचालन श्री गोविंद अक्षय ने किया। कार्यक्रम के अंत में दो मिनट का मौन धारण कर पुलवामा के अमर शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। □

राष्ट्रीय विज्ञान संचार पुरस्कार प्रदत्त

विगत दिनों दिल्ली में विज्ञान दिवस के अवसर पर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में आयोजित राष्ट्रीय विज्ञान संचार पुरस्कार वितरण समारोह में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव प्रो. आशुतोष शर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. जाकिर अली 'रजनीश' को बच्चों के बीच विज्ञान

को लोकप्रिय बनाने के लिए 'राष्ट्रीय विज्ञान संचार पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। ☐

संगोष्ठी आयोजित

१० फरवरी को वाराणसी के उदयप्रताप कॉलेज के हिंदी विभाग में धूमिल की पुण्य तिथि पर 'आजादी के ७१ साल और धूमिल की कविता' विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन डॉ. राहुल की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें श्री रत्नशंकर पांडेय ने वक्तव्य दिया। सर्वश्री संजय श्रीवास्तव, वंदना चौबे, सदानंद सिंह, एम.जी. सिंह, राम सुधार सिंह ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. गोरखनाथ ने तथा आभार डॉ. मो. आरिफ ने व्यक्त किया। ☐

पाटोत्सव ब्रजभाषा कार्यक्रम संपन्न

२४-२५ फरवरी को श्रीनाथद्वारा के साहित्य मंडल में श्री रामलक्ष्मण गुप्त की अध्यक्षता में दो दिवसीय ब्रजभाषा पाटोत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें मुख्य अतिथि डॉ. मनोज मोहन शास्त्री एवं विशिष्ट अतिथि सर्वश्री पं. मदनमोहन शर्मा 'अविचल', कैप्टन व्यास चतुर्वेदी, राजमल परिहार व जगदीशचंद्र शर्मा थे। ब्रजभाषा उपनिषद् के अंतर्गत सर्वश्री श्रीकृष्ण शदर, रघुवीर सिंह 'अरविंद', सुरेंद्र सार्थक, आचार्य विष्णुशरण भारद्वाज ने आलेख वाचन किया। सर्वश्री सुरेंद्र अग्निहोत्री, प्रिंस अभिषेक अज्ञानी, प्रेमशंकर अवस्थी, अंबालाल कुमावत, अमृतलाल शर्मा, नरहरि चौधरी, रघुनंदन सनाढ्य, वासुदेव लोधा, श्याम शर्मा, जगमोहन अरोड़ा एवं रमेश बागोरा को 'श्रीनाथद्वारा रत्न' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। सभी सम्मानित महानुभावों को शॉल, उत्तरीय, कंठहार, मेवाड़ी पगड़ी, श्रीफल, श्रीनाथजी का प्रसाद, श्रीनाथजी की छवि व उपाधि-पत्र प्रदान किए गए।

द्वितीय दिन पंडित मदनमोहन शर्मा अध्यक्ष थे। विशिष्ट अतिथि सर्वश्री मेहराज मीणा, निर्मल औदित्य, गोपीनाथ पारीक 'गोपेशे', देवकृष्ण जोशी थे। रेखा सोनी, तरुणा सनाढ्य, निधि जैन, काजल खत्री, अक्षय टेलर, खुशबू पालीवाल, वैजयंती व्यास, आशुतोष शास्त्री, शिवांशु सोनी, सुमन कँवर चौहान, मुस्कान नाई, पुष्पा लोहार, सुनहरीलाल वर्मा 'तुरंत', संजय भारद्वाज, गोपेंद्रनाथ शर्मा, श्यामलाल शर्मा, रामबाबू जवद्रोही, पूरणजाल शर्मा, अशोक अज्ञ, गोपालकृष्ण गुर्जर, रतनकुमार दुग्गड़ 'चटुल', सुरेश भाटी, सरोजिनी 'तन्हा' को शॉल, उत्तरीय, कंठहार, मेवाड़ी पगड़ी, श्रीफल, श्रीनाथजी का प्रसाद, श्रीनाथजी की छवि व उपाधि-पत्र से सम्मानित किया गया। संचालन एवं आभार श्री श्यामप्रकाश देवपुरा ने किया। सभी सम्मानित साहित्यकारों का गद्यात्मक एवं पद्यात्मक परिचय श्री विट्ठल पारीक ने करवाया। ☐

एकल काव्य पाठ कार्यक्रम संपन्न

३ मार्च को कोलकाता के बड़ा बाजार कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा कलामंदिर प्रेक्षागृह में आयोजित समारोह में राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी ने एकल काव्य पाठ में अपनी रचनाओं का पाठ किया। उन्होंने अपनी बहुरंगी रचनाओं से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। अध्यक्षता श्री गिरिधर मालवीय ने की तथा मुख्य अतिथि श्री सज्जन कुमार भजनका रहे। ☐

संगोष्ठी आयोजित

२३ फरवरी को वाराणसी में अंतरराष्ट्रीय भाषा अभियान के अंतर्गत म.गां. काशी विद्यापीठ एवं विद्याश्री न्यास के तत्त्वावधान में 'न्याय भाषा मंथन' पर आयोजित संगोष्ठी में सर्वश्री चतुर्भुज तिवारी, कामेश्वर नाथ मिश्र, दिलीप सिंह, डी. भरत कुमार, अतुल कोठारी एवं राघवेंद्र सिंह ने विचार व्यक्त किए। श्री नलिन त्रिपाठी ने धन्यवाद ज्ञापन और संचालन श्री दुर्गा प्रसाद ने किया।

द्वितीय व तृतीय संयुक्त सत्र में 'विद्याश्री न्यास' सचिव श्री दयानिधि मिश्र तथा सर्वश्री राजेंद्र प्रसाद पांडेय, शंकर झा, कामिनी वर्मा, सरजीत सिंह डांग, अशोक मेहता ने अपने विचार व्यक्त किए। श्री संजय पाठक ने धन्यवाद ज्ञापित किया। संचालन श्रीमती अंजलि वर्मा ने किया। ☐

कवि-गोष्ठी संपन्न

३ मार्च को वाराणसी में आकाशगंगा म्यूजिक एंड फिल्म्स के सौजन्य से साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था 'गरिमा' द्वारा श्री गौरी शंकर तिवारी की अध्यक्षता में आयोजित पुलवामा के शहीदों को समर्पित काव्य गोष्ठी में ३० ओजस्वी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से माँ भारती के वीर सपूतों को श्रद्धांजलि अर्पित की। धन्यवाद श्री संतोष कुमार सिंह ने ज्ञापित किया। ☐

संगोष्ठी आयोजित

२५ फरवरी को दिल्ली के हिंदी भवन में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें वरिष्ठ आलोचक प्रो. विश्वनाथ त्रिपाठी सहित राजधानी और आसपास से आए अनेक रचनाकार, आलोचक और साहित्यरसिकों ने भाग लिया। संगोष्ठी के सूत्रधार कथाकार श्री महेश दर्पण थे। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

४ मई को मुंबई में श्रीमती सुदर्शना द्विवेदी की अध्यक्षता में आयोजित हेमंत फाउंडेशन के पुरस्कार समारोह का आरंभ दीप प्रज्वलन तथा ऋतुप्रिया खरे की सरस्वती वंदना एवं मूर्धन्य कवि सोहनलाल द्विवेदी की रचना 'वंदना के इन स्वरों में' से हुआ। २०वाँ 'विजय वर्मा कथा सम्मान' श्रीमती किरण सिंह की पुस्तक 'यीशु की कीलें' को, 'हेमंत स्मृति कविता सम्मान' श्रीमती सुमीता केशवा की पुस्तक 'चाय की चुस्कियों में तुम' को प्रदान किए गए। सर्वश्री संतोष श्रीवास्तव, प्रमिला वर्मा, हरीश पाठक, राजेश श्रीवास्तव, किरण सिंह, अचला नागर ने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री देवमणि पांडे ने एवं धन्यवाद श्रीमती आभा दवे ने ज्ञापित किया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

३१ दिसंबर को कानपुर के महाराज प्रयाग नारायण शिवाला में आयोजित कार्यक्रम में श्री बद्रीनारायण तिवारी एवं श्री वीरेंद्र जीत सिंह ने मुख्य अतिथि राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी का स्वागत किया। इस अवसर पर सर्वश्री गिरिराज किशोर, राकेश शर्मा, राजेंद्र नाथ मेहरोत्रा, प्रदीप कुमार को सम्मानित किया गया। डॉ. प्रेमकुमार श्रीवास्तव को 'ललित कला सम्मान' तथा डॉ. अंगद सिंह को 'मानस संगम राष्ट्रीयभाषा सम्मान' दिया गया। डॉ. महलका एजाज और डॉ. माहे तिलत सिद्दीकी और मॉरीशस में लोककृति रघुवंश की डॉ. नीलम त्रिवेदी को मानस संगम साहित्य सम्मान से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री उमाशंकर व्यास तथा पी.के. दीक्षित को भी सम्मानित किया गया। सर्वश्री नीलम मिश्र, नंद किशोर पाठक, नंदिनी उपाध्याय, साकेत गुप्ता, बालश्री कृतिका मिश्रा, गौरव वाजपेयी, नंद कुमार

मिश्र, सुधा गुप्ता, विमल श्रीवास्तव, शंकर लाल भट्ट, सुधा गुप्ता और विकास मिश्रा को 'कानपुर गौरव सम्मान' से सम्मानित किया गया। डॉ. पूजाश्री की पुस्तक 'राममय' का विमोचन भी राज्यपाल द्वारा किया गया। ☐

राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं काव्य-संध्या संपन्न

७ मार्च को प्रयागराज की हिंदुस्तानी अकादमी में अज्ञेय स्मृति सभागार में कार्यक्रम का आयोजन हुआ, जिसमें सर्वश्री सदानंद प्रसाद गुप्त, उदय प्रताप सिंह, अरुणेश नीरन, महेश्वर मिश्र, दयानिधि मिश्र ने दीप-प्रज्वलन, सरस्वती एवं अज्ञेय के चित्रों का माल्यार्पण और सरस्वती वंदना के साथ कार्यक्रम आरंभ किया। सर्वश्री महेश्वर मिश्र, अरुणेश नीरन, सदानंद प्रसाद गुप्त, उदय प्रताप सिंह ने अपने वक्तव्य दिए। श्री अमृतांशु शुक्ल ने आभार ज्ञापन एवं श्री गौरव त्रिपाठी ने संचालन किया।

द्वितीय सत्र में सर्वश्री इंदीवर, मोहन पांडेय, अनंत मिश्र ने अपने उद्बोधन दिए। आभार ज्ञापन और संचालन श्री इंद्र कुमार दीक्षित ने किया। तृतीय सत्र में श्री गिरिधर करुण की अध्यक्षता में सर्वश्री प्रेमशीला शुक्ला, चितरंजन मिश्र, श्रद्धानंद तथा रामदेव शुक्ल ने वक्तव्य दिए। आभार ज्ञापन और संचालन सुश्री सुनीता कुमार मानस ने किया। संगोष्ठी के अंत में काव्य-संध्या का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री हिमांशु उपाध्याय, उद्भव मिश्र, कुमार अशोक, रवींद्र श्रीवास्तव 'जुगानी भाई', ओम धीरज, सरोज पांडेय, अनंत मिश्र एवं रहेमा वारसी ने अपने वक्तव्य दिए। संचालन श्री सरोज पांडेय ने किया। श्री दयानिधि मिश्र ने धन्यवाद ज्ञापन किया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों समकालीन महिला मंच मेरठ द्वारा पाँचवे समकालीन महिला साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया गया। श्रीमती रश्मि अग्रवाल की अध्यक्षता में संरक्षक श्री सुरेंद्र प्रताप एवं मुख्य अतिथि सुश्री दीप्ति गुप्ता एवं विशिष्ट अतिथि सर्वश्री ममता नौगरैया, गाफिल स्वामी, डॉ. हिमानी थे। संचालन डॉ. शुभम त्यागी ने तथा संयोजन सुश्री स्वर्णलता 'कदम' ने किया। सर्वश्री दीप्ति गुप्ता, अर्चना शर्मा, रचनासिंह 'रश्मि', सुमन चौधरी 'सुमन', स्वप्ना उप्रेती, किंजल ईलेश मेहता, कुसुम सिंह 'अविचल', राजलक्ष्मी कृष्णन, अल्का रागिनी, राजकुमारी चौकसे, मीनाक्षी शर्मा, मनु शिवपुरी, रेखा पतसारिया को सम्मान-पत्र एवं अंगवस्त्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। अनेक पुस्तकों का लोकार्पण भी किया गया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों भोपाल के हिंदी भवन में पावस व्याख्यान माला का आयोजन किया गया। श्री सुखदेव प्रसाद दुबे की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि सुश्री शुभदा पांडे रहीं। आरंभ में बापू के भजन और सरस्वती वंदना प्रस्तुत की गईं। सर्वश्री आर.के. पालीवाल, राधा बहन भट्ट, रीतारानी पालीवाल ने अपने विचार व्यक्त किए। स्वागत वक्तव्य और प्रस्तावना श्री कैलाशचंद्र पंत ने किया सर्वश्री राधा बहन भट्ट, रीतारानी पालीवाल एवं कमल जैन को सम्मानित किया गया। ☐

लोकार्पण संपन्न

२४ फरवरी को नई दिल्ली के राष्ट्रीय प्रसारण मल्टी मीडिया अकादमी के सभागार में आकाशवाणी के पूर्व सह-निदेशक श्री अरुण कुमार पासवान के सद्य: प्रकाशित काव्य-संग्रह 'अल्मोड़ा के गुलाब' का लोकार्पण डॉ. श्याम सिंह शशि के मुख्य आतिथ्य एवं डॉ. गंगेश गुंजन की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। कृति के लेखक एवं मान्य अतिथियों ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. इंद्र सेंगर ने तथा धन्यवाद श्री आर.बी. राम ने ज्ञापित किया। ☐

विमोचन संपन्न

२४ फरवरी को देहरादून में ओ.एन.जी.सी के विशाल सभागार में मुख्यमंत्री श्री त्रिवेंद्र सिंह रावत की अध्यक्षता में विश्व संवाद केंद्र की 'वार्षिकी २०१८' का विमोचन संपन्न हुआ। मुख्य वक्ता राज्यसभा सांसद डॉ. राकेश सिन्हा थे। इस अवसर पर सर्वश्री सुनील उनियाल गामा, विजय कुमार, राज कुमार टांक ने अपने वक्तव्य दिए। 'वार्षिकी' के संपादक डॉ. देवेंद्र भसीन ने वार्षिकी के बारे में बताया। संचालन सह संपादक श्री राजेंद्र पंत ने तथा आभार श्री सुरेंद्र मित्तल ने व्यक्त किया। ☐

लोकार्पण समारोह संपन्न

३१ जनवरी को डिबाई के सरस्वती सभागार में साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं के संयुक्त तत्त्वावधान में मुख्य अतिथि डॉ. राजेश कुमार के कर-कमलों से श्रीमती रजनी सिंह कृत 'हिंदी साहित्य का काव्यात्मक इतिहास' का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण', कुमुद शर्मा एवं ज्ञानेंद्र माहेश्वरी ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

लोकार्पण एवं परिचर्चा संपन्न

विगत दिनों दिल्ली में 'सन्निधि' संस्था की ओर से श्री धीरेंद्र प्रसाद सिंह के उपन्यास 'कन्याकुमारी' के लोकार्पण एवं परिचर्चा गोष्ठी का आयोजन किया गया। डॉ. विनोद बब्बर की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि डॉ. सुरेशचंद्र शर्मा एवं विशिष्ट अतिथि हरिसिंह पाल थे। सर्वश्री राहुल, धीरेंद्र प्रसाद सिंह, अशोक कुमार ज्योति, सविता चड्ढा, केदारनाथ ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

साहित्यिक क्षति

श्री शंकर सुल्तानपुरी का निधन

१८ फरवरी को लखनऊ में वयोवृद्ध रचनाकार श्री शंकर सुल्तानपुरी का निधन हो गया। वे ७८ वर्ष के थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में विभिन्न विधाओं पर पाँच सौ से अधिक पुस्तकें लिखीं। उनकी लिखी कई पुस्तकें विद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी शामिल हैं। रेडियो और दूरदर्शन से भी उनकी कई रचनाओं का प्रसारण हुआ। उन्होंने सुभाष चंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, लोकमान्य तिलक, दीनदयाल उपाध्याय श्यामाप्रसाद मुखर्जी आदि की जीवनियाँ भी लिखीं।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि।